रेव पर्युदासो नाशौचस्य । संध्यादिकर्मलोपस्तु नास्ति । 'न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित्' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । "पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्यपि यः सुतः । सुव्रतश्चापि कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम् ॥ तेनाशौचं न कर्तव्यं संध्या चैव न लुप्यते । अग्निकार्यं च कर्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः ॥" इति चन्द्रिकायां संवर्तोक्तेश्च । अत्र कर्मानधिकाररूपाशौचनिषेध एव । अपरार्कमाधवादयस्तु एकाहमाशौचमाहुः—"आचार्यं वाप्युपाध्यायं गुरुं वा पितरं च वा । मातरं वा स्वयं दग्ध्वा व्रतस्थस्तत्र भोजनम् ॥ कृत्वा पतति नो तस्मात् प्रेतान्नं तत्र भक्षयेत् । अन्यत्र भोजनं कुर्यान्न च तैः सह संवसेत् ॥ एकाहमशुचिर्भूत्वा द्वितीयेऽहनि शुध्यति ।" इति ब्राह्मोक्तेः । तदन्नभोजने तु प्रायश्चित्तं पुनरुपनयनमाशौचं च । दिवोदासादयस्तु ब्राह्मोक्तेः प्रथमेऽह्नि संध्यादिलोपः । "ब्रह्मचारी यदा कुर्यात् पिण्डनिर्वपणं पितुः । तावत्कालमशौचं स्यात् पुनः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥" इति प्रजापतिवचनात् । द्वितीयाहादौ पिण्डदानकाले एवास्पृश्यत्वमात्रं नान्यदेत्याहुः । दशाहमस्पृश्यत्वेऽपि कर्माङ्गस्नानविधानार्थमेतदिति युक्तम् । अन्त्यकर्माकरणे तु ब्रह्मचारिणः पित्रादिमरणेऽप्याशौचाभाव एव । सोऽपि ब्रह्मचर्यकाल एव । समा-

---

नहीं लिखा है; कारण कि छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि सूतकमें ब्रह्मचारीको अपना सन्ध्यादि कर्म कभी भी त्याग न करना चाहिये । और चन्द्रिकामें यह संवर्तका भी वाक्य है कि माता, पिता और गुरुके मृतक होनेमें सुव्रत ब्रह्मचारी भी पुत्र अग्निदान और जलदान करे, वह अशौच न करे और सन्ध्या तो करे और सायंसमय और प्रातःसमय प्रतिदिन अग्निहोत्र कर्म करे । यह कर्मके अनधिकाररूप अशौचका त्याग ही है । अपरार्क, माधव आदिने तो एक दिनका अशौच माना है; कारण कि ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि आचार्य, उपाध्याय, गुरु, पिता माताका स्वयं दाह करके व्रतमें स्थित मनुष्य वहां भोजन करके भ्रष्ट होता है, इससे प्रेतान्न भोजन न करे, और स्थानमें भोजन करे और सूतकवालोंके संग न रहे तो एकदिन अशुद्ध रहकर दूसरे दिन शुद्ध हो जाता है, उनके अन्नका भोजन करे तो प्रायश्चित्त करे । फिर उपनयन करना पडता है और अशौच लगता है । दिवोदास आदि तो ब्रह्मपुराणके वाक्यसे प्रथम दिन सन्ध्या आदिका लोप होता है, यह कहते हैं । जब ब्रह्मचारी पिताका पिंडदान करे, उतने ही समयतक अशुद्ध रहता है, फिर स्नान करके पवित्र होता है, इस प्रजापतिके कथनसे द्वितीय आदि दिनोंमें पिंडदानके समय ही उसका अस्पर्श मात्र है, फिर नहीं होता, यह कहते हैं । यह तो युक्त है कि दश दिनके अस्पर्शमें भी कर्मका अंग स्नान करनेके निमित्त है यह कहा है । अंत्यकर्म न करे तो पिता आदिके मरनेमें भी ब्रह्मचारीको अशौच नहीं है । वह भी ब्रह्मचर्यके समयमें है, समाव-

वर्तनोत्तरं तु पूर्वमृतानां त्र्यहाशौचं भवत्येव । "आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" इति मनूक्तेः । तत्रापि विकल्पः । "पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचकर्मणोऽन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् । तथा कृतजीवच्छ्राद्धेन किमप्याशौचं न कार्यमिति हेमाद्रिः । शुद्धितत्त्वे कौर्मे—"सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे । डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजः ॥" उपद्रवेत्यन्तमरके । 'उपसर्गमृते चैव सद्यः शौचं विधीयते ।' इति पराशरोक्तेः । उपसर्गोऽत्यन्तमरक इति शूलपाण्यनिरुद्धभट्टादयः । याज्ञवल्क्योऽपि—' आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ।' इति मरणसमयेऽपि नाशौचम् । तथाच शुद्धिरत्नाकरे दक्षः—"स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम् । आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥" अतः सति वैराग्ये संन्यासोऽप्यातुरस्य भवतीति केचित् । अथ कर्मतः अशौचानिर्णयः । त्रिंशच्छ्लोक्याम्—" तत्तत्कार्येषु सत्रिव्रतिनृपनृपवद्दीक्षितर्त्विक्स्वदेशभ्रंशापत्स्वप्यनेकश्रुतिपठनभिषक्कारुशिल्पातुराणाम् । संप्रारब्धेषु दानोपनयनयजनश्राद्धयुद्धप्रतिष्ठाचूडातीर्थार्थयात्राजपपरिणयनाद्युत्सवेष्वेत-

---

र्तनके उपरान्त तो प्रथम मरोंका तीन दिन अशौच लगता ही है; कारण कि मनुने लिखा है कि ब्रह्मचारी व्रतकी पूर्तितक जलदान न करे और व्रतके उपरान्त तो जल देकर तीन दिन अशुद्ध रहता है । उसमें भी विकल्प लिखा है; कारण कि छन्दोगपरिशिष्टका कथन है कि ब्रह्मचारियोंको पिता आदिकी मृत्युसे कभी दोष नहीं होता, वा कर्मके पीछे तीन दिनका अशौच लगता है । जैसे जीवित मनुष्यके श्राद्धमें कुछ भी अशौच न करना, यह हेमाद्रि लिखते हैं । शुद्धितत्त्वमें कूर्मपुराणका कथन है कि दुर्भिक्ष, उपद्रव, डिम्ब, संग्राममें और बिजली, राजा, द्विजोंके मृतक हुओंका सद्यः शौच लिखा है और पराशरका कथन है कि उपसर्ग (युद्ध) में मृतक हुएका भी सद्यः शौच लिखा है, उपसर्ग और उपद्रव अतिमृत्युको कहते हैं अर्थात् जहां बहुतसे मनुष्य मर जायँ, यह शूलपाणि और अनिरुद्ध भट्ट आदिका मत है । याज्ञवल्क्यने भी लिखा है कि अत्यन्त आपत्ति और कष्ट आ पडे तो सद्यः शौच करना ऐसे समयके मरणमें भी अशौच नहीं लगता । यही शुद्धिरत्नाकरमें दक्षका वाक्य है कि यह सब सूतक स्वस्थ समयमें जानने, आपत्कालमें सबको सूतकमें भी सूतक नहीं लगता । इससे वैराग्य होनेपर आतुरको भी संन्यास होता है, यह भी किन्हीं २ का कथन है । अब कर्मसे अशौच वर्णन करते हैं—त्रिंशच्छ्लोकीमें कहा है कि अन्न यज्ञ करनेवाला, व्रती, राजा, राजाके समान दीक्षित, ऋत्विज, अपने देशका नाश, विपत्ति, अनेक वेदोंका पाठ, वैद्य, कारु, शिल्पी, रोगी, दान, यज्ञोपवीत, यजन, श्राद्ध, युद्ध, प्रतिष्ठा, मुण्डन, तीर्थकी यात्रा,

दर्थे॥" नाशौचमिति शेषः। सत्री अन्नसत्रवान्। मुख्यसत्रस्य दीक्षितपदात्सिद्धेः। व्रती अनन्तव्रतादिनियमवान्। 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेः। प्रचेताः– "कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च। राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः॥" कारवः सूपकाराद्याः। शिल्पिनश्चैलनिर्णेजकाद्याः। आतुरस्य व्याधिनाशार्थे दानादौ तुलादानादेः। प्रारम्भो नान्दीश्राद्धं संकल्पो वा। यजनं तडागोत्सर्गकोटिहोमादिः। लघुविष्णुः–"व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥" इति। पाकस्य परिसमंतात्क्रिया पाकप्रोक्षणमिति 'शुद्धिप्रदीपस्तन्मन्दम्। रूढेर्योगाद्बलवत्त्वात्। तीर्थेति आशौचे आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ।"विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि। न तत्र सूतकं तद्वत् कर्म यज्ञादि कारयेत्॥" इति पैठीनसिस्मृतेः। अत्र विशेषः प्रागुक्तः। जपः पुरश्चरणादिः स्तोत्रपाठः अविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशश्रवणादिश्च। अत एवोक्तं ब्राह्मे–'गृहीतानियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्यचित्।' इति। एवं देवपूजादि। मदनपारिजाते यमोऽपि–"शिवविष्णवर्चनं दीक्षा यस्य चाग्नि-

---

जप, विवाह आदि उत्सवोंके उस उस कार्योंमें अशौच नहीं होता। यहां सत्रीपदसे अन्नका सत्र लेना, मुख्य सत्रीका तो दीक्षित पदसे ग्रहण सिद्ध है, व्रती पदसे अनंतव्रती लेना; कारण कि विष्णुने कहा है कि व्रतवालोंको व्रतमें अशौच नहीं है। प्रचेताने कहा है कि कारु, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, राजा, राजाके सेवक इनको तत्काल शौच लिखा है। कारुपदसे रसोइयां और शिल्पीपदसे धोबी आदिका ग्रहण है। रोगनाशके निमित्त आतुरको तुलादान आदिमें अशौच नहीं है, प्रारम्भपदसे नांदीश्राद्ध वा संकल्प लेना, यजन पदसे सरोवरका उत्सर्ग कोटिहोम आदि लेना। लघुविष्णुका कथन है कि व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, जप, पूजा इनके आरंभ होनेपर सूतक नहीं है और आरम्भ न हुआ हो तो सूतक है। यज्ञका वरणसे, व्रतसत्रका संकल्पसे, विवाहआदिका नान्दीश्राद्धसे, श्राद्धका पाक होनेसे आरंभ जानना। शुद्धिप्रदीपमें तो यह लिखा है कि पाकको चारोंओरसे छिडकनेसे पाकक्रिया होती है, सो ठीक नहीं है, कारण कि योगसे रूढि बलवान् होती है, तीर्थ पदसे अकस्मात् तीर्थकी प्राप्तिमें अशौच नहीं है; कारण कि पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखा है कि विवाह, दुर्ग, यज्ञ, यात्रा, तीर्थकर्म इनमें सूतक नहीं होता, इससे यज्ञ आदि कर्म समस्त करे, इसमें विशेष प्रथम कह आये। जप शब्दसे पुरश्चरण आदि स्तोत्रपाठ अथवा संकल्पपूर्वक हरिवंशका निरन्तर श्रवण करना कहा है। इसीसे ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि जो कोई नियमपूर्वक करे उसको सूतक नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार देवपूजा आदिमें जानना। मदनपारिजातमें यमका भी वचन लिखा है कि शिव-

परिग्रहः । श्रौतकर्मणि कुर्वीत स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥" गौडशुद्धितत्त्वे मन्त्रमुक्तावल्याम्-"जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः । नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ॥" राघवभट्टीये नारदः-"अथ सूतकिनः पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् । स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै ॥ बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् । यदि कामो न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् ॥" यत्तु नृसिंहकल्पे-"सदा मन्त्रजपं मुक्त्वा यदि स्यादशुचिर्नरः । मनसावहितस्तत्र स्मरेन्मन्त्रं न तूच्चरेत् ॥" तन्मूत्राद्याशौचपरम् । रामार्चनचन्द्रिकायाम्-"अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि । मन्त्रैकस्मरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ॥" कालनियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादि हेयमेव । उत्सवो रथयात्रादिः । एषु नाशौचम् । अयं चाशौचाभावोऽनन्यगतित्वे आर्तौ च ज्ञेयः । अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् । अत्र दीक्षितस्य अवभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः । तदादि त्वाशौचमस्त्येव । 'तेन वैतानोपासनाः कार्याः' इति वैतानत्वेऽप्यवभृथादि न भवत्येव । अत एवोक्तं माधवीये ब्राह्मे-"तद्वद्गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे । स्नाने त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न सूतकम् ॥"

दीक्षा और अग्निका ग्रहण जिसको है उसे शिव और विष्णुकी पूजा, वेदोक्त कर्म करना चाहिये, क्योंकि वह स्नानसे पवित्र होता है। गौड शुद्धितत्त्वमें मंत्रमुक्तावलीका वाक्य है कि दीक्षावाले मनुष्योंको जप और देवपूजनकी विधि करनी चाहिये; कारण कि वशीभूत मनवाले पुरुषको पाप और सूतक नहीं लगता । राघवभट्टीयमें नारदका वाक्य है कि अब वेदोक्त सूतकीकी पूजाको लिखते हैं कि स्नानके उपरान्त नित्यकर्मसे निश्चिन्त होकर मानसी पूजा और ध्यानयोगसे बाह्यपूजाके समान पूजा करे, सकाम हो वा न हो परन्तु नित्य प्रथमके तुल्य आचरण करे । जो नृसिंहकल्पमें कहा है कि यदि मनुष्य अशुद्ध हो तो सदाके मंत्रजपको त्यागकर मनमें मंत्रका स्मरण करे, उच्चारण न करे, यह मूत्रआदिके अशौचमें जानना । रामार्चनचन्द्रिकामें कहा है कि अशुद्ध हो वा शुद्ध हो परन्तु चलते, स्थित होते, सोतेसमय बुद्धिमान् मनुष्य मंत्रके स्मरणका मनसे ही अभ्यास करे । कालका नियम न हो तो स्तोत्र और हरिवंशआदिका पाठ उस समय न करे । उत्सवपदसे रथयात्रा आदि लेना, इनमें अशौच नहीं लगता है, वह अशौचका अभाव उस समय जानना, जब दूसरी गति न हो और रोगयुक्त हो तो और इसका मूल आकर ग्रन्थमें स्पष्ट है । यहां दीक्षितको यज्ञांतस्नानसे प्रथम ही अशौचकी अप्राप्ति है और अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) आदिमें तो अवश्य है, इससे वैतान (अर्थात् यज्ञविस्तार) उपासना करनी वैतान होनेपर भी अवभृथ आदि नहीं होते हैं । इसीसे माधवीयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य कहा है कि जिसने दीक्षा ग्रहण की है और जो तीन वेदका पाठ करता है उसकी बड़े यज्ञमें जितने

इति । वैतानोपासनाः कार्या इत्यनेनैव सिद्धेर्ऋत्विजां दीक्षितानां चेति पुनर्दीक्षितग्रहणं यजमाने स्वयंकर्तृत्वार्थं स्नानप्राप्त्यर्थं वेति विज्ञानेश्वरः । वस्तुतस्तु दीक्षणीयासंस्कृतस्य प्रागवभृथात्कर्मप्राप्त्यर्थं दीक्षितग्रहणम् । तेन ततः पूर्वनिषेध एव । यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति तदृत्विक्परम् । तथा च छन्दोगपरिशिष्टे-'न दीक्षिण्याः परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ।' इति । शुद्धितत्त्वेऽप्येवम् । ऋत्विजां च मधुपर्कोत्तरमाशौचाभावः । "गृहीतमधुपर्कस्य यजमानात्तु ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः ॥" इति ब्राह्मात् । अत एव रामाण्डारः-'चतुर्णां वरणपक्षेऽन्येषामाशौचेऽन्य आगमयितव्यः ' इत्याह । एवं स्मार्तेऽपि तुलाकोटिहोमादौ मधुपर्के सति दोषाभावो ज्ञेयः । यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे ' इति तत्रापि मधुपर्कोन्तं ज्ञेयम् । तेनाधानेष्टिपशुबन्धादौ तदभावादन्ये भवन्तीति सिद्धम् । अपवादान्तरमाह याज्ञवल्क्यः- 'वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदनात् । ' तत्र त्यागमात्रे स्नानोत्तरं स्वयं कर्तृत्वम् । ' श्रौते कर्माणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ।' इति स्मृतेः । त्यागातिरिक्ते तु श्रौते स्मार्ते चान्यस्यैव कर्तृत्वम् । "सूतके मृतके चैव अशक्तौ

कालमें अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) हो उतने समयतक सूतक नहीं लगता । 'वैतानकी उपासना करनी ' इसीसे सिद्धि थी, ' ऋत्विज और दीक्षितोंको नहीं करनी ' इसमें फिर दीक्षितपदका ग्रहण किया है; यह यजमानके स्वयं कर्म करनेमें और स्नानकी प्राप्तिके निमित्त है, यह विज्ञानेश्वरका मत है। सिद्धान्त तो यह है कि दीक्षणीय अर्थात् (दीक्षा लेनेका) यज्ञसे प्रथम जिसका संस्कार न हुआ हो उसको कर्मकी प्राप्तिके निमित्त दीक्षित ग्रहण है, इससे उससे पहले निषेध जानना और जो यह वाक्य है कि ' यज्ञमें आरम्भ वरण है ' सो ऋत्विक्के विषय जानना चाहिये। क्योंकि छंदोगपरिशिष्टमें कहा है कि दीक्षिणी इष्टिसे आगे यज्ञमें और कृच्छ्रआदि तप करनेमें अशौच नहीं लगता। शुद्धितत्त्वमें भी ऐसा ही लिखा है। और ऋत्विजोंको मधुपर्कके पीछे अशौच नहीं लगता; कारण कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि यजमानसे मधुपर्क ग्रहण करने उपरान्त अशौच हो तो ऋत्विजोंको नहीं लगता । इसीसे रामाण्डारने यह लिखा है कि जब चार ब्राह्मणोंके वरण करनेका पक्ष हो, औरोंको अशौच हो तो दूसरेको बुला लेना, इसी प्रकार स्मार्तकर्ममें भी तुलाकोटिहोम आदिके विषे मधुपर्क होनेपर दोषका अभाव जानना और जो यह कहा है कि यज्ञका प्रारम्भ वरणसे होता है उसमें भी मधुपर्कतक ही जानना चाहिये, इससे आधान, इष्टि, पशुबंध आदिमें मधुपर्कके विना ही सब कार्य होते हैं; यह सिद्ध होता है। और अपवाद तो याज्ञवल्क्यने लिखे हैं कि वैतान उपासना और वेदोक्त कर्म अशौचमें करने । वहाँ दानमात्र तो स्नानके उपरान्त स्वयं करना; कारण कि यह स्मृतिमें लिखा है कि वेदोक्तकर्ममें स्नान करनेसे तुरंत शुद्धि होती है और दानसे पृथक् वेद और स्मृतिके कर्ममें और कर्ता होता है; कारण कि बृहस्पतिने लिखा है

श्राद्धभोजने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥" इति बृहस्पत्युक्तेः । 'नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्ज्यम् । शालाग्नौ चैकेऽन्य एतानि कुर्युः' इति पैठीनसिस्मृतेश्चेति विज्ञानेश्वरः । एकग्रहणं पूजार्थं, तेन स्मार्तं कार्यमेवेति हारलतायाम् । दाक्षिणात्यास्तु विकल्पमाहुः । अपरार्कादिनिबन्धास्तु—श्रौतं सर्वं स्वयं कार्यं, स्मार्ते तु त्यागातिरिक्तेऽन्यस्यैव कर्तृत्वम् । त्यागमात्रे तु स्वस्य 'कर्म वैतानिकं कार्यं स्नानोपस्पर्शवान् स्वयम्' इति हारीतोक्तेः । "दर्शं च पूर्णमासं च कर्म वैतानिकं च यत् । सूतकेऽपि त्यजेन्मोहात्प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः ॥" इति मरीच्युक्तेः । "जन्महान्योर्वितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते । शालाग्नौ केवलो होमः कार्य एवान्यगोत्रजैः ॥" इति जाबालोक्तेश्चेत्याहुः । अपरार्केऽप्येवम् । याज्ञिका अप्येवम् । "सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् । पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत् ॥" इति जातूकर्ण्योक्तेश्च । चरुः स्मार्तस्थालीपाकः । श्रवणाकर्मादिश्चेति विज्ञानेश्वरः । प्रारब्धं तु सपिण्डेनापि कार्यम् । 'न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ।' इति मनूक्तेः । छन्दोगपरिशिष्टेऽपि—"होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन वा । अकृतं हावयेत्स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ॥" अकृतं

कि सूतक और मरण, असामर्थ्य, श्राद्धभोजन, प्रवास आदि निमित्त हो तो औरसे होम करा देना स्वयं न करना । पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखा है कि वैतान कर्मको छोड़कर और नित्य कर्मकी निवृत्ति होती है और कोई यह कहते हैं कि शालाग्निमें इन कर्मोंको कोई और करे, यह विज्ञानेश्वरका मत है । एकपदका ग्रहण पूजार्थ है, इससे स्मार्त कर्मको अवश्य करना चाहिये, यह हारलतामें लिखा है और दाक्षिणात्य तो विकल्प लिखते हैं । अपरार्क आदि ग्रन्थोंमें तो लिखा है कि वेदोक्त सम्पूर्ण कर्मको स्वयं ही करे और दानके सिवाय स्मार्त कर्मको औरसे करावे; कारण कि हारीतने कहा है कि वैतानिककर्मको स्नान और स्पर्श करके स्वयं ही करना चाहिये । और मरीचिने भी कहा है कि अमावस्या और पूर्णिमाका श्राद्ध, वैतानिककर्म इनको सूतकमें भी जो ब्राह्मण मोहसे त्यागता है वह प्रायश्चित्तका भागी होता है । जाबालने भी कहा है कि जन्म और मरणमें वितानकर्मका त्याग नहीं करना, केवल होमको शालाग्निमें दूसरे गोत्रवाले करावे । अपरार्कमें भी इसी प्रकार कहा है । याज्ञिक लोग भी ऐसे ही मानते हैं । जातूकर्ण्यने लिखा है कि सूतकके होनेपर स्मार्तकर्म कैसे हो सकते हैं तो पिण्डयज्ञ चरुहोम इनको भिन्नगोत्रवालेसे करावे, चरु पदसे स्मार्त स्थालीपाकका ग्रहण करते हैं और विज्ञानेश्वरने तो यह लिखा है कि श्रवणाकर्म आदिका ग्रहण है । प्रारम्भ किये कर्मको तो सपिण्डको भी करना चाहिये; कारण कि मनुजीने लिखा है कि उस कर्मको करता हुआ सगा भाई भी अशुद्ध नहीं होता कि जिस कर्मका प्रारम्भ हो गया हो । छन्दोगपरिशिष्टमें भी कहा है कि वेदोक्तकर्ममें सूखे अन्न वा फलसे हवन करना और स्मार्तकर्ममें अकृत व्रीहि आदि वा कृताकृत (तण्डुल आदि) से हवन करावे ।

व्रीह्यादि । कृताकृतं तन्दुलादि । स्मार्तहोमादौ तु विकल्पो ज्ञेयः । 'शालाग्नौ चैके' इति प्रागुक्तेः । यदा करणं तदान्यद्वारा । अत्रेदं तत्त्वम् । येषां बह्वृचादीनां द्वादशरात्रमहोमेऽपि नाग्निविच्छेदस्तैर्न कार्यम् । तैत्तिरीयाद्यैः कार्यम् । 'त्रिरात्रमहूयमानोऽग्निर्लौकिकः संपद्यते ' इति सुदर्शनभाष्ये वचनात् । समारूढे त्वग्नौ तेनापि न कार्यम् । किंतु पुनराधानमेव । समारोपप्रत्यवरोहयोराशौचापवादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च । अन्यथा पुनराधानमपि स्यात् । यत्त्वाश्वलायनः—"तौ चापि सूतके शावे पर्वणीष्टिं महापदि । पुष्पवत्यां च भार्यायां न कुर्यात्तां कदाचन ॥ स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद्द्विजः । श्रौताग्निस्तु सकृद्धुत्वा समाप्ते वा स्वयं हुनेत् ॥" इति, तदपि समारूढपरम् । तदाह स एव—"स्मार्ताग्निरात्मनोऽन्येषामभावे सूतकादिषु । समारोप्य तदन्तेषु विहृत्य जुहुयात्स्वयम् ॥" इति । तथा च मनुः—'प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ' इति वैश्वदेवस्य त्वग्निसाध्यत्वेऽपि वचनान्निवृत्तिः । 'विप्रो दशाहमासीत वैश्वदेवविवर्जितः ।' इति संवर्तोक्तेः । यद्यपि—'पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनोः ।' इति तेनैवोक्तेः पूर्वनिषेधो व्यर्थस्तथाप्यापस्तम्बादीनां वैश्वदेवस्य पञ्चयज्ञभिन्नत्वात्पृथङ्—

स्मार्तहोम आदिमें तो विकल्प जानना चाहिये । कोई तो यह लिखते हैं कि शालाग्निमें करे, इस वाक्यसे जब करे तब दूसरोंके द्वारा करे । यहां यह सिद्धान्त है कि जिन बह्वृच आदिकोंकी बारह रात्रितक होम न होनेपर अग्नि नष्ट न हो वे न करें और तैत्तिरीय आदि तो करें; कारण कि सुदर्शन भाष्यमें लिखा है कि चार दिन हवन न हो तो वह अग्नि लौकिक हो जाती है । स्थापित अग्निमें तो वे भी न करें, किंतु फिर आधान करें । अग्निके स्थापन और प्रत्यवरोहमें अशौचके अपवादका अभाव कहा है और उसको दूसरा कोई नहीं करता नहीं तो फिर आधान भी हो जायगा । जो आश्वलायनने यह लिखा है कि समारोप और प्रत्यवरोहको भी सूतक, मरण, पर्व, यज्ञ महाआपत्तिमें स्त्रीके रजस्वला होनेपर किसी प्रकार न करे, वा स्मार्ताग्निवाला ब्राह्मण सूतक और मृत्युमें स्वयं होम न करे, श्रौताग्निवाला तो एक वार हवन करे, वा पूर्तितक स्वयं हवन करे । यह भी समारूढके विषयमें कहा है । वही उसने कहा है कि सूतक आदिमें अपनेसे दूसरा कोई न हो तो स्मार्ताग्नि स्थापन करके प्रसन्नचित्त होकर स्वयं हवन करे । यही मनुने लिखा है कि अग्निमें कर्मका प्रत्यूह न करना । वैश्वदेवकर्म तो अग्निसे साध्य भी है, तथापि वाक्यसे उसकी निवृत्ति होती है; कारण कि संवर्तने कहा है कि ब्राह्मण दश दिनतक वैश्वदेव न करे । यद्यपि पञ्चयज्ञकी विधिको मरण और जन्ममें न करे इस उसके ही कथनसे पूर्वनिषेध व्यर्थ है तो भी

निषेधः। हरदत्तस्त्वाशौचेऽपि बह्वृचैर्वैश्वदेवः कार्यः 'तस्य द्वावनध्यायौ यदात्माशुचिर्यद्देशः' इति ब्रह्मयज्ञस्यैवाशौचे विशिष्य निषेधात्। सन्ध्यादीनामप्यपवादमाहापरार्के पुलस्त्यः—"संध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत्। न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः॥ सूतके मृतके चैव संध्याकर्म समाचरेत्। मनसोच्चारयेन्मन्त्रान्प्राणायाममृते द्विजः॥" यत्तु चन्द्रिकायां जाबालः—"संध्या पञ्चमहायज्ञा नैत्यकं स्मृतिकर्म च। तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया॥" इति। यच्च संवर्तः—'सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते।' यच्च विष्णुपुराणम्—"सर्वकालमुपास्या तु संध्ययोः पार्थिवेष्यते। अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः॥" इति तत्पूर्णसंध्यापरम्। 'अर्घ्यान्ता मानसी संध्या कुशवारिविवर्जिता।' इति शुद्धिदीपे च्यवनोक्तेः। पैठीनसिस्त्वर्घ्ये मन्त्रोच्चारणमाह। सूतके सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात्। प्रयोगपारिजाते भारद्वाजोऽपि—"सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम्। तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत्॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्। मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि'॥" ग्रहणे श्राद्धादावप्याशौचापवादमाह व्याघ्रः—'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके।'

आपस्तंब आदिके मतमें वैश्वदेव पञ्चयज्ञसे भिन्न कहा है, इसके पृथक् निषेध है। हरदत्तने तो यह कहा है कि अशौचमें भी बह्वृच वैश्वदेवकर्म करे, उसको दो अनध्याय होते हैं, जो आत्मा और देश अशुचि हो, इस प्रकार ब्रह्मयज्ञका अशौचमें विशेष निषेध है। संध्या आदिका अपवाद भी अपरार्कमें पुलस्त्यजीने कहा है कि संध्या, यज्ञ, चरु, होमको जीवनपर्यन्त करे, अर्थात् कभी न त्यागे, यदि छोडे तो निकृष्ट गतिको प्राप्त होता है। सूतक और मृत्युमें भी द्विजको सन्ध्याकर्म करना चाहिये, प्राणायामको छोड़कर अन्य मन्त्रोंको मनमें उच्चारण करे। जो चन्द्रिकामें जाबालने कहा है कि सन्ध्या, पंचमहायज्ञ, नित्य स्मार्तकर्मको सूतकके बीचमें त्याग दे और दश दिनसे पीछे करे। और जो संवर्तने कहा है कि सन्ध्या आदि कर्मको सूतकमें छोड़ दे। जो विष्णुपुराणमें लिखा है कि हे राजन्! सब कालमें सन्ध्याकी उपासना, सूतक, भ्रम, रोगभयको त्यागकर करे। यह वाक्य सम्पूर्ण संध्याके विषयमें है, कारण कि शुद्धिदीपमें च्यवनने लिखा है कि कुश और जलको त्यागकर अर्घ्यपर्यन्त मानसी संध्या करे। पैठीनसिस्मृतिमें तो अर्घ्यमें मन्त्रका उच्चारण लिखा है कि सूतकमें गायत्रीसे अञ्जलिजल दे और सूर्यका ध्यान करता हुआ प्रणाम करे। प्रयोगपारिजातमें भरद्वाजका वाक्य है कि सूतक और मृत्युमें विना मन्त्रके प्राणायाम करे और मार्जनमन्त्र मनसे ही उच्चारण कर मार्जन करे, गायत्रीको भले प्रकार पढ़कर सूर्यको अर्घ्य देना और मार्जन और सूर्यकी स्तुति करे वा न करे। ग्रहणके श्राद्ध आदिमें अशौचका अपवाद व्याघ्रने लिखा है कि राहुके सूतकको त्यागकर स्मार्तकर्मका निषेध है। लिंगपुराणमें भी कहा है कि राहुके दर्शनमें

इति। लैङ्गेऽपि-"सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। तावदेव भवे-च्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते॥" प्रयोगपारिजाते बृहस्पतिः-'कन्याविवाहे संक्रान्तौ सूतकं न कदाचन।' वृद्धशातातपः-"यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति॥ भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरा-त्रेण शुध्यति। अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुध्यति॥" इदमविशेषात्सूतका-दिपरमपीति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च॥ अथ द्रव्यतः शुद्धिनिर्णयः। मरीचिः-"लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च। शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयःसु च॥ तिलौषधाजिने चैव पक्वापक्वे स्वयंग्रहः। पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके॥" स्वयमेव स्वाम्यनुज्ञया ग्राह्यं न तद्धस्तादित्यर्थः। क्रये तु तद्धस्तादपि न दोषः। पक्वं लड्डुकादि अपक्वं तण्डुलादि। एतदन्नसत्रपरम्। "अन्नसत्रे प्रवृत्तानामाममन्नमगर्हितम्। भुक्त्वा पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु व्रती भवेत्॥" इत्याङ्गिरसोक्तेः। पक्वान्नमोदनादि नतु भक्ष्यम्। षट्त्रिंशन्मते-"उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत्। एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दो-षमुपावहेत्॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके। परैरन्नं प्रदातव्यं

सूतक वा मृत्युमें दोष नहीं, इतनी ही शुद्धि होती है, जबतक मुक्ति न दीख पड़े। प्रयोग-पारिजातमें बृहस्पतिका वाक्य लिखा है कि, कन्याके विवाह और संक्रान्तिमें कदाचित् भी सूतक नहीं होता। वृद्धशातातपने कहा है कि जब भोजनके समयमें द्विज अशुद्ध हो जाय तो पृथ्वीमें उस ग्रासको फेंक और स्नान करके शुद्ध होता है, उस ग्रासको भक्षण करके अहोरात्रसे और सब अन्नको खाकर तीन रातसे शुद्ध होता है, यह वाक्य पूर्णतासे सूतक-आदिमें भी है, यह शुद्धितत्त्व और शूलपाणिमें कहा है। अब द्रव्यसे अशौचका अपवाद लिखते हैं-मरीचिने लिखा है कि लवण, मधु, मांस, पुष्प, मूल, फल, शाक, काठ, तृण, जल, दही, घी, दूध, तिल, औषध, मृगचर्म, पक्क (मोदक आदि), विना पक्के (तंडुल आदि) को ग्रहण कर ले और बेचनेकी सब वस्तुओंमें मृत्यु और सूतकमें दोष नहीं है, इन पूर्वोक्त मोदक आदिको स्वामीकी अनुज्ञासे स्वयं ग्रहण करे, उसके हाथसे न ले, बेचनेमें तो स्वामीके हाथसे भी दोष नहीं है। यह अन्नसत्रमें है; कारण कि आंगिरसने लिखा है कि जो अन्नसत्र करे उनका आम अन्न निंदित नहीं है और उनके पक्के अन्नको भोजन कर तीन दिन व्रत करे, पकान्नसे मोदक आदि ग्रहण करने भक्ष्य नहीं। षट्त्रिंशत्के मतमें कहा है कि दोनोंको ज्ञान न हो तो सूतकका दोष नहीं लगता, एकको भी ज्ञान हो तो खाने-वालेको दोष होता है। विवाह, उत्सव और यज्ञके मध्यमें मरण और सूतक हो जाय तो और पुरुष अन्न दे और ब्राह्मण भोजन कर ले. और ब्राह्मणोंके भोजन करते हुए मरण वा सूतक हो जाय तो अन्यके घरके जलसे आचमन करके वे सब पवित्र हो जाते हैं। बृहस्प-तिने कहा है कि विवाह उत्सव आदिमें पूर्व संकल्प किये अन्नमें दोष नहीं है। षडशीतिमें कहा

भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥ भुंजानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः॥" बृहस्पतिः-'विवाहोत्सव ' इत्याद्युक्त्वा-'पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोष परिकीर्तितः ।' षडशीतौ-"संसर्गाद्यस्य वाशौचं यस्यातिक्रान्तकालता । तदीयस्य पदार्थस्य नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥ " शुद्धितत्त्वे-शुद्धयेदित्यनुवृत्तौ विष्णुः-'प्रोक्षणेन पुस्तकम्' इति ॥ अथ मृतदोषे निर्णयः । स च हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते कौर्मे च-"व्यापादयेद्य आत्मानं स्वयमग्न्युदकादिभिः । विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्योदकक्रिया ॥ " शवदर्शनं यावदाशौचमस्त्येव । 'हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् ।' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । शुद्धितत्त्वे कौर्मे-'सद्यः शौचं समाख्यातं शापादिमरणे तथा ।' आदिपदादभिचारहते । भविष्ये-"स्वेच्छया मरणं विप्राच्छृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । अन्त्यान्त्यजविषोद्बन्धैरात्मना चैव ताडनैः ॥ पाखण्डमाश्रिताश्चैव महापातकिनस्तथा । स्त्रियश्च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास्तथा ॥न तेषां स्नानसंस्कारो न श्राद्धं न सपिण्डनम् ॥" गौतमः-'प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्' इति । नाशौचमिति शेषः । अङ्गिराः-"चण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते । नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति ॥" षट्त्रिंशन्मतेऽप्येवम् ।

है कि जिसको संसर्गसे अशौच लगता है वा जिसका समय बीत गया हो उसके पदार्थमें कभी दोष नहीं है । शुद्धितत्त्वमें विष्णुका कथन है कि जल छिड़कनेसे पुस्तककी शुद्धि होती है । अब मरणके दोषमें लिखते हैं-हेमाद्रि, षट्त्रिंशन्मत और कूर्मपुराणमें लिखा है कि अग्नि वा जल आदिसे जो स्वयं अपनी हत्या करे, उसका अशौच नहीं है और न उसका जलदान करे । जबतक उसका मृतक शरीर न देखे तबतक अशौच होता ही है; कारण कि याज्ञवल्क्यने कहा है कि राजा, गौ, ब्राह्मणसे मरे और हत्यारेका अशौच देखनेतक है । शुद्धितत्त्वमें कूर्म्मपुराणका वाक्य है कि शाप आदिसे मरनेमें तत्काल शौच कहा है, आदिपदसे अभिचार (मारणप्रयोग) से मृत्यु लेनी । भविष्यपुराणका वाक्य है कि जो अपनी इच्छासे मरे और ब्राह्मण, पशु, दाढवाले, सांप अन्त्य, अंत्यज, विष, बन्धन, आत्माकी ताडनासे मरे और पाखंडी, महापातकी, व्यभिचारिणी स्त्री, ब्रह्मचर्य आदिसे पतित इनके मरणमें स्नान संस्कार, श्राद्ध और सपिंडीकरण नहीं होते हैं । गौतमने कहा है कि शाप, अनशनव्रत, अग्नि, जल, बन्धन, पतन (गिरने) का भी अशौच नहीं होता है । अंगिराने कहा है कि चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली, दांतवाले पशुसे पापियोंकी मृत्यु होती है, इनको जल, पिण्डदान जो मरनेपर दिया जाता है वह नहीं प्राप्त होता है, किन्तु अन्तरिक्षमें ही नष्ट हो जाता है । षट्त्रिंशन्मतमें भी ऐसे ही लिखा है ।

ब्राह्मेऽपि—'शृङ्गिदंष्ट्रिनखव्यालविषवह्निक्रियाजलैः ।' व्यालो गजः । "सुदूरात्प-रिहर्तव्यः कुर्वन् क्रीडां मृतस्तु यः । नागानां विप्रियं कुर्वन् हतश्चाप्यथ विद्युता ॥ निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् । परदारान् हरन्तश्च द्वेषात्तु पतिभि-र्हताः ॥ असमानैश्च संकीर्णैश्चण्डालाद्यैश्च विग्रहात् । कृत्वा तैर्निहतास्तद्वच्चण्डा-लादीन् समाश्रिताः ॥ शस्त्राग्निगरदाश्चैव पाखण्डाः क्रूरबुद्धयः । क्रोधात्प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्बन्धनं जलम् ॥ गिरिवृक्षप्रपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः । कुशिल्पजीविनो ये च सूनालङ्कारधारिणः ॥ मुखेभगास्तु ये केचित् क्लीबप्राया नपुंसकाः । ब्रह्मदण्डहता ये च ये चापि ब्राह्मणैर्हताः ॥ महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः । पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः । न चाश्रु-पातः पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥ एतानि पतितानां तु यः करोति विमोहितः । ततः कृच्छ्रद्वयेनैव तस्य शुद्धिर्नचान्यथा ॥" एतद्बुद्धिपूर्वं सर्वेषां करणे तु माधवीये वसिष्ठः—"य आत्मत्यागिनां कुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियां द्विजः । स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥" अज्ञाने तु—"कृत्वाग्निमुदकं स्नानं संस्पर्शं वहनं कथाम् । रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥" इति

ब्रह्मपुराणमें भी लिखा है कि सींग और दाढ, नखवाले, हाथी, विष, अग्निक्रिया तथा जलसे मरे हुओंको पिंडदान नहीं मिलता। क्रीडा करनेमें जो मरता है, उसे दूरसे त्याग दे। नागोंका वैर करनेवाला और बिजलीसे जो मरा है और जो राजासे कभी चोरीके दोषमें पकड़े हैं, जो परायी स्त्रियोंको हरण करते हैं और द्वेषसे उनके पतियोंने उनको मार दिया हो और अपनेसे अधिक वा न्यून चाण्डाल आदिसे वैर करते हैं और वैरसे उन्होंने मार दिये हैं और जो चाण्डालोंके आश्रयमें हैं, शस्त्र, अग्नि, विषके देनेवाले, पाखण्डी और क्रूरबुद्धि, जो क्रोधसे विष, अग्नि, शस्त्र, बन्धन, जलसे मरे हों और पहाड या वृक्षोंसे जो नीचे गिरकर मरे, खोटे शिल्पसे जीविकावाले, हिंसाके अलंकारको धारण करनेवाले, मुखमें निरन्तर भग अर्थात् मैथुन करानेवाले, अयोनिमें गमन करनेवाला नपुंसक और जो ब्रह्मदण्ड और ब्राह्मणसे मृतक हुए हों और महापातकी पतित कहाते हैं, इन पतितोंका दाह, अन्त्येष्टिकर्म और अस्थिसंचय, रोना, पिण्डश्राद्ध आदि कभी भी न करे। जो पतितोंके निमित्त अज्ञानसे श्राद्धादि करता है, उसकी शुद्धि दो तप्तकृच्छ्रव्रतोंसे होती है; अन्यथा नहीं। यह सब जानकर करनेमें है; कारण कि इन सबकी क्रिया करनेमें माधवी-यमें वसिष्ठने लिखा है कि जो द्विज आत्महत्यारोंकी प्रीतिके निमित्त प्रेतक्रिया करता है वह तप्तकृच्छ्रके सहित चांद्रायणव्रत करे, तो शुद्ध होता है। अज्ञानसे करे तो उस समग्र यह विधान है कि अग्नि और जलदान, स्नान और स्पर्श स्मशानमें ले जाना, कथा, रज्जुका छेदन, रुदन इनको करे तो तप्तकृच्छ्रसे पवित्र होता है, ऐसा जानना चाहिये,

ज्ञेयम् । प्रत्येकं बुद्धिपूर्वं एतदिति मदनपारिजातः । प्रत्येकं तु स्पर्शाश्रुणोर्मिताक्षरायाम्—"तच्छवं केवलं स्पृष्टमश्रु वा पतितं यदि । पूर्वोक्तनामकारी चेदेकरात्रमभोजनम् ॥" 'एकरात्रं तु नाश्नीयात् त्रिरात्रं बुद्धिपूर्वकम् ।' इति माधवीये उत्तरार्द्धम् । अन्येषु तु संवर्तः—"एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा । कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥" अज्ञाने त्वर्धम् । एतदनाहिताग्नेः । आहिताग्नेः कृच्छ्र एवेति माधवः । मिताक्षरायाम्—" 'आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया । तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम् ॥" आहिताग्नेस्तु विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—"वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे । पात्राणि तु दहेदग्नौ . साग्निके पापकर्मणि ॥ " छन्दोगपरिशिष्टेऽपि—"महापातकसंयुक्तो दौरात्म्यादग्निमान्यदि । पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि । गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् । पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ॥ " माधवीये पराशरः—"आहिताग्निर्मृतो विप्रश्चण्डालेनात्मघातकः । दहेत ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्र-

---

प्रत्येक आनकर' यह मदनपारिजातमें कहा है । इन प्रत्येकका स्पर्श करे और रोवे, मिताक्षरामें यह कहा है कि उन सबका केवल स्पर्श करे वा अश्रुपात करे और पूर्वोक्त कर्म न करे, तो एकरात उपवास करनेसे शुद्ध होता है । माधवीयमें तो इस श्लोकका पिछला आधा इस प्रकार लिखा है कि एकरात भोजन न करे और जानकर इनका स्पर्श आदि करे तो तीन रात भोजन त्यागने चाहिये । औरोंके विषे संवर्तने यह कहा है कि इनमेंसे किसी प्रेतको जो शरीरपर ले जाता है वा दाह, कटोदक क्रिया करता है वह सान्तपनकृच्छ्र करे तो शुद्ध हो, अज्ञानमें तो आधा करे । यह भी अनाहिताग्निके निमित्त है और आहिताग्नि तो कृच्छ्रव्रत ही करे, यह माधवका मत है । मिताक्षरामें तो यह कहा है कि आत्माके त्यागी और पतितोंकी क्रिया नहीं होती, किन्तु उनको गंगाजीमें स्थापन करदेना ही उनका हित है । आहिताग्निके निमित्त विशेष तो हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि वैतान अग्निको जलमें और आवसथ्य अग्निको चौराहेमें डाल दे और अग्निहोत्रीके पापी होनेपर उसके यज्ञपात्रोंको अग्निमें जला देना चाहिये । छन्दोगपरिशिष्टमें भी कहा है कि यदि पापी होनेसे अग्निहोत्री महापातकी हो जाय तो उसके पुत्र आदि उसके शुद्ध होनेतक अग्निसे युक्त हो कर अग्निकी पालना करे और जो वह प्रायश्चित्त न करे वा प्रायश्चित्त करता हुआ मृतक होजाय तो वह उस गृह्य अग्निको बुझा दे और सामग्रीसहित श्रौतअग्निको जलमें डाल दे, उसके पात्रोंको ब्राह्मणको प्रदान करे वा जलमें डाल दे वा अग्निमें जला दे । माधवीयमें पराशरका वाक्य है कि अग्निहोत्री ब्राह्मण चाण्डालसे मृतक हुआ हो वा आत्महत्यारा

वर्जितम् ॥ प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामानुशासनात् । दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरेण क्षालयेत्ततः ॥ स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेनं पुनर्दहेत् । " हेमाद्रौ तु–'दाहयित्वा शवं तेषां शूद्रैरविधिपूर्वकम् ।' इत्युक्तम् । एतद्दर्पादिना मरणे ज्ञेयम् । 'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।' इति श्रुतावात्महनने एव दोषोक्तेः । प्रमादमरणे त्वाशौचादि सर्वं भवत्येव । तदाहाङ्गिराः–" अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥" ब्राह्मेऽपि– " प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः । शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्युज्जलादिभिः ॥ चण्डालैरथ वा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित् । तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः ॥" इति । प्रमादमरणे त्रिरात्रमाशौचमिति गौडाः शुद्धितत्त्वादयः । दशाहादीति दाक्षिणात्याः । अस्यापवादो हेमाद्रौ भविष्ये–' प्रमादादिच्छया वापि न कुर्यात्सर्पतो मृते । ' नागपूजां विना न कुर्यादित्यर्थः । बौधायनेऽपि–'बुद्धिपूर्वात्महन्तॄणां क्रियालोपो विधीयते ।' क्रियान्त्यकर्म । तत्र–दुर्मरणनिमित्तं दानादि कार्यम् । तच्च विश्वप्रकाशादौ शातातपीये च–"व्याघ्रेण निहते विप्रे विप्रकन्यां विवाहयेत् । सर्पदष्टे नागबलिर्देयः सर्पश्च काञ्चनः ॥ चतुर्निष्कमितं हैमं गजं दद्याद्न-

---

हो तो उस ब्राह्मणको मन्त्रोंके विना लौकिक अग्निमें दाह करे, फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्राजापत्य व्रतको करे, दग्ध हुई अस्थिको फिर लेकर दूधमें धोवे, उन अस्थियोंको फिर अपनी अग्निसे मन्त्र पढ़कर पृथक् जला दे। हेमाद्रिमें यह कहा है कि उस शवका विना विधानके शूद्रोंसे दग्ध करा दे, ऐसा कहा है । यह भी अभिमान आदिसे मृत्युको प्राप्त होनेमें जानना; कारण कि इस श्रुतिमें आत्महत्यामें ही दोष लिखा है कि जो आत्महत्या करनेवाले मनुष्य हैं वे उन नरकोंमें जाते हैं, प्रमादसे मृतक होनेमें अशौच आदि तो संपूर्ण होते ही हैं । यही अंगिराने लिखा है कि, जो कोई प्रमादसे अग्निसे वा जलसे मरे उसका अशौच और जलदान करे । ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि प्रमादसे भी जो प्रारब्धवश, सींग, दाढ़, नखवाले, अजगर, विष, बिजली, जल आदि, चाण्डाल वा चोरसे मृतक हो जाय तो उसका दाह आदि करना, कारण कि वह पतित नहीं है। शुद्धितत्त्व आदि गौड ग्रन्थोंमें तो यह कहा है कि प्रमादसे मरनेमें तीन रात अशौच लगता है, और दाक्षिणात्योंने दश दिनका कहा है। इसका अपवाद हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि प्रमाद वा इच्छासे, सर्पसे जो मरे उसकी क्रिया नागपूजाके विना न करे, बौधायनका भी कथन यही है कि जानकर जिन्होंने अपनी हत्या की है उनकी क्रिया नहीं है किन्तु दुर्मरणके निमित्त दान आदि करना चाहिये । यही विश्वप्रकाश और शातातपीयमें कहा है कि व्याघ्रसे जो मृतक हो उसके निमित्त ब्राह्मणकी कन्या विवाह दे, सर्पसे जिसकी मृत्यु हो उसके निमित्त नागबलि और सुवर्णका सर्प देना चाहिये, हाथीसे जिसकी मृत्यु हो उसके निमित्त चार निष्कभर सोनेका हाथी दान करे, राजासे मृत्यु हो तो सोनेका पुरुष दे, चौरसे मरनेमें गौ

जैर्हते ।राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्मयम्॥चौरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् । वृषेण निहते दद्याद्यथाशक्ति तु काञ्चनम् ॥ शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता । निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कं स्वर्णजं हरिम् । संस्कारहीने च मृते कुमारमुपनाययेत् ॥ निष्कत्रयं स्वर्णमितं दद्यादश्वं हयाहते । शुना हते क्षेत्रपालं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ सूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् । कृमिभिश्च मृते दद्याद्गोधूमान्पञ्चखारिकाः ॥ वृक्षे वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं वस्त्रसंयुतम् । शृङ्गिणा निहते दद्याद्वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥ शकटेन हते दद्याद्द्रव्यं सोपस्करान्वितम् । भृगुपातमृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥ अग्निना निहते कार्यमुदपानं स्वशक्तितः । दारुणा निहते चैव कर्तव्या सदने सभा ॥ शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् । अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥ विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं हेमनिर्मिताम् । उद्बन्धनेन च मृते कपिं कनकनिर्मितम् ॥ मृते जलेन वरुणं हैमं दद्याद्द्विनिष्कजम् । विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शते द्विजान् ॥ घृतधेनुः प्रदातव्या कण्ठान्नकवले मृते । कासरोगेण च मृते अष्टकृच्छ्रं व्रतं चरेत् ॥ अतिसारमृते लक्षं गायत्र्याः प्रयतो जपेत् । शाकिन्यादिग्रहग्रस्ते जपेद्रुद्रं यथोदितम्॥विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत्। अन्तरिक्षमृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥ सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यादस्पृश्यस्पर्शतो मृते । पतिते च मृते कुर्या त्प्राजापत्यांस्तु षोडश ॥

और वैरीसे मृत्यु होनेमें बैल और बैलसे मृत्यु होनेमें यथाशक्ति सुवर्ण देना । शय्यापर मरे तो रुई और निष्कमात्र सोनेकी विष्णुप्रतिमाके साहित शय्या देनी चाहिये, अशुद्ध मरे तो दो निष्कभर सोनेकी प्रतिमा विष्णुकी देनी चाहिये, संस्कारसे हीन मरे तो बालकका यज्ञोपवीत करे, घोडेसे मरे तो तीन निष्कका सुवर्णका अश्व दे, कुत्तेसे मरे तो अपनी शक्तिसे क्षेत्रपालका स्थापन करना, सूकरसे मृत्यु हो तो दक्षिणासहित भैंसा देना, कृमियोंसे मरे तो पाँच खारी गोधूम देना, वृक्षसे मृत्यु हो तो वस्त्रसहित सोनेका वृक्ष देना, सींगवाले जीवसे मृत्यु हो तो वस्त्रसहित बैल देना, गाडीसे मरे तो सामग्री सहित द्रव्य देना, भृगुपातसे (ऊँचे स्थानसे गिरकर, मृत्यु हो तो अन्नका पर्वत देना, अग्निसे मृत्यु हो तो यथाशक्ति दान करना, काष्ठसे मृत्यु हो तो गृहमें सभा करे, शस्त्रसे मृत्यु हो तो दक्षिणासहित भैंसा देना, पत्थरसे मृत्यु हो तो सवत्सा गौ देनी, विषसे मृत्यु हो तो सुवर्णकी पृथ्वी देनी, बन्धनमें मृत्यु हो तो सुवर्णका बन्दर देना, जलमें मृत्यु हो तो दो निष्क सुवर्णका वरुण देना, विषूचिकासे मृत्यु हो तो स्वादु अन्नसे सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावे, कंठमें ग्रास अटककर मृत्यु हो तो घीकी गौ देनी, खांसीके रोगसे मृत्यु हो तो आठ कृच्छ्रव्रत करे, अतिसारसे मृत्यु हो तो सावधानीसे लाख गायत्री जपे, शाकिनी आदि ग्रहसे मृत्यु हो तो शास्त्रोक्त रीतिसे रुद्रीका पाठ करना चाहिये, बिजलीसे मृत्यु हो तो विद्यादान करे, अन्तरिक्षमें मृत्यु हो तो वेदपारायण करे, स्पर्शके अयोग्यके स्पर्शसे मृत्यु हो तो उत्तम शास्त्रकी पुस्तक देना,

मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् । एवं कृते विधाने तु विदध्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥" तथा वैधमरणेऽपि न दोषः । तदाहतुर्मनुवृद्धगार्ग्यौ–"वृद्धः शौचस्मृते लुप्तप्रत्याख्यानभिषक्क्रियः । आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ॥ तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः । तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥" इति । हेमाद्रौ विष्णुधर्मेऽपि–"नरस्तु व्याधिरहितो न त्यजेदात्मनस्तनुम् । असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः॥तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः। अरिष्टैरात्मनो ज्ञात्वा मृत्युकालमुपस्थितम् ॥ व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णे वायुषि चात्मनः । यथा युगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ तस्मिन्काले तनुत्यागाद्यथेष्टं फलमाप्नुयात् ॥ आयुषस्तु पुरा दृष्टं मरणं ब्राह्मणस्य च ।" नेति गौडानामपपाठ उत्तरार्धे असंगतः । 'क्षत्रियस्य तु संग्रामे मृते भर्तरि योषितः ।' अपरार्के वृद्धगर्गः- "यो जीवितुं न शक्नोति महाव्याध्युपपीडितः । सोऽग्न्युदकं महायात्रां कुर्वन्नत्र न दुष्यति ॥"अत्रोक्तवक्ष्यमाणवचोनिचयात्प्रयागातिरिक्तेऽचिकित्स्यरोगाद्युपहतानामधिकारः। सोऽपि जीर्णवानप्रस्थस्यैवेति विज्ञानेश्वरदेवयाज्ञिकादयः।अत एव मिताक्षरादौ

पतित मरे तो सोलह प्राजापत्यव्रत करे, सन्तानहीन मरे तो नव्वे कृच्छ्रव्रत करे । इस प्रकार विधिकों करके और्ध्वदैहिक कर्म करे; इस प्रकार विधिसे मृत्युका विधान करनेमें दोष नहीं । यही मनु और वृद्धगार्ग्यने कहा है कि जो वृद्ध मनुष्य शौच न करके और जिसकी वैद्य चिकित्सा न कर सके और वह अपनेको पहाड़, अग्नि, अनशनव्रत, जलसे नष्ट कर दे तो उसका तीन रात अशौच है, दूसरे दिन अस्थिसंचयन, तीसरे दिन जलदान, चौथे दिन श्राद्ध करे । हेमाद्रिमें विष्णुधर्मका वाक्य लिखा है कि, व्याधिसे हीन मनुष्य अपने देहको त्याग न करे; कारण कि जो आत्महत्या करनेवाले हैं वे उन लोकोंमें गमन करते हैं, जिनमें सूर्य नहीं है, और जो अन्धकारसे आच्छादित है, दुःखसे अपनी मृत्युको निकट जानकर और रोगसे वैद्योंका त्याग और अपनी अवस्थाकी समाप्ति देख युगके अनुसार अपने देहको त्याग करे । उस कालमें देहके त्यागसे यथेच्छ फलको प्राप्त होता है । अवस्थासे प्रथम ब्राह्मणोंका मरण देखा है, और नहीं देखा, यह गौडोंका किया पाठ ठीक नहीं, कारण कि, यह पिछला आधा श्लोक असंगत होगा । संग्राममें क्षत्रियके स्वामीके मरनेपर स्त्रीका मरण देखा गया है । अपरार्कमें वृद्धगर्गने लिखा है कि जो मनुष्य महाव्याधिकी पीड़ासे न जी सके उसको अग्नि,जल और महायात्रा करनेसे दोष नहीं लगता।यहाँ पूर्व कहे उक्त, वक्ष्यमाण वाक्योंके समूहसे चिकित्साके योग्य न रहनेसे रोगोंसे पीडित मनुष्योंका अधिकार प्रयागसे भिन्न तीर्थके विषयमें है । वह भी जीर्ण, वानप्रस्थको ही लिखा गया है, इस प्रकार विज्ञानेश्वर, देवयाज्ञिक आदि कथन करते हैं । इसी कारणसे मिताक्षरा आदिमें शिलासे गिरना और अनशन व्रत आदि वानप्रस्थको ही

भृगुपातानशनादिकं वानप्रस्थस्यैवोक्तम्।मनुरपि-"आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम्। वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥"इति।तेनान्यत्रापि तद्विषयतया मूलैक्यादिति केचित्। तन्न। वानप्रस्थमरणे आशौचनिषेधात्। तेन गृहस्थादिपरमेवेदम्। तेन यतेर्नाधिकारः। काम्येऽनधिकाराच्च। नैमित्तिकत्वे त्वकरणे दोषो नित्यता च स्यात्। प्रयागे त्वरोगिणां रोगिणां च। यत्तु-"शूद्राश्च क्षत्रिया वैश्या अन्त्यजाश्च तथाधमाः।एते त्यजेयुः प्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजं नृप॥ पतित्वा ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा भवेत्।" इति। तन्निर्मूलमिति भट्टाः। तत्त्वं तु हेमाद्रौ व्रतकाण्डेऽलिखनान्निर्मूलत्वं चिन्त्यमेव। प्रक्रमात्तु पतित्वेति भृगुपातमात्रपरं युक्तम्। ब्राह्मणस्याप्यनज्ञातमिति वक्ष्यमाणविरोधाच्च। यत्त्वादित्यपुराणे-"अब्राह्मणो वा स्वर्गादिमहाफलजिगीषया।प्रविशेज्ज्वलनं तोयं करोत्यनशनं तथा॥" इति तत्प्रयोगातिरिक्तपरमिति केचित्। हेमाद्रौ त्वेतदग्रे 'प्रयागवटशाखाग्रात्' इत्युक्तेर्ब्राह्मणस्य प्रयागेऽपि नेति प्रतीयते। माधवीयेऽपरार्के चादित्यपुराणे-"दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुमानपि। प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं करोति नाशनं तथा॥ अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमेव

लिखे हैं। मनुने भी लिखा है कि इन महर्षियोंके आचरणोंसे जिसने शरीरका त्याग किया है वह ब्राह्मण शोक और भयरहित हो ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। इसीसे और स्थानमें भी मूलकी एकतासे वानप्रस्थके विषयमें ही है, यह कोई कथन करते हैं, सो उचित नहीं। कारण कि वानप्रस्थके मरनेमें अशौचका निषेध है, इससे गृहस्थ आदिके विषयमें यह जानना। इससे संन्यासीको अधिकार नहीं है और उसको काम्यकर्मका निषेध भी कहा है, नैमित्तिकके न करनेमें दोष और नित्यता प्राप्त होगी, प्रयागमें तो अरोगियों और रोगियोंके निमित्त लिखा है, और जो यह वाक्य है कि शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, अन्त्यज, अधम हे नृप! ये सब द्विजको छोड़कर प्राणोंको त्याग दें और ब्राह्मण पतित होकर ब्राह्मणहत्यारा और आत्महत्यारा होता है सो वचन निर्मूल है, यह भट्टोंका मत है। तत्त्व तो यह है कि हेमाद्रिके व्रतकांडमें लिखा न रहनेसे निर्मूल कहना चिन्त्य है, प्रकरणसे तो (पतित्वा) गिरकर यहां भृगुसे ही पात होना युक्त है और ब्राह्मणको भी इसकी आज्ञा लिखी है और आगे कहे कथनोंका विरोध भी है, जो आदित्यपुराणमें कहा है कि ब्राह्मण स्वर्ग आदि महाफलकी इच्छासे अग्नि, जलमें प्रवेश करे और अनशनव्रत करे वह प्रयागसे पृथक् विषयमें कहा है, ऐसा कोई कहते हैं। हेमाद्रिमें तो इससे आगे विदित होता है कि प्रयागमें वटकी शाखाके अग्रभागसे गिरे, इस कथनसे ब्राह्मण प्रयागमें भी न गिरे यह विदित होता है। माधवीय, अपरार्कमें भी आदित्यपुराणका यह वाक्य है कि चिकित्साके अयोग्य, महारोगोंसे पीड़ित जो पुरुष प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करे वा अनशनव्रत कर गहरे जलमें गिरे, भृगुसे (ऊँचेस्थान) से गिरे, वा

च । गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात् ॥ प्रयागवटशाखाग्राद्देहत्यागं करोति च । स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः ॥ उत्तमान् प्राप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत् कचित् । महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान् भोगान् समश्नुते ॥ एतेषामधिकारस्तु सर्वेषां सर्वजन्तुषु । नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥ ईदृशं मरणं येषां जीवतां कुत्रचिद्भवेत् । आशौचं स्यात्त्र्यहं तेषां वज्रानलहते तथा ॥ वाराणस्यां म्रियेद्यस्तु प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः । काष्ठपाषाणमध्यस्थो जाह्नवीजलमध्यगः ॥ अविमुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलं गतो हरः । प्रणवं तारकं ब्रूते नान्यथा कुत्रचित्क्वचित् ॥" हेमाद्रौ चैवम् । अत्र प्राप्ते काल इत्युक्तेरप्राप्तमरणकालायाः स्त्रिया अन्वारोहणे संपूर्णमेवाशौचम् । पृथ्वीचन्द्रस्त्वत्रापि त्र्यहमाह । शुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्येवम् । एतच्च वृद्धादिमरणं कलौ निषिद्धम् । 'भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा ।' इति । माधवेन पृथ्वीचन्द्रेण च कलिवर्ज्येषूक्तेः । न चात्र यावदुक्तनिषेधः । विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् । नच कलौ वानप्रस्थाश्रमनिषेधादेव सिद्धेर्मरणनिषेधो व्यर्थ इति वाच्यम् । सर्ववर्णेष्वित्यादिभिस्तद्भिन्नस्यापि प्राप्तेः काम्यं भवत्येव । 'ये वै तन्वां विसृजन्ति' इति श्रुतेः स्मृत्या संकोचायोगात् । न चेयं स्वाभाविकमृत्युपरा, धीरपदोक्तेः ।

महामार्गमें चले, वा आदरपूर्वक हिमालयमें चला जाय, प्रयागवटकी शाखासे अग्रभागसे गिरकर देहको त्यागे, वा स्वयं देहविनाशका समय प्राप्त हो तो ऐसे समय बुद्धिमान् उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है और आत्मघाती नहीं होता, महापापके क्षयसे स्वर्गमें दिव्यभोगोंको प्राप्त होता है । इनका अधिकार तो सब जीवोंके निमित्त है, सब वर्णोंमें नर और नारियोंको भी है, उनका और वज्र या अग्निसे मृतकोंका अशौच तीन दिनतक लगता है । जो वैद्योंका त्यागा हुआ काशीमें काठशिलाके मध्य या गंगाजलमें मरे तो अविमुक्तके सामने महादेव जो उसके कानमें तारक (ॐकार) मन्त्रको कहते हैं इससे अन्यथा कभी नहीं होता अर्थात् मुक्त हो जाता है । हेमाद्रिमें भी ऐसे ही लिखा है । यहां 'काल प्राप्त होनेपर' यह कथन करनेसे जिसके मरणका समय न आया हो ऐसी स्त्री यदि सती हो तो पूर्ण अशौच लगता है । पृथ्वीचन्द्रोदयने तो उसके निमित्त भी तीन दिनका अशौच लिखा है । शुद्धितत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें भी ऐसे ही लिखा है और यह वृद्ध आदिकी मृत्यु कलियुगमें निषिद्ध है । भृगु (उच्चस्थान) से गिरकर या अग्नि आदिमें गिरकर वृद्धोंका मरना माधव और पृथ्वीचन्द्रने यहां निषिद्ध लिखा है । यदि कोई सन्देह करे कि पूर्वसे कहे सबका निषेध यहां नहीं है सो उचित नहीं; कारण कि विशिष्टके उद्देश्यमें वाक्यका भेद है । यदि कोई शंका करे कि कलियुगमें वानप्रस्थ आश्रमके निषेधसे ही यह बात सिद्ध थी, फिर मरणका निषेध करना व्यर्थ है, सो भी ठीक नहीं; कारण कि 'सर्ववर्णेषु' इन वाक्योंसे वानप्रस्थसे भिन्नको भी यह बात प्राप्त होती है और काम्यमरण तो होता ही है, 'जो शरीरको त्यागते हैं' इस श्रुतिका स्मृतियोंसे संकोच नहीं हो सकता । यदि कोई कहे कि यह स्वाभाविक मृत्युके

मात्स्यभारतादिषु-" न लोकवचनात्तात न वेदवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥" इत्युक्तेः । अत एव विष्णुधर्मे रोग्यादिमरणमुक्त्वोक्तम् । 'यथा युगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम् ।' इति । काश्यामप्युक्तं मात्स्ये-" अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः । प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने ॥" हेमाद्रौ विवस्वान्-"सर्वेन्द्रियविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च । प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्निपातो महापथः ॥ धर्मार्जनासमर्थस्य कर्तुः पापांकितस्य च । ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातं तीर्थे प्राणविमोक्षणम् ॥" अपरार्के चैवम् । सहगमनं कलौ भवत्येव । 'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते ।' इति ब्रह्मवैवर्तात् । एतेन मरणान्तिकप्रायश्चित्तम् । काशीखंडादौ चातुर्वर्ण्यस्य तनुत्यागविधयश्च युगान्तरपरा एव । प्रयागेऽपि त्रिस्थलीसेतौ स्कान्दे-" यथाकथंचित्तीर्थेऽस्मिन्प्राणत्यागं करोति यः । तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥ " पाद्मे विष्णुः-"देहत्यागं तथा धीराः कुर्वन्ति मम संनिधौ । मत्तनुं प्रविशन्त्येव न पुनर्जन्म ते नराः ॥ " कौर्मे-" व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः । गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ईप्सिताँल्लभते कामान्वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥ " तथा-" या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।

विषय लेख है, सो भी ठीक नहीं; कारण कि इसमें धीरपद पड़ा है। मत्स्यपुराण और महाभारत आदिमें लिखा है कि हे तात ! लौकिक और वेदोक्त वाक्योंसे प्रयागमें मरनेसे मतिको चलायमान न करना, इसीसे विष्णुधर्ममें रोगी आदिके मरणको कहकर लिखा है कि युगके अनुसार अपने देहको त्यागना। काशीमें भी मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि अविमुक्तक्षेत्रमें जो विधिपूर्वक अग्निमें प्रवेश करते हैं, हे वरानने ! वे निःसंदेह मेरे मुखमें प्रविष्ट होते हैं। हेमाद्रिमें यमका वाक्य है कि जिसकी सब इन्द्रियां शिथिल हो गयी हों और जो अपने कार्य करनेमें असमर्थ है, उसका प्रायश्चित्त अग्निमें गिरना वा महामार्ग लिखा है। धर्मके संचय करनेमें असमर्थ तथा पापसे युक्त ब्राह्मणको भी तीर्थमें प्राणोंका त्याग लिखा है। अपरार्कमें भी इसी प्रकार लिखा है । सहगमन तो कलियुगमें होता ही है, कारण कि ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि सहानुगमनके सिवाय कलियुगमें स्त्रियोंकी दूसरी गति नहीं है, इससे मरणांतिक ही प्रायश्चित्त है। काशीखण्ड आदिमें चारों वर्णोंको देहत्यागकी जो विधि लिखी है वह अन्ययुगमें है। प्रयागमें भी त्रिस्थलीसेतुमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि जो जैसे तैसे भी इस (प्रयाग) तीर्थमें प्राणोंको त्याग करे तो उसको आत्मघातका दोष नहीं लगता और वह यथेष्ट लोकोंको गमन करता है। पद्मपुराणमें विष्णुने कहा है कि जो धीर पुरुष मेरे निकट देहको त्यागता है, वह मेरे देहमें प्रवेश करता है फिर उसका जन्म नहीं होता। कूर्मपुराणमें लिखा है कि व्याधिसे युक्त दीन वा क्रोधी भी मनुष्य यदि गंगायमुनामें प्राणोंको त्यागता है वह यथेष्ट कामनाको प्राप्त होता है; यह मुनिश्रेष्ठोंके वाक्य हैं। ऐसे ही कथन है कि जो गति योगीको है, जो गति सत्त्वगुणीको है वही गति गंगायमुनाके संगममें

सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे ॥" वाराहे-" तत्र यो मुञ्चति प्राणान् वटमूलेषु सुन्दरि । सर्वलोकानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते ॥" तथा-"अकामो वा सकामो वा वटमूलेषु सुन्दरि ॥ शीघ्रं प्राणान्प्रमुञ्चेत यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥ " तथा-"पञ्चयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य तु मण्डले । अतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश ॥ नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥" ब्राह्मे-" ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे विष्णुतत्परः । तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः॥ दुष्कृतोऽपि दुराचारो ब्रह्महत्यादिपातकी । हरिं ध्यात्वा त्यजेद्देहं प्रायशो मुक्तिमान्भवेत् ॥" भविष्योत्तरे-" समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश । महाहवे षष्टिरशीतिर्गोगृहे अनाशके भारत चाक्षया गतिः ॥" इति सामान्यतोऽपि फलम् । एवमन्येऽपि विधयो ज्ञेयाः । यत्तु गौडाः 'प्रयागादिमरणं ब्राह्मणभिन्नविषयमित्याहुस्तद्दूषणं पितामहचरणैः प्रयागविधौ कृतमिति नात्रोच्यते । अत्र दशाहमाशौचम् । त्रिरात्रस्य प्राप्तकालगोचरत्वादिति भट्टाः । युक्तं तु त्रिरात्रम् । दिवोदासीयेऽप्येवम् । शुद्धितत्त्वेऽपि काश्यपः-' अनशनमृतानामशनिहतानामग्निजलप्रविष्टानां भृगुसंग्रामदेशान्तरमृतानां जातदन्तानां च त्रिरात्रम्' इति । एवं मरणान्तप्रायश्चित्तेऽपि । पूर्वोक्तश्चात्महादेर्दाहाशौचादिनिषेधस्तदानीमेव, वत्स-

---

प्राणोंके त्यागनेवालेकी होती है। वराहपुराणमें लिखा है कि हे सुन्दरि ! प्रयागमें वटके मूलमें जो प्राणोंको त्यागता है वह सब लोकोंको लँघकर मेरे लोकमें गमन करता है । और भी लिखा है कि हे सुन्दरि ! अकाम हो या सकाम हो; परन्तु मुक्तिकी इच्छावाला मनुष्य वटके नीचे शीघ्र प्राणोंको त्यागे । ऐसे ही वाक्य है कि पांच योजन पर्यन्त प्रयागके मंडलमें जो प्राणोंको त्यागता है वह सात पिछले और अगले चौदह पुरुषोंको तार देता है । ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि विष्णुके चरणकमलोंका ध्यान करके विष्णुमें तत्पर होकर जो मनुष्य माघ महीनेमें शरीर त्यागता है, वह मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं और दुष्टकर्मा हो, दुराचारी, ब्रह्महत्या आदि पातकी हो, परन्तु भगवान्का ध्यान करके प्रयागमें शरीर छोड़े तो मुक्त हो जाता है । भविष्योत्तरका वाक्य है कि जलमें प्राण त्यागे तो सात सहस्र वर्ष, अग्निमें एकादश सहस्र, गिरनेमें सोलह सहस्र, महासंग्राममें साठ सहस्र, गौशालामें त्यागे तो अस्सी सहस्र वर्ष स्वर्गमें निवास होता है, हे भारत ! अनशन व्रतमें अक्षयगति होती है, यह सामान्यसे फल है, इसी प्रकार और भी विधि जाननी । और जो गौडोंने कहा है कि प्रयाग आदिमें मरण ब्राह्मणसे भिन्नके विषयमें है, उसका दूषण हमारे पितामहचरणोंने प्रयागविधिमें लिखा है, इससे उसको नहीं लिखते । इसमें दश दिनका अशौच है, त्रिरात्र अशौच प्राप्तकालके विषयमें जानना, यह भट्टोंका मत है, तीन रात करना युक्त है, दिवोदासीयमें भी ऐसे ही लिखा है । शुद्धितत्त्वमें भी कश्यपका वचन है कि अनशनसे मरे, वज्रसे हत वा अग्नि वा जलमें प्रविष्ट हुए उच्चस्थान, संग्राम तथा देशान्तरमें मृतक हुए और दांत निकलनेमें मृतकोंका तीन दिन अशौच लगता है । इसी प्रकार मरणांत प्रायश्चित्तमें भी जानना चाहिये । पूर्वोक्त

रान्ते तु सर्वमौर्ध्वदेहिकं कुर्यात् । "गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । ऊर्ध्वं संवत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् ॥" इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् । एवं म्लेच्छीकृतानामपि गयाश्राद्धमपि कार्यम् "ब्रह्महा च कृतघ्नश्च गोघाती पञ्च पातकी । सर्वे ते निष्कृतिं यान्ति गयायां पिण्डपातनात् ॥" इत्यग्निपुराणात् । एवं ब्राह्मेऽपि-"क्रियते पतितानां तु गते संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाकूपे स्वबन्धुभिः ॥ मार्तण्डपादमूले वा श्राद्धं हरिहरौ स्मरन् ॥" सूर्यपद इत्यर्थः । तत्र वर्षमध्ये कृत्यमुक्तमपरार्के वायुपुराणे-"शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां कुर्याच्छ्राद्धं तु वत्सरम् । द्वादशाहनि वा कुर्याच्छुक्ले च प्रथमेऽहनि ॥" छागलेयः-"नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः । तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद्यमः ॥" व्यासः-"नारायणं समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते । तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथा ॥"इति । स चात्मघातादिप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यः। तदुक्तं हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते-"कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या यथाविधि । नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः ॥ पिण्डोदकक्रियाः पश्चाद्वृषोत्सर्गादिकं च यत् । एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा ॥" दिवोदासीये वृद्धशातातपस्तु-"पतिते च मृते शुद्ध्यै प्राजापत्यांस्तु षोडश । मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥" इत्याह । इदं प्रायश्चित्तार्हपित्रादिविषयम् ।

आत्महत्या करनेवाले आदिको दाह अशौच आदिका निषेध तो तभी है, अर्थात् अशौचके समयमें ही है, वर्षके पीछे तो सब औध्वदैहिक कृत्य करे; कारण कि हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मत लिखा है कि जो गौ तथा ब्राह्मणद्वारा मरे हों और पतित हों उनका वर्षदिनके उपरांत सब और्ध्वदैहिक करे । इसी प्रकार जो म्लेच्छ किये गये हैं उनका भी गयाश्राद्ध करना; कारण कि अग्निपुराणमें लिखा है कि ब्रह्महत्यारे, कृतघ्न, गौका घातक, पञ्च पातकी ये सब गयामें पिंडदानसे मुक्त होते हैं । ऐसे ही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि वर्षदिनके उपरान्त पतितोंका कर्म देशधर्मके अनुसार गयाकूपमें वा मार्तण्डके पादमूलमें हरिहरको स्मरण करके वा सूर्यपदमें बांधव श्राद्ध करे । उसमें वर्षके बीचमें कृत्य करना, अपरार्कमें वायुपुराणके वाक्यसे लिखा है कि शुक्लपक्षकी द्वादशीको वर्षदिनतक श्राद्ध करना चाहिये वा शुक्लपक्षके पहले दिनसे बारह दिनतक करना । छागलेयने लिखा है कि लोकनिन्दाके डरसे मनुष्य नारायणबलि करे, उसीसे उनकी पवित्रता होती है और प्रकार नहीं; यह यमने लिखा है । व्यासने कहा है कि नारायण वा शिवके निमित्त जो दिया जाता है वही उसकी शुद्धिका कार्य है और नहीं, वह भी आत्महत्याका प्रायश्चित्त करके करना चाहिये । यही हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्के मतसे लिखा है कि प्रथम चांद्रायण करके विधिपूर्वक क्रिया करनी, लोकअपवादके भयसे नारायणबलि करे, फिर पिंड, जलदान और वृषोत्सर्ग आदि करे और एकोद्दिष्ट तथा सपिण्डीकरण करे । दिवोदासीयमें वृद्धशातातपने लिखा है कि पतितके मरनेमें शुद्धिके निमित्त सोलह प्राजापत्य और अपत्यरहितके मरनेमें नब्वे (९०) कृच्छ्रव्रत करे । यह

इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये च मूढा विषादिनः । घातयन्ति स्वमात्मानं चाण्डालादिहताश्च ये ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुताः।यथा श्राद्धं प्रतन्वंति विष्णुनामप्रतिष्ठितम् ॥ तथा ते संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे ॥''हेमाद्रौ तेनैवोक्तेः । तत्रैव बौधायनोऽपि-'नारायणबलिं व्याख्यास्यामोऽभिशस्तपतितसुरापात्मत्यागिनां ब्राह्मणहतानां च द्वादशवर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीत' इति। गृह्यपरिशिष्टे तु-चण्डालादित्याद्युक्त्वा–"दग्ध्वा शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः। प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायणत्रयम् ॥" इत्युक्तम्।मदनरत्ने ब्राह्मणहतानां च द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीतेति । मदनरत्ने ब्राह्मे–"प्रमादादपि निःशंकस्त्वकस्माद्विधिचोदितः।चाण्डालैर्ब्राह्मणैश्चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित् ॥ तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः । चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये॥यद्वा कृच्छ्रान्पञ्चदश कृत्वा तु विधिना दहेत्। बुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंशत्कृच्छ्रं समाचरेत्॥" इत्युक्तम्।स्मृतिरत्नावल्यां तु–'द्विगुणं प्रायश्चित्तं कृत्वार्वागप्यब्दात्सर्वं कार्यम्' इत्युक्तम् । "आत्मनो घातशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम्।तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा पुनः ॥ अर्वाक् संवत्सरात्कुर्याद्दहनादि यथोदितम्। कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुषः॥"इति।इदं चात्मव-

---

प्रायश्चित्तके योग्य पिता आदिके विषयमें लिखे हैं; कारण कि हेमाद्रिमें उसने ही यह लिखा है कि जो इन्द्रियोंसे हीन मूढ और दुःखी हैं और अपनी आत्माको नष्ट करते हैं,और जो चाण्डाल आदिसे मृतक हुए हैं,दयासे युक्त उनके पुत्र,पौत्रोंको जैसे नारायणबलि करनी चाहिये, वैसे ब्रह्माको नमस्कार करके तुझसे कथन करता हूँ । वहां ही बौधायनने लिखा है कि नारायणबलिको कहते हैं जिसे शाप लगा हो, जो पतित हो, मदिरासे मृतक हुआ हो, ब्राह्मणने मारा हो उसकी बारह वा तीन वर्षतक नारायणबलि करनी चाहिये।गृह्यपरिशिष्टमें तो यह लिखा है कि चाण्डाल आदिसे जो मृतक हो उसके शरीरको दग्ध करके अस्थियोंको यत्नसे स्थापन करना चाहिये पुनः उसका पुत्र प्रायश्चित्तके लिये यत्नसे तीन चान्द्रायण करे, मदनरत्नमें कहा है कि, ब्राह्मणसे जो मृतक हुए हों उनको प्रायश्चित्त बारह वा तीन वर्ष करे । मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि भाग्यवश प्रमादसे वा अकस्मात् ब्राह्मण, चांडाल वा चोरोंसे जो कहींपर मृतक हुआ हो उसका दाह आदि करे । कारण कि वह पतित नहीं, और उसकी शुद्धिके निमित्त चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र करे, अथवा पन्द्रह तप्तकृच्छ्र करके विधिसे दाह करे। जानकर मरे हों तो तीस कृच्छ्र करे, यह कहा है।स्मृतिरत्नावलीमें तो यह लिखा है कि दुगुना प्रायश्चित्त करके वर्ष दिनसे प्रथम भी सब किया करे, आत्महत्याकी शुद्धिके निमित्त दो चांद्रायण और चार तप्तकृच्छ्र व्रत करे,वा तीस कृच्छ्र करे । फिर वर्षदिनसे प्रथम भी समयके मध्यमें दाह आदि यथा विधि करे अवस्थाके अनित्य होने (बीत जाने) से नारायणबलि करे,और यह आत्मवध प्रायश्चित्त और जातिवधका प्रायश्चित्त एकसाथ करे, इसीसे बौधायन बारह वा तीन वर्ष लिखते हैं । मदनपारि-

धनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुचितं कार्यम्। अत एव बौधायनोक्तम्—'द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा' इति।मदनपारिजाते स्मृत्यर्थसारे च—'ब्रह्महादीनां तद्योग्यं प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिः कार्यः' इत्युक्तम्।एवं म्लेच्छीकृतानामपि।यत्तु कश्चिदाह-पुत्रकृतेन प्रायश्चित्तेन पितुः पापनाशे मानाभावः आत्मघाते तु वचनादस्तु महापातके तु कथं स्यादिति।स स्वयमेवात्मवधप्रायश्चित्तस्य जातिवधनिमित्तेन समुच्चयं वदन् हृदयशून्य एव। नहि जातिवधनिमित्तं पुत्रैः कार्यमिति वचनमस्ति । पुत्रकर्तृकसर्वप्रायश्चित्तादिविप्लवापत्तेः।प्रागुक्तबौधायनवचनाच्चेति दिक्।" इदं प्रायश्चित्तार्हाणामेव । प्रायश्चित्तानर्हाणां तु पतितोदकमात्रं कार्यम् इति केचित्। मदनपारिजातादिस्वरसोऽप्येवम्।वस्तुतस्तु-'तदर्हानर्हयोर्वचनेऽनुपादानादविशेषात्तत्रापि नारायणबलिर्गयाश्राद्धं चेति युक्तम्।पतितोदकविधिस्तु पित्राद्यतिरिक्तविषयः" इत्यपरे।स यथा हेमाद्रौ ब्राह्मे-"पतितस्य तु कारुण्याद्यस्तृप्तिं कर्तुमिच्छति।स हि दासीं समाहूय सर्वगां दत्तवेतनाम्॥ अशुद्धघटहस्तां तां यथावृत्तं ब्रवीत्यपि। हे दासि गच्छ मूल्येन तिलानानय सत्वरम्॥ तोयपूर्णं घटं चेमं सतिलं दक्षिणामुखी । उपविष्टा तु वामेन चरणेन ततः क्षिप ॥ कीर्तयेः पातकीसंज्ञां त्वं पिबेति मुहुर्वदेः । निशम्य तस्य वाक्यं सा लब्धमूल्या करोति तत्॥ एवं कृते भवेत्तृप्तिः पतितानां च नान्यथा॥"इति।इदं च मृताहे कार्यम्।

जात और स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि ब्रह्महत्यारोंका यथायोग्य प्रायश्चित्त करके नारायणबलि करनी ऐसा कहा है इसी प्रकार जो म्लेच्छ हो गये हों उनका भी जानना, जो किसीने यह लिखा है कि पुत्रके किये प्रायश्चित्तसे पिताका पापनाश होता है इसमें प्रमाण नहीं है,आत्महत्यामें तो वाक्यसे रहो पर महापातकमें कैसे हो, ऐसा कहनेवाला ज्ञानशून्य है । कारण कि उसने स्वयं आत्महत्याके प्रायश्चित्तके संग जातिहत्याका प्रायश्चित्त लिखा है कोई वाक्य ऐसा नहीं है कि जातिहत्याका प्रायश्चित्त पुत्र करे,कारण कि पुत्रके करनेयोग्य सब प्रायश्चित्त वृथा हो जायँगे और पूर्वोक्त बौधायनका कथन भी पुत्रको प्रायश्चित्त करनेमें प्रमाण है, यह संक्षेपसे लिखा है । यह भी प्रायश्चित्तयोग्योंके लिये है प्रायश्चित्तके अयोग्योंको तो जलमात्र दे यह कोई कहते हैं, मदनपारिजात आदिका आशय भी इसी प्रकार है । सिद्धान्त तो यह है कि वाक्योंमें प्रायश्चित्तके अयोग्य नहीं पढे,इससे सर्वथा उनका भी नारायणबलि और गयाश्राद्ध करना युक्त है, पतितकी जलक्रिया तो पितासे भिन्नके विषयमें है, यह बात अपर कहते हैं। वह विधि इस प्रकार हेमाद्रिमें और ब्रह्मपुराणमें कही है कि जो अपनी दयासे पतितको तृप्त करनेकी इच्छा करे वह सबके संग गमन करनेवाली और पीड़ायुक्त दासीको बुलावे, और अशुद्ध घड़ा हाथमें देकर यह कहे कि, हे दासी ! तू शीघ्र जा और तिल मोल ले आ, और जलसे भरे और तिलसहित इस घड़ेको दक्षिणमुख बैठी बायें पैरसे फेंक दे और पातकीका नाम लेकर वारंवार कहना कि, तू इस जलको पी इसी वाक्यको सुनकर मूल्यको ले दासी उसी प्रकार करे ऐसे करनेसे पतितोंकी तृप्ति होती है, और भाँति नहीं । यह पतितोदक विधि मरनेके दिन करनी, कारण कि मदनरत्नमें लिखा

पतितस्य दासी मृताह्नि यदा घटमपवर्जयेदेतावतायमुपचरितो भवतीति मदनरत्ने विष्णूक्तेः । इदं चात्मत्यागिविषयम् । आत्मत्यागिनः पतितास्ते नाशौचोदकभाजः स्युरित्युपक्रम्य विष्णुना एतस्याभिधानादिति गौडाः। यत्तु कश्चिदाह–यः पतितो घटस्फोटेन बान्धवैर्बहिष्कृतस्तद्विषयाणि क्रियानिषेधवाक्यानि जीवत्येव तस्मिन्नन्त्यकर्मणः कृतत्वात्तत्पुनः करणाभावादिति। स बन्धुत्यागेन जातवैराग्यस्य कृतप्रायश्चित्तस्याप्यकरणापत्तेर्मिताक्षरादिविरोधमपश्यन् मूर्ख इत्युपेक्षणीयः । नच कृतघटस्फोटस्य संग्रहविधिर्नेति वाच्यम् । मनुनाऽकृतघटस्फोटस्य त्यागमुक्त्वा–"प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्धं प्राश्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥" इत्युक्तेः। अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् । अतो घटस्फोटेन बहिष्कृतस्यापि पित्रादेरब्दान्ते नारायणबलिः । निषेधास्तु पितृव्यादिपरा इति तत्त्वम् । केचित्तु नारायणबलौ कृतेऽप्यन्त्यकर्म सपिंडनवर्जं कार्यम् । "गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डना" इति वचनात् । 'ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते ।' इति श्राद्धप्रकारोक्तेश्चेत्याहुः । ते हेमाद्रिस्थपूर्वोक्तषट्त्रिंशन्मतविरोधान्निर्मूलत्वाच्छ्रा-

---

है कि दासी पतितके मरनेके दिन चरणसे घडेको औंधा दे इतनेसे ही वह पतित कृतार्थ हो जाता है । यह भी आत्मत्यागीके विषयमें है । कारण कि विष्णुने कहा है कि आत्मत्यागी जो पतित है वह जल और अशौचका भागी नहीं इस प्रकरणमें यह वाक्य है, यह गौड़ लिखते हैं । युक्त तो यह है कि यह वाक्य उपलक्षण होनेसे सब पतितोंके निमित्त है, जो किसीने यह लिखा है कि जिस पतितका घटस्फोट कर दिया फिर उसके और कृत्य करनेका अभाव है ऐसे कहनेवाला मूर्ख उपेक्षा करने योग्य है, कारण कि बन्धुओंके त्यागसे जिसको वैराग्य प्राप्त हो गया है और जो प्रायश्चित्त कर चुका है उसकी क्रिया भी कोई न करेगा इस मिताक्षरा आदिके विरोधको उसने नहीं देखा है इससे मूर्ख है ऐसा नहीं । और जिसका घटस्फोट कर्म हो उसका फिर संग्रह नहीं सो उचित नहीं । कारण कि मनुने जिसका घटस्फोट न हुआ हो उसके त्यागको कहकर लिखा है कि प्रायश्चित्त किये पीछे जलसे भरे नये घड़ेको पवित्र जलके स्थानमें उसी पतितको संग लेकर स्नान करके फेंक दे, नहीं तो सब प्रायश्चित्तोंमें इसका प्रसंग हो जायगा इससे घटस्फोटसे जातिबाह्य किये पिताकी भी नारायणबलि वर्षके अन्तमें करनी पायी, सो चाचा आदिके विषयमें निषेध है यह इसका सिद्धान्त है, कोई तो यह लिखते हैं कि नारायणबलि करनेके पीछे भी सपिंडीको त्यागकर अन्त्यकर्म करे, कारण कि श्राद्धप्रकरणमें यह लिखा है और भी यह कथन है कि गौ, ब्राह्मणसे मरे और पतित और निषिद्ध कर्मोंसे मरेकी सपिण्डी न करे, ब्राह्मण आदिमें मृतक हुए और संन्यासी पिताकी सपिंडी न करे, वे भी इससे उपेक्षा करनेको योग्य हैं कि हेमाद्रिमें कहे पूर्वोक्त षट्त्रिंशत् मतका इससे विरोध है, और वह निर्मूल होनेसे श्राद्धप्रकारका वचन वृद्धिश्राद्धके विषयमें जाननेसे उपेक्ष्य है । नारायणबलि तो हेमाद्रिके अनुसारसे लिखते हैं।

द्धप्रकारस्य वृद्धिश्राद्धविषयत्वादुपेक्ष्याः । नारायणबलिस्तु हेमाद्र्याद्यनुसारेणोच्यते । तत्रादौ क्रियानिबन्धे गारुडे तर्पणमुक्तम्—"कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन् ॥ अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुंडरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव ॥" इति । शुक्लैकादश्यां देशकालौ संकीर्त्यामुकगोत्रस्यामुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थमौर्ध्वदैहिकसंप्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्य इति संकल्प्य 'ब्रह्माणं विष्णुं शिवं यमं प्रेतं च पञ्चकुम्भेषु ।' "विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा । ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ॥ प्रेतो दर्भमयः कार्य इति देवप्रकल्पना ।" इति गारुडोक्तासु सर्वासु हैमीषु वा प्रतिमासु षोडशोपचारैः पुरुषसूक्तेनाभ्यर्च्याग्निं प्रतिष्ठाप्य चरुं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं नारायणायेदमिति हुत्वा देवानामग्रे दक्षिणाग्रदर्भेषु विष्णुरूपं प्रेतं स्मरन् नामगोत्राभ्यां मधुघृततिलयुतान् दशपिण्डान् यज्ञोपवीत्येवामुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेत विष्णुरूपाय ते पिण्ड उपतिष्ठतामिति दत्त्वा पुरुषसूक्तेनाभिमन्त्र्य तेनैव शङ्खोदकेनाभिषिच्याभ्यर्च्यामुकशर्माणममुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि । इति पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं तर्पयित्वा एकमामान्नं ब्रह्मादिपञ्चभ्यो दद्यात् । मन्त्रस्तु—"ब्रह्मविष्णुमहादेवा यम-

---

उसकी आदिमें क्रियानिबन्धमें गरुडपुराणके वाक्यसे तर्पण लिखा है कि पुरुषसूक्तसे वा विष्णुके मन्त्रसे दक्षिणको मुख कर प्रेतको विष्णुरूप स्मरण करता हुआ तर्पण करे, और कहे कि आदि, अन्तसे रहित, शंख, चक्र, गदाधारी, अक्षय, पुंडरीकाक्ष जो देव हैं वे प्रेतको मोक्षप्रदान करें । शुक्लपक्षकी एकादशीको देशकालको कहकर अमुक गोत्र और अमुक नामके दुष्ट मृत्यु और आत्महत्याके दोषनाशार्थ औध्र्वदैहिक कर्ममें संप्रदान (जिसको दिया जाय) की योग्यता सिद्धिके निमित्त नारायणबलि करता हूं यह संकल्प करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम, प्रेतको पाँच घड़ोंपर स्थापन करे । सोनेके विष्णु, चाँदीके ब्रह्मा, ताम्रनिर्मित शिवलिंग, लोहका यम, कुशाका प्रेत यमके कथनानुसार निर्माण करे वा सब प्रतिमा सुवर्णकी बनाकर पुरुषसूक्तसे षोडशोपचार अर्चन करके अग्निका स्थापन करने उपरान्त पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे नारायणके निमित्त हवन करके देवताओंके आगे दक्षिणाग्र कुशाओंपर विष्णुरूप प्रेतका नाम, गोत्र उच्चारण कर स्मरण करता हुआ मधु, घी, तिलसे युक्त दश पिंडोंको सव्य होकर प्रदान करे। अमुक गोत्र अमुक शर्मन् प्रेत विष्णुरूप यह पिंड तुमको प्राप्त हो इस प्रकार देकर पुरुषसूक्त और यमसूक्तसे पिंडोंका अभिमंत्रण करना चाहिये और शंखके जलसे छिड़क और पूजा करके अमुक नाम, अमुक गोत्र, विष्णुरूप प्रेतको तृप्त करता हूं, यह कहकर पुरुषसूक्तके प्रत्येक मन्त्रसे तर्पण करके ब्रह्मा आदि पाँच देवताओंके निमित्त एक आमान्न (सीधा) दे दे । यह मन्त्र पढ़े कि ब्रह्मा, विष्णु,

श्चैव सकिंकरः । बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभां गतिम् ॥" इति । मिताक्षरायां तु होमबल्यादि नोक्तम् । ततः प्रतिदैवतं त्रिविधं फलं शर्करामधुगुडघृतानि च निवेद्य पिण्डानभ्यर्च्य नद्यां क्षिप्त्वा रात्रौ नव सप्त पञ्च वा विप्रानभिमन्त्र्योपोषितो जागरं कृत्वा श्वोभूते पुनर्विष्णुं यमं संपूज्यैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्य इत्युक्त्वा विष्णुयमप्रेतान् स्मरन् विप्रानुपवेश्य प्रेतस्थाने चैकं विष्णुं स्मरन् पाद्यावाहनार्घ्ययुतं तृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वोल्लेखनादि कृत्वान्नशेषेण विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय यमाय सपरिवाराय चतुरः पिण्डान् दत्त्वा प्रेतनामगोत्रे स्मृत्वा विष्णुनाम्ना पञ्चमं दत्त्वाभ्यर्च्याचान्तेभ्यो दक्षिणां दत्त्वैकं प्रेतं स्मृत्वा विशेषतः संतोष्य विप्रैः प्रेतायेदं तिलोदकमुपतिष्ठतामिति सतिलमुदकं दापयित्वा भुञ्जीतेति । अत्र विशेषान्तरं भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् । 'सर्पहते तु वर्षपर्यन्तं पूर्वेऽह्न्येकभक्तपूर्वं शुक्लपञ्चम्यामुपवासं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमयं नागमनन्तवासुकिशङ्खपद्मकम्बलकर्कोटकाश्वतरधृतराष्ट्रशंखपालकालियतक्षककपिलेतिनामभिः प्रतिमासं संपूज्य पायसेन विप्रान् संभोज्य वत्सरान्ते हैमं नागं गां च दत्त्वा नारायणबलिं कुर्यात् । एतन्मूलं तु हेमाद्रौ ज्ञेयम् । बौधायनसूत्रे सर्पमृतानां 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इति तिस्र आहुतीर्हुत्वा, उदके मृतानां 'समुद्राय वयुनाय' हुत्वेति क्रियां कुर्यादिति शेषः । व्यासः-

महादेव और अनुचरोंसहित यम बलि लेकर प्रेतकी शुभ गति प्रदान करें । मिताक्षरामें तो हवन बलि आदि नहीं लिखी, फिर प्रत्येक देवताको तीन प्रकारके फल शक्कर, मधु, घृत, गुड़ देकर पिंडोंका पूजन कर नदीमें विसर्जन कर रात्रिमें तो नव, सात वा पाँच ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर व्रत और रात्रिको जागरण करके प्रातःकाल होनेपर फिर विष्णु और यमकी पूजा करके कहे कि एकोद्दिष्ट विधिसे पाँच श्राद्ध करता हूँ; विष्णु, यम, प्रेतका स्मरण करता हुआ ब्राह्मणोंको बैठाकर प्रेतके स्थानमें एक विष्णुको स्मरण करता हुआ पाद्य, आवाहन, अर्घ्य आदिसे युक्त तृप्तिको पूछ करके और वेदीपर उल्लेखन आदि करके ब्राह्मणोंके भोजनके शेष अन्नसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सानुचर यमके निमित्त चार पिंड देकर प्रेतके नाम गोत्रका स्मरण करके विष्णुके नामसे पाँचवाँ पिंड देकर अर्चा करे, और आचमन कराकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर और विशेषकर एक प्रेतका स्मरण करके ब्राह्मणोंके संतोष करने पूर्वक और प्रेतको यह तिलजल प्राप्त हो यह कहलाकर तिलसहित जल प्रदान कराय भोजन करे । इसका अन्य विशेष वर्णन भट्टकृत अन्त्येष्टिपद्धतिमें देख लेना, जो सर्पसे मृतक हुआ हो उसके निमित्त वर्षपर्यन्त एक समय भोजन करके शुक्लपंचमीको उपवास, व्रत वा रात्रिव्रत करके पिट्ठीके सर्पनागकी प्रतिमहीनोंमें अनन्त, वासुकी, शंख, पद्म, कंबल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक, कपिल इन नामोंसे पूजा करे । फिर पायससे ब्राह्मणोंको भोजन कराय वर्षके अन्तमें सुवर्णका नाग और प्रत्यक्ष गौ देकर नारायणबलि करे, इसका मूल तो हेमाद्रिमें लिखा है । बौधायनसूत्रमें तो यह लिखा है कि सर्पसे मृतक हुओंके निमित्त "नमोऽस्तु सर्पेभ्यः" इस मन्त्रसे तीन आहुति देकर और

१ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ य० ॥

"सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम् । व्यासाय दत्त्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्त-वान् ॥" हेमाद्रौ भविष्ये-" पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपात्रम-ध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत् ॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना " इति । अपरार्के स्मृत्यन्तरेऽपि-"तदैव शुद्ध्यति प्रेतो नारायणबलौ कृते । यो ददाति क्रिया-पिण्डं तस्मै प्रेताय वै सुतः ॥ तस्यैवाशौचमुद्दिष्टं त्र्यहमेव न संशयः । विष्णुश्राद्ध-समाप्तौ तु त्रयोदश्यां दिनत्रयम् ॥ आशौचं पिण्डदः कुर्यान्न तु तद्बन्धुगो-त्रजाः । यस्य वै मृत्युकाले तु व्युच्छिन्ना संततिर्भवेत् ॥ स वसेन्नरके नित्यं पङ्कमग्नः करी यथा । " इत्युपक्रम्य-' बलिं नारायणं कुर्यात्तस्योद्देशेन भक्तिमान् ' इति गारुडोक्तेरपुत्रस्यापि पत्न्याद्यैः कार्य इत्युक्तं देवयाज्ञिकेन । अथ विधानादाशौचाभावः । यथा यतियुद्धमृतादिषु-" त्रयाणामाश्रमाणां च कुर्या-द्दाहादिकाः क्रियाः । यतेः किंचिन्न कर्तव्यं न चान्येषां करोति सः ॥" इति ब्राह्मात् । उशनाः-" एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ॥ सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः । त्रिद-ण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥" भिक्षुप्रेतसंस्कारः । अथ तत्संस्कारं वक्ष्यामः ।

जलसे मृतक हुएकी "समुद्राय वयुनाय" इस मन्त्रसे होम करके क्रिया करे । व्यासने लिखा है कि सुवर्णके भारसे नाग और गौको निर्माण कर विधिसे व्यासको देकर पिताके ऋणसे उऋण होता है । हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, पंचमीके दिन एक सोनेका नाग बनावे, दूध और घीके पात्रमें रखकर उसकी अर्चा करके ब्राह्मणको दे, यह नागदष्ट मनुष्यका प्रायश्चित्त शंभुने लिखा है । अपरार्कमें स्मृत्यन्तरका कथन है कि नारा-यणबलिके करते ही प्रेत शुद्ध होता है, जो पुत्र उसके निमित्त पिंड और क्रियाको करे उसको तीन दिन अशौच लिखा है, त्रयोदशीके दिन विष्णुश्राद्धकी पूर्ति होनेपर पिंड देनेवालेको तीन दिन अशौच करना चाहिये, उसके बन्धु और सगोत्री न करे, मरणकालमें जिसके संतति न हो वह नरकमें इस प्रकार वसता है, जैसे कीचमें मग्न हुआ हाथी । इस प्रकरणमें गरुडकी उक्तिसे देवयाज्ञिकने लिखा है कि भक्तिमान् पुरुषको उसके निमित्त नारायणबलि करनी चाहिये । इस प्रकार अपुत्रकी पत्नी आदिको उसकी क्रिया करनी चाहिये । अब विधिद्वारा अशौचके अभावको कथन करते हैं, जिस प्रकार संन्यासी और युद्धमें मृतक हुओंको अशौच नहीं लगता है कारण कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि तीन आश्रमोंकी दाहआदि क्रिया करे, और संन्यासीके निमित्त कुछ भी न करे, कारण कि यह भी किसीका नहीं करता है । उशनाने लिखा है कि संन्यासियोंका एकोद्दिष्ट सदा न करना चाहिये, ग्यारहवें दिन पार्वण करे; पुत्र आदिको उनकी सपिंडी करनेका विधान नहीं; कारण कि त्रिदण्डके ग्रहणसे ही वे प्रेत नहीं होते हैं । संन्यासीका संस्कार आगे लिखेंगे,

दत्तात्रेयः-"एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् । न कुर्याद्वार्षिकादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥" वार्षिकादिति पूर्वभाविमासिकादिनिषेधो नतु दर्शादेः । 'संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि।' इति वायवीयोक्तेः। पृथ्वीचन्द्रोदये प्रजापतिः-"अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते । सपिण्डीकरणं तस्य न कर्तव्यं सुतादिभिः ॥" एषु सापिण्डनादिनिषेधानुवादेन पार्वणोक्तेस्तत्स्थानापन्नत्वं पार्वणस्य गम्यते । 'न गिरागिरेति ब्रूयादैरं कृत्वोद्गेयम्' इतिवत् । इदं वार्षिकादिविधानं च त्रिदण्डिनामेव।एकदण्डिपरमहंसादीनां तु न किमपि कार्यम्। पूर्वोक्तोशनोवाक्ये त्रिदण्डिग्रहणादिति शूलपाण्यादयो गौडाः । त्रिदण्डिशब्देन मनोदण्डादि दण्डत्रयोक्तेः । 'यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति चोच्यते ।' इति स्मृतेः । बौधायनः-'नारायणबलिश्चास्य कर्तव्यो द्वादशेऽहनि ।' अस्य पार्वणेन समुच्चयो ज्ञेयः । तं च स एवाह-"कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत् । अग्नौ कृत्वा तु तच्छेषं व्याहृतीभिः समाहितः ॥ यतीन् गृहस्थान्साधून्वा निमन्त्र्य द्वादशावरान् । अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः॥संभोज्य हव्येनान्नेन दक्षिणां च निवेदयेत् ।त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मज्ञं संयतेन्द्रियम् ॥ विष्णुं यथातथाभ्यर्च्य पाद्या-

---

दत्तात्रेयने लिखा है कि वार्षिक श्राद्धके सिवाय ब्रह्मरूप भिक्षुके निमित्त एकोद्दिष्ट, जल, पिंड, आशौच और प्रेतकृत्य न करे । वार्षिक पदसे प्रथम होनेवाले मासिक श्राद्धोंका निषेध कहा है; अमावस्याके श्राद्धका नहीं कहा, कारण कि वायुपुराणमें लिखा है कि संन्यासीका भी वार्षिक आदि श्राद्ध विधिपूर्वक पुत्र करे । पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रजापतिका वाक्य है कि ग्यारहवें दिन पार्वण करे और पुत्रआदिको उसकी सपिंडी न करनी चाहिये । इन वाक्योंमें सपिंडीके अनुवादसे पार्वण करना लिखा है, इस सपिंडीके स्थानमें पार्वणश्राद्ध जानना, जैसे वाणीसे २ ऐसे न उच्चार करे किन्तु वाणीको उच्चारण करके गावे । यह वार्षिकआदिका विधान त्रिदंडीके विषयमें ही जानना, एकदंडी परमहंसआदिके निमित्त कुछ भी न करे, कारण कि पूर्वोक्त उशनाके कथनमें त्रिदंडीका ग्रहण है, यह शूलपाणि आदि गौडोंका कथन है और त्रिदंडी पदसे मनोदंड आदि तीन दंड ग्रहण किये हैं, कारण कि स्मृतिमें कहा है कि जिसके पास ये दंड विहित हैं वही त्रिदंडी कहाता है । बौधायनने कहा है कि इसकी नारायणबलि बारहवें दिन करनी चाहिये इसका पार्वणके संग समुच्चय समझना, वह भी उसने ही लिखा है कि विष्णुकी महापूजा करने उपरांत खीर निवेदन करे और सावधानचित्त होकर महाव्याहृतियोंसे उसके शेषका अग्निमें होम करे। संन्यासी, गृहस्थ, साधु, महात्माओंको न्यूनसे न्यून बारह निमन्त्रण देकर और बारह नामोंसे गंध, पुष्प आदिसे अर्चा कर, हव्य अन्नसे जिमाकर दक्षिणा दे और तेरहवें आत्मसंज्ञक जितेंद्रिय ब्राह्मण विष्णुरूपको यथायोग्य पाद्यआदिसे पूजन कर पुरुषसूक्तका

द्यैश्च विधानतः। दद्यात् पुरुषसूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् ॥ वस्त्रालंकरणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत्। उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्भानास्तीर्य भूतले ॥ भूर्भुवः स्वः स्वधायुक्तैस्तस्मै दद्याद्बलित्रयम्। अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ तत्फलं लभते देव यः करोति यतिक्रियाम् ।" शौनकस्तु–"शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि नारायणबलिं परम्। चण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषाश्मभिः । देशान्तरमृतानां च मृतानां वान्यसाधनैः॥जीवच्छ्राद्धमृतानां च कनिष्ठानां तथैव च। यतीनां योगिनां पुंसामन्येषां मोक्षकांक्षिणाम्॥पुण्यायाघक्षयार्थाय द्वादशेऽहनि कारयेत्।द्वादश्यां श्रवणेऽदान्ते पञ्चम्यां पर्वणोस्तु वा ॥" इत्युक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वं विधिमुक्त्वा अतो देवेति षड्भिः पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं पायसं हुत्वा केशवादिद्वादशनामभिस्तद्रूपिणे पित्रे द्वादशविप्रान् संभोज्य तैरेव द्वादशपिण्डान्दद्यादित्यधिकमाह।युद्धमृते तु प्रागुक्तम्।कृतजीवच्छ्राद्धमृते सपिण्डैराशौचादि कार्यं न वा।तदुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे–"मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम्।काले गते द्विजे भूमौ खनेद्वापि दहेत वा ॥ पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते ॥" जीवत्यपि विशेषस्तत्रैवोक्तः "नित्यं नैमित्तिकं यत्तु कुर्याद्वा संत्यजेत वा। बान्धवेऽपि मृते तस्य

पाठ कर क्रमसे गंध, पुष्प आदिसे और शक्तिके अनुसार वस्त्र अलंकार आदि देने और उस ब्राह्मणके उच्छिष्टके निकट भूमिमें कुशा बिछाय 'भूर्भुवः स्वः' स्वधासे युक्त इन तीनोंसे तीन बलि उसके निमित्त दे, जो मनुष्य संन्यासीकी इस क्रियाको करता है उसको सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। शौनकने यह लिखा है कि मैं शौनक श्रेष्ठ नारायणबलिको लिखता हूँ, चांडाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली, दाढ़वाले, पशु, रज्जु, शस्त्र, विष, पत्थर इनसे मृतक हुए और देशान्तरमें वा अन्य साधनोंसे मरोंका जीवत् श्राद्ध और छोटोंका श्राद्ध और संन्यासी, योगी और दूसरे मोक्षके अभिलाषियोंके निमित्त, पुण्य और अघक्षयके निमित्त बारहवें दिन करे, वा वर्षके उपरांत श्रवणयुक्त द्वादशीमें वा पञ्चमीमें पार्वण करे। यह कहकर और पूर्वोक्त सब विधिको कहकर 'अतोदेवा०' इन छः मन्त्रोंसे और पुरुषसूक्तके प्रत्येक मन्त्रका पाठ कर पायसका होम करके, केशवआदि बारह नामोंसे विष्णुरूप पितृके निमित्त बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराके उन्हीं नामोंसे बारह पिंड दे, यह अधिक लिखा है। युद्धमें मृतकका तो पूर्व लिख आये हैं और जिसका जीवतेमें श्राद्ध कर दिया हो वह मृतक हो तो सपिंड उसके अशौच आदिको करे वा न करे। यही हेमाद्रिमें लिंगपुराणके वाक्यसे लिखा है कि जिससे वह स्वयं जीवन्मुक्त है इस कारण उसके मृतक होनेपर अन्त्यक्रिया करे वा न करे, समय प्राप्त होनेपर मृत्यु हो जाय तो ऐसे द्विजको भूमिमें गाड दे वा जला दे और सम्पूर्ण पुत्रका कार्य करके दोष नहीं है। जीवते हुएका भी वहाँ ही विशेष लिखा है कि नित्य नैमित्तिक कर्मको करे वा त्याग दे,

नैवाशौचं विधीयते ॥ सूतकं च न संदेहः स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥" एतद्योगिविषयम्। 'योगमार्गरतोऽपि च' इति तस्याप्युक्तेः । तथाऽऽहिताग्नौ प्रोषितमृते तदस्थिदाहात्पूर्वं पित्रादीनामाशौचं संध्यादिकर्मलोपश्च नास्ति ।"अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति ॥"इति स्मृतेः । आहिताग्नेर्दाहात्प्रागपि दशाहः संस्काराङ्गं च भिन्नो दशाह इति धूर्तस्वामी रामाण्डारश्च । तच्चिन्त्यम्। मूलैक्याद्वचोविरोधाच्च । एतत्प्रागुक्तम् । अत्र देहस्यैव संभवे दाहः । "आहिताग्नौ विदेशस्थे मृते सति कलेवरम् । निधेयं नाग्निभिर्यावत्तदीयैरपि दह्यते ॥"इति ब्राह्मोक्तेः । तदभावे छन्दोगपरिशिष्टे-"विदेशमरणेऽस्थीनि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा । दाहयेद्दर्भैषाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ अस्थ्नामलाभे पर्णानि शकलान्युक्तयावृता । दाहयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥" हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते-" कुर्याद्दर्भमयं प्रेतं दर्भैस्त्रिशतषष्टिभिः । पालाशिभिः समिद्भिर्वा संख्या चैव प्रकीर्तिता ॥ " भविष्ये-" चत्वारिंशच्छिरस्थाने ग्रीवायां च दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्याद्विंशतिं च तथोरसि ॥ उदरे विंशतिं दद्या-

---

उसकी मृत्युसे बांधवोंको अशौच और सूतक नहीं है, केवल स्नानमात्रसे शुद्धि होती है, परन्तु यह योगीके विषयमें जानना, कारण कि योगमार्गरतोऽपि च ' ऐसा कहा है और आहिताग्नि परदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो उसकी अस्थियोंके दाहसे प्रथम पुत्र आदिको अशौच और सन्ध्या आदि कर्मका लोप नहीं होता है, कारण कि यह स्मृतिमें है कि अग्निहोत्रीसे पृथक्के मरनेमें द्विजातियोंमें अशौचआदि लगता है और अग्निहोत्री विदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो दाहसे अशौचआदि जानना चाहिये। आहिताग्निका दाहसे प्रथम भी दश दिनका और संस्कारका अंग अशौच दश दिनका पृथक् होता है, यह धूर्तस्वामी और रामांडारका कथन है, सो अप्रमाण है, कारण कि प्रमाण एक ही है और वाक्योंका विरोध भी पड़ता है, यह कथन पहले लिख आये हैं। यहां देह मिले तो दाह है, क्योंकि आहिताग्निकी विदेशमें मृत्यु हो जाय तो देहको रख ले, कारण कि जबतक उसका ही अग्निसे दाह नहीं होता तबतक गति नहीं होती, यह ब्राह्मपुराणका वाक्य है। वह न हो सके तो छन्दोगपरिशिष्टमें वर्णन किया है कि विदेशमें मृत्यु हो तो अस्थियोंको लाकर और घृत लगाकर कुशाओंसे ढककर दग्ध करावे और पात्रोंका त्यागादि पूर्वके समान करे। यदि अस्थि न मिले तो पूर्व प्रकारसे अस्थियोंकी संख्याके समान पत्तोंको दाह करे और उसी दिनसे सूतक लगता है। हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मत लिखा है कि कुशाओंका प्रेत बनावे और उसमें तीन सौ साठ कुशा हों, और इतनी ही संख्या ढाककी समिधोंकी है। भविष्यपुराणका वाक्य है कि शिरके स्थानमें चालीस, ग्रीवामें दश, भुजाओंमें सौ, छातीमें बीस, पेटमें बीस, कटिमें तीस, दोनों ऊरुमें सौ,

त्रिंशतं कटिदेशयोः । ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात् त्रिंशतं जानुजंघयोः ॥ पादाङ्गुलीषु दश वै एषा च प्रेतकल्पना ॥ " मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः–" शिरस्यशीत्यर्धं दद्याद् ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैकशतं दद्याद्दश चैवाङ्गुलीषु च ॥ उरसि त्रिंशतं दद्याद्विंशतिं जठरोदरे । द्वादशार्द्धं वृषणयोरष्टार्धं शिश्न एव तु ॥ ऊर्वोश्चैकशतं दद्यात्त्रिंशतं जंघयोर्द्वयोः ।· पादांगुलीषु द्वे दद्यादेतत्प्रेतस्य कल्पनम् ॥ मस्तके नारिकेरं तु अलाबुं तालुके तथा । पञ्चरत्नं मुखे न्यस्य जिह्वायां कदलीफलम् ॥ चक्षुषोस्तु कपर्दौ द्वौ नासिकायां तु कालकम् । कर्णयोर्ब्रह्मपत्राणि केशे वटप्ररोहकाः ॥ नालकं कमलानां तु अन्त्रस्थाने विनिक्षिपेत् । मृत्तिका तु वसा धातुर्हरितालकगन्धकौ ॥ शुक्रे तु पारदं दद्यात्पुरीषे पित्तलं तथा । संधिषु तिलमिष्टं तु मांसे स्याद्यवपिष्टकम् ॥ मधु स्याल्लोहितस्थाने त्वचास्थाने मृगत्वचा । स्तनयोर्जर्जके देये नासायां शतपत्रकम् ॥ कमलं नाभिदेशे स्याद्वृन्ताके वृषणाश्रिते । लिङ्गे च रक्तमूलं तु परिधानं दुकूलकम् ॥ गोमूत्रं गोमयं गन्धं सर्वौषध्यादि सर्वतः ॥" इति क्रियानिबन्धे । गारुडेऽप्येवमुक्त्वान्यदपि–" घृतं नाभ्यां तु देयं स्यात्कौपीने च त्रपु स्मृतम् । मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुंकुमेन विलेपनम् ॥ सिन्दूरं नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्युपहारकैः । सर्वौषधियुतं कृत्वा पूजां चैव यथोदिताम् ॥"इदं निरग्नेरपि । तत्रैव वृद्धमनुः–"प्रोषितस्य तथा कालो गतश्चेद्द्वादशाब्दिकः । प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत् ॥ "

जानु और जंघाओंमें तीस, पादकी अंगुलियोंमें दश लगावे, यह प्रेतकी कल्पना है । मदनरत्नमें यज्ञपार्श्वका कथन है कि शिरमें चालीस ग्रीवामें दश, बाहोंमें सौ, अंगुलियोंमें दश, छातीमें तीस, जठर और उदरमें वीस, वृषण (अण्डकोष) में छः, लिंगमें चार, जंघाओंमें सौ और छोटी जंघाओंमें तीस, पादकी अंगुलियोंमें दो दो दे, यह प्रेतकी कल्पना (बनाना) है । मस्तकपर नारियल, तालूपर, तूंबी, मुखमें पंचरत्न, जिह्वामें केलेकी फली, नेत्रोंमें दो कौडी, नासिकामें काले तिलका फूल, कानोंमें ब्राह्मीके पत्ते, केशोंमें बड़के अंकुर, कमलोंकी नाली आंतोंमें रक्खे, बसा (चर्बी) के स्थानमें मिट्टी, धातुके स्थानमें हरताल और गन्धक, वीर्यमें पारा, विष्ठामें पित्तल, सन्धियोंमें तिलकी खल, मांसमें यवकी पिट्ठी, रुधिरमें शहत, त्वचामें मृगछाला, स्तनोंमें चौटली, नासिकामें कमल, नाभिमें कमल, वृषणोंमें बैंगन, लिंगमें लालमूली दे और ढकनेके निमित्त डुपट्टा, गोमूत्र, गोबर, गन्ध, सर्वौषधी आदिको सर्वत्र लगावे, यह क्रियानिबन्धमें लिखा है और गरुडपुराणमें इस प्रकार लिखकर और भी कहा है कि नाभिमें घी, कौपीनमें रांगा, स्तनोंमें मोती, मस्तकपर कुंकुम और नेत्रके कोणोंमें सिंदूर लगाना और ताम्बूलआदि सामग्री और सर्वौषधिसे युक्त करके विधिसे पूजा करे । यह निरग्निके भी निमित्त है । वहां ही वृद्धमनुने लिखा है कि यदि परदेशमें गयेको बारह वर्ष बीत गये हों तो तेरहवें वर्षमें प्रेतकर्म करे । बृहस्पतिने लिखा है

बृहस्पतिः–"यस्य न श्रूयते वार्ता यावद्द्वादशवत्सरात् । कुशपुत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणा ॥" भविष्ये–"पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागमः । ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ॥ कुर्यात्तस्य तु संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदादीन्येव सर्वाणि प्रेतकर्माणि कारयेत् ॥"द्वादशाब्दप्रतीक्षा पितृभिन्नविषयेति मदनरत्ने उक्तम् । गृह्यकारिकायां तु–"तस्य पूर्ववयस्कस्य विंशत्यब्दोर्ध्वतः क्रिया । ऊर्ध्वं पञ्चदशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता ॥ द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमुत्तरे वयसि स्मृता । चान्द्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत् कृच्छ्राणि वा सुतैः ॥ कुशैः प्रतिकृतिं दग्ध्वा कार्याः शौचादिकाः क्रियाः ॥"इत्युक्तम् । पराशरः–"देशान्तरगतो नष्टस्तिथिर्न ज्ञायते यदि । कृष्णाष्टमी ह्यमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥ उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ " इदं मासज्ञाने । तत्राहिताग्नेः पूर्णाशौचम् । अनाहिताग्नेस्तु त्रिरात्रम् । "अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना स्वयम् । तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि ॥ वेष्टितव्यस्तथा यत्नात् कृष्णसारस्य चर्मणा । ऊर्णसूत्रेण बद्ध्वा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा ॥ सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबान्धवैः ॥ एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" इति ब्राह्मोक्तेः । इदं त्रिरात्रं न दशाहमध्ये दाहे । तत्र 'प्रोषिते कालशेषः स्यात्' इत्युक्तेः । किंतु तदूर्ध्वम् । तत्र पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोर्दशाहाद्येव । गृहीताशौचयोस्तु त्रिरात्रम् ।

कि बारह वर्षतक जिसकी वार्ता न सुने उसका कुशाके पुत्तलसे दाहका निश्चय करे। भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि जिसके पिताकी परदेशसे न वार्ता सुनायी दे और न वह आवे तो पन्द्रह वर्षके पीछे उसका पुतला बनाकर यथोक्तविधिसे संस्कार करे और दाह आदि प्रेतकर्म करावे। बारह वर्षकी बाट देखना पितासे भिन्नके विषयमें है, यह मदनरत्नमें लिखा है । गृह्यकारिकामें तो लिखा है कि यदि वह प्रथम अवस्थाका हो तो बीस वर्षके उपरान्त और मध्यम अवस्थामें पन्द्रह वर्षके उपरान्त और उत्तर अवस्थामें बारह वर्षके उपरान्त क्रिया करे, तीन चांद्रायण वा तीस कृच्छ्र पुत्र करके कुशाओंका पुतला निर्माण कर और दग्ध करके शौचआदि क्रिया करना चाहिये यह लिखा है। पराशरने कहा है कि देशान्तरमें जाकर मरा हो और तिथिका ज्ञान न हो तो कृष्णपक्षकी अष्टमी, अमावस्या तथा एकादशीमें जल, पिंडदान और श्राद्ध करना चाहिये, यह मासके जाननेपर है। वहां आहिताग्निका पूर्ण अशौच और अनाहिताग्निका तीन दिन लगता है और अनाहिताग्निके शरीरको गृह्यअग्निसे स्वयं दग्ध करे, वह न मिले तो पलाशोंके डांठलोंका पुतला निर्माण करे और काली मृगछालासे उसे आच्छादित करे, ऊनका सूत लपेटकर जलमें पिसे यवसे लीपे और अग्निसे दाह करे और बांधव इस प्रकार कहें कि परमेश्वरके निमित्त यह स्वाहा है, इस प्रकार पत्तोंके मृतकको जलाकर तीन दिन अशौच लगता है, यह ब्रह्मपुराणमें लिखा है। यह त्रिरात्र दश दिनके मध्यमें हो तो नहीं है, दशाहमें दाह हो

पत्नीमृतौ भर्तुश्चैवं सपत्न्योश्चैवमिति स्मृत्यर्थसारे। अन्यसपिंडानां तु सर्वत्र पर्णशरदाहे त्रिरात्रम्। तदाहाङ्गिराः-'देशान्तरमृतं श्रुत्वा नाशौचं चेत्कथंचन।' गृहीतमिति शेषः। 'कालात्ययेऽपि कुर्वीत दाहकाले दिनत्रयम्।' इति। स्मृत्यर्थसारे तु गृहीताशौचानां स्नानमात्रमुक्तम्। एवं बह्वृचपरिशिष्टेऽपि। अथातीतसंस्कारः। स चेदन्तर्दशाहं स्यात्तत्रैव सर्वं समापयेदूर्ध्वमाहिताग्नेर्दाहात्सर्वमाशौचं कुर्यादन्येषु पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोः सर्वमाशौचम्। गृहीताशौचयोः कर्माङ्गमिति त्रिरात्रमिति। षडशीतावप्येवम्। विश्वादर्शे तु-'प्रतिकृतिदहने त्वग्निदे स्यात्त्रिरात्रम्' इत्युक्तम्। द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं दाहे तु पुत्रादीनां सर्वेषां त्रिरात्रमिति कल्पतरुदिवोदासादयः। अथ प्रेतसंस्कारे कालः। हेमाद्रौ गार्ग्यः-"प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत्। आशौचमध्ये संस्कारे दिनं शोध्यं तु संभवे॥ आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः। संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि॥ प्रेतकार्याणि

तो परदेशीकी मृत्युमें कालका शेष लिखा है, किन्तु वह दश दिनके उपरान्त जानना। वहाँ भी भार्या वा पुत्र यदि प्रथम अशौच न माना हो तो दशाह आदि ही होता है और मान लिया हो तो तीन दिन। इसी प्रकार पत्नीके मरनेमें पतिको है, कारण कि सपत्नियोंको इसी प्रकार है, यह स्मृत्यर्थसारमें कहा ह और सपिंडोंको तो पर्णशरदाहमें सब स्थानमें तीन रात अशौच होता है, यही अंगिराने लिखा है कि देशान्तरमें मृतक हुएका सुनकर कदाचित् अशौच नहीं लगता, समय बीतनेपर भी दाहके समयमें तीन दिन अशौच करे। स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि, जिन्होंने अशौच मान लिया हो उनको स्नानमात्र करना और बह्वृचपरिशिष्टमें भी इसी प्रकार लिखा है। अब अतीत संस्कारका वर्णन करते हैं कि यदि वह संस्कार दश दिनके उपरान्त हो तो वहाँ ही सम्पूर्ण कर दे, इसके उपरान्त आहिताग्निको दाहसे सम्पूर्ण अशौच करना चाहिये और अन्योंमें यदि पूर्व अशौच न ग्रहण किये हों तो उन पत्नी, पुत्रोंको सम्पूर्ण अशौच मानना चाहिये और जो अशौचको मान लिया हो उनको कर्मका अंग तीन दिन अशौच लगता है। षडशीतिमें भी इसी प्रकार लिखा है। विश्वादर्श ग्रन्थमें तो यह लिखा है कि प्रतिकृतिके दाह करनेमें अग्नि देनेवालेको तीन दिन अशौच लगता है। बारह वर्ष आदि प्रतीक्षाके उपरान्त दाह हो तो पुत्र आदि सबको तीन रात लगता है, यह कल्पतरु तथा दिवोदास आदिका कथन है। अब प्रेतके संस्कारकालको लिखते हैं-हेमाद्रिमें गार्ग्यका वचन है कि प्रत्यक्ष मृतकके संस्कारमें दिनको न शोधे, अशौचके मध्यमें सम्भव हो सके तो दिनको शोधे और अशौचकी निवृत्ति हो जानेपर यदि वर्षदिनसे उपरान्त मृतकका संस्कार किया जाय तो दिन शोधकर ही प्रेतकर्मोंको करे; उसमें उत्तरायण उत्तम है

कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु दिनत्रयम् ॥" वाराहे-"चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत्। प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृतौ परिघे तथा ॥ करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा । त्रयोदश्यां विशेषेण जन्मतारात्रये तथा ॥" जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः। भारते-"नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः॥ न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाग्नेये च भारत ॥ दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत्॥" काश्यपः-" भरण्यार्द्रामघाश्लेषामूलद्विचरणानि च । प्रेतकृत्येऽतिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पञ्चकम् ॥ फाल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनुराधापुनर्वसू । आषाढे द्वे विशाखा च भानि द्विचरणानि च ॥" ज्योतिर्नारदः-"चतुर्दशीतिथिं नन्दां भद्रां शुक्रारवासरौ । सितेज्ययोरस्तमयं द्व्यंघ्रिमं विषमांघ्रिमम् ॥ शुक्लपक्षं च संत्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम् । वसूत्तरार्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैव दहनात्कुलनाशनम् ।" अस्यापवादमाह तत्रैव बैजवापः"-प्रेतस्य साक्षाद्दग्धस्य प्राप्ते त्वेकादशेऽहनि । नक्षत्रतिथिवारादि शोधनीयं न किंचन ॥ युगमन्वादिसंक्रांतिदर्शे प्रेतक्रिया यदि । दैवादापतिता तत्र नक्षत्रादि न शोधयेत् ॥ विश्वप्रकाशेऽपि-"गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये पौषमासे मलिम्लुचे । नातीतः पितृमेधः स्याद्गयां गोदावरीं विना॥" दानमपि तत्रैवोक्तम्-"भद्रायां भूमिदानं स्यात्त्रिपा-

---

और उसमें भी कृष्णपक्षके तीन दिन त्याग दे। वाराहपुराणका वाक्य है कि चतुर्थ, अष्टम, द्वादश चन्द्रमा त्याग दे, और व्यतीपात, वैधृति, परिघ, विष्टि, करण और शनिवार विशेषकर त्रयोदशी तिथि, जन्मका, दशवाँ और उनइसवाँ इन तीन जन्मके तारोंमें प्रेतकर्म न करना चाहिये। महाभारतमें कहा है कि जिसमें उत्पन्न हो उस नक्षत्रमें मनुष्य न करे, और प्रोष्ठपद (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ) और कृत्तिकामें हे भारत! न करे, और दारुणसंज्ञक नक्षत्र और प्रत्यरितारामें वर्जे दे। काश्यपका वाक्य है कि भरणी, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, मूलके दो चरण और धनिष्ठा आदि पञ्चक ये प्रेतकर्ममें निषिद्ध हैं, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, अनुराधा, पुनर्वसु, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, विशाखा और दो चरणवाले नक्षत्र ये भी किञ्चित् निषिद्ध हैं, यथासम्भव इनको भी त्याग दे, ज्योतिर्नारदका कथन है कि चौदश, नंदा, भद्रा तिथि, शुक्र और मंगलवार, गुरु, शुक्रके अस्त, दोचरणके और विषमचरणके नक्षत्र और शुक्लपक्षको त्यागकर फिर दाह करना उत्तम है, धनिष्ठाके उत्तरार्द्धसे पांच नक्षत्र, जन्मके तीन नक्षत्र, रेवती रोहिणीमें दाहसे कुलक्षय होता है, इसका अपवाद उसी स्थलमें बैजवापने लिखा है कि साक्षात् दाह किये प्रेतके ग्यारहवें दिन नक्षत्र, तिथि, वार आदि कुछ न शोधे, युगादि, मन्वादि, संक्रांति, अमावस्यामें प्रेतक्रिया यदि दैवस आ पडे तो वहाँ दिन, नक्षत्र आदिका शोधन न करे। विश्वप्रकाशमें भी कहा है कि गुरु और शुक्रका अस्त, पौष, मलमासमें गया गोदावरीको त्यागकर अतीतप्रेतका संस्कार नहीं होता, दान भी वहाँ ही लिखा है कि

द्र्क्षे हिरण्यदः । वारेषु तत्तद्वर्णं तु वासोदानं विधीयते ॥ धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि दापयेत् । एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ।" इत्यलं प्रसङ्गेन । हेमाद्रौ वृद्धमनुः–"अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदैहिकम् । प्रायश्चित्तमसौ स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च ॥ जीवन्यदि समागच्छेद्घृतकुम्भे निमज्य तम् । उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥ द्वादशाहं व्रतचर्या त्रिरात्रमथवास्य तु । स्नात्वोद्वहेत तां भार्यामन्यां वा तदभावतः ॥ अग्नीनाधाय विधिवद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् । अथैन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु ॥ इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूंस्ततः ।" अनाहिताग्नेस्तु चरुः । मृतवार्ताश्रवणे त्वाश्वलायनः–'सुरभय एव यस्मिन् जीवे मृतशब्दः' इति । यस्य तु जीवत एव मृतिवार्त्तां श्रुत्वा स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तद्वैधमेव भर्तुर्मरणज्ञानस्यैव निमित्तत्वात् । प्रमात्वस्य गौरवेणायुक्तत्वाच्चेति केचित् । तन्न । मरणज्ञानस्य निमित्तत्वेऽतीतानागतयोरपि तत्त्वापत्तेः । भर्तुर्वैधदाहाभावेन तस्याः सहगमनाभावाच्च । तस्मादाशौचवज्ज्ञातमरणस्यैव निमित्तत्वम् । नचात्र तदस्ति । परं काम्यं मरणमस्तु । अत आत्महननदोषोऽस्तीति तातपादाः । सर्पसंस्कारविधिः । तथा सर्पसंस्कारे

भद्रामें करे तो भूमिका दान, त्रिपाद नक्षत्रमें सुवर्ण दान, वारोंमें उस २ वर्णका वस्त्रदान, धनिष्ठा आदि पंचकोंमें मृतक हो तो पंचरत्नका दान करे, इक्यासी पल कांसा उससे आधी वा उससे भी आधी, वा नौ, छः, तीन पल कांसी ब्राह्मणको शक्तिसे दान करे, प्रसंगसे यह ठीक नहीं । हेमाद्रिमें वृद्धमनुने लिखा है कि जिसकी मृत्यु न हुई हो और मृत्यु सुनकर उसका और्ध्वदैहिक कर दिया हो वह प्रायश्चित्त करके अग्निका आधान करे । यदि वह जीवित आ जाय तो घीके घड़ेमें उसे मग्न करके निकालकर स्नान कराकर जातकर्म आदि करे, उसकी बारह दिनतक ब्रह्मचर्या वा तीन दिन ब्रह्मचर्या करे, फिर स्नान करके उसे स्त्रीको वा उसके अभावमें दूसरी स्त्रीको ही विवाहे, पीछे विधिसे अग्निस्थापन करके व्रात्यस्तोमयज्ञ करना चाहिये । अथवा इन्द्राग्निके निमित्त पशुयज्ञ करना चाहिये । पर्वतमें जाकर आयुष्मतीनामक यज्ञ और दूसरे यज्ञोंको करे, अनाहिताग्निका तो मृत हुएकी वार्ता सुननेपर चरु निर्माण करे, यह आश्वलायनने लिखा है, और जीतेजी जिसमें मृतक शब्द हो उसके निमित्त गोदान करे, जिसकी जीते हुएकी मृतवार्ताको सुनकर स्त्रीने सहगमन (सती होना) किया हो तब तो वह स्वधापूर्वक है, कारण कि स्वामीके मरणका ज्ञान ही उसका निमित्त है, प्रमाणका खोज करना तो गौरवसे युक्त नहीं है, यह किन्हींका कथन है, सो उचित नहीं । कारण कि यदि मरण ज्ञानको निमित्त मानोगे तो भूत और भविष्यत् मरणमें भी सती होना प्राप्त होगा और जब स्वामीका विधिसे दाह नहीं है, तब उसका सती होना भी असंभव है, इससे अशौचके तुल्य ज्ञात मरण ही वहाँ निमित्त कारण है, सो वहाँ है ही नहीं, हो तो इच्छित मरण हो, इससे आत्महत्याका दोष है यह हमारे पूज्य पिताजीने कहा है । ऐसे ही सर्पके संस्कार करनेमें भी तीन दिनका अशौच लगता है, उसकी

कृते त्रिरात्रमाशौचं तद्विधिं चाह शौनकः-"अथ वक्ष्यामि सर्पस्य संस्कारविधि-मुत्तमम् । सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कारयेत् ॥ कृतसर्पवधो विप्रः पूर्वजन्मनि वा यदि । वधं प्रख्यापयेत्पापी चरेत्कृच्छ्रांश्चतुर्दश ॥ विप्राय लोहदण्डं च तन्मूल्यं वापि दापयेत् ।" मूल्यमाह-"निष्कत्रयं द्विनिष्कं वा निष्कमेकं कनीयसम् । अनुमत्यादिकर्तॄणां निष्कमर्धं तदर्धकम् ॥" इदं स्वर्णरूप्ययोः शक्त्या ज्ञेयम् । संस्कारमाह-"प्रियंगुव्रीहिगोधूमतिलपिष्टेन वा पुनः । कृत्वा सर्पाकृतिं शूर्पे निधाय प्रार्थयेदहिम् ॥ एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन्पिष्टे समाविश । संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समासतः ॥ वस्त्रोपवीतगन्धाद्यैः संपूज्य च हरेद्बहिः । कुर्यात्संस्कारसंकल्पं प्राणायामपुरःसरम् ॥ यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्पसंस्कारकर्म तु । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य समिदाधानमाचरेत् ॥ ततोऽग्नेरग्निदिग्भागे भूमिं संप्रोक्ष्य वारिभिः । चितिं कृत्वाथ संस्तीर्य कुशैराग्नेयकाग्रकैः ॥ पर्युक्ष्याग्निं परिस्तीर्य परिषिच्य समर्चयेत् । कृत्वेध्माधानमाघारौ चक्षुषी च यथाविधि ॥ सर्पं गृहीत्वा यत्नेन चितिमारोपयेत्सुधीः । स्रुवेण जुहुयादाज्यमग्नौ व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ सर्पास्ये जुहुयादाज्यं व्याहृत्या च समग्रया । आज्यशेषं स्रुवेणैव सर्पदेहे निषेचयेत् ॥ चमसस्थैर्जलैः सर्पं व्याहृत्याभ्युक्ष्य पाणिना । 'अग्ने रक्षाण' इत्यनया सर्पायाग्निं प्रदापयेत् ॥ उपतिष्ठेद्दह्यमानं 'नमोऽस्तु' सर्पमन्त्रतः ।

विधि शौनकने इसी प्रकार लिखी है, अब सर्पसंस्कारका श्रेष्ठ विधान वर्णन करते हैं, अमावास्या, पूर्णिमा, पंचमीके दिन सर्पसंस्कार करे, जिस ब्राह्मणने पूर्वजन्ममें सर्पका वध किया हो वह पापी उस वधको प्रकट करके चौदह कृच्छ्रव्रत करे, और ब्राह्मणके निमित्त लोहेका दंड वा उसका मूल्य देना चाहिये । सर्पके मारनेमें लोहेका दण्ड देना । मूल्य यह लिखा है कि तीन वा दो निष्क, एक निष्क, आधा वा चौथाई शक्तिसे चांदी वा सुवर्ण देने । संस्कार यह लिखा है कि कांगनी, व्रीहि, गोधूम वा तिलकी खलसे सर्पकी मूर्ति बनाय और छाजसूपमें रखकर सर्पकी स्तुति करे कि हे पहले मरा सर्प तू आ और इस मिट्टीमें प्रवेश कर मैं संस्कारके निमित्त संक्षेपसे भक्तिपूर्वक तेरी प्रार्थना करता हूँ । वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध आदिसे पूजकर और उसे बाहर ले जाकर प्राणायामपूर्वक संस्कार करे, फिर संकल्प करे, यह संस्कार सव्य होकर करना चाहिये । लौकिक अग्निको स्थापन करके समिधा रक्खे, फिर अग्निसे अग्निकोणमें जलसे भूमिको छिडककर चिता बनावे, अग्निकोणको अग्रभागवाली कुशा बिछाकर चितामें अग्नि स्थापन कर, जलसे छिडक पूजा करे फिर इंधन रखकर आघार और चक्षुषी आहुति प्रदान कर बुद्धिमान् यत्नसे सर्पको लेकर चितामें रक्खे, फिर स्रुवेसे तीनों व्याहृति पढकर अग्निमें घृतकी आहुति दे, सर्पके मुखमें सब व्याहृतियोंसे घृतका होम करे और उसके देहमें स्रुवेसे घृतका शेष सींचे । चमसके जलोंसे व्याहृतियोंसे सर्पको सींचकर हाथसे स्पर्श करके 'अग्नेरक्षाण'

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया ॥ पूर्वजन्मनि वा सर्प तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि । क्षीराज्येन ततश्चाग्निं प्रोक्ष्य व्याहृतिभिर्जलैः ॥ नास्थिसंचयनं कुर्यात् स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत् । ब्रह्मचर्यादिकं कार्यं त्रिरात्राशौचमिष्यते ॥ सचैलं तु चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा विप्रान् समर्चयेत् । सर्पोऽनन्तस्तथा शेषः कपिलो नाग एव च ॥ कालिकः शंखपालश्च भूधरश्चेति नामभिः । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेद्द्विजान् ॥ घृतपायसभक्ष्यैश्च द्विजानष्टौ तु भोजयेत् । एवं कृते विधानेन सर्वसंस्कारकर्मणि ॥ सर्पहिंसाकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।" इति सर्पसंस्कारः ॥ जीवतोऽन्त्यकर्माशौचं च । क्वचित्तु जीवतोऽप्यन्त्यकर्माशौचं च कार्यम् । यथा प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य घटस्फोटे "पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह । निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्तदा । अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ॥" इति मनूक्तेः । निन्दिते रिक्तादौ । अपरार्के वसिष्ठोऽपि—'वेदविप्लावकशूद्रयाजकोत्तमवर्णवर्गपतितास्तेषां पात्रनिनयनमपात्रसङ्करादकृत्स्नं पात्रमादाय दासोऽसवर्णपुत्रो वा बन्धुरसदृशो वा गुणहीनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्यापःपूर्णपात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशाज्ञातयोऽन्वालभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु

इस मंत्रसे सर्पको अग्नि दे, जब प्रज्वलित होने लगे तब 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इस मंत्रसे प्रार्थना करे कि हे सर्प ! ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने पूर्वजन्ममें सर्पका वध किया हो तो उस सबको तू क्षमा करना, दूध और घृत तथा जलसे व्याहृति पढ़कर जलोंसे अग्नि छिड़के और फिर अस्थिसंचयन न करे, और स्नान करके घरको आगमन करे, ब्रह्मचर्य आदि करे और इसका तीन दिन अशौच करना चाहिये, चौथे दिन सचैल स्नान करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे, और सर्प, अनन्त, शेष, कपिल, नाग, कालिक, शंखपाल, भूधर इन आठ नामोंसे गंध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे ब्राह्मणोंकी अर्चा करे । घृत, दुग्ध, भक्ष्योंसे आठ ब्राह्मण जिमावे, इस विधिसे संस्कार करनेसे सर्पकी हत्यासे मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं । इति सर्पसंस्कारः । कहीं तो जीवित हुएके भी अन्तकर्मका अशौच करना लिखा ह, जैसे प्रायश्चित्तकी इच्छा करते हुए पतितके घटस्फोटमें मनुने लिखा ह कि बांधवोंसहित सपिंड रिक्ताआदि निन्दित तिथि, दिनमें, सायाह्नके समय ज्ञाति ऋत्विक् गुरुके निकट जलसे भरे घटको दासी इस प्रकार फेंक दे जैसे प्रेतके निमित्त डालते हैं, बांधवोंसे सहित एक दिन रात बैठे रहे, और अशौच नहीं लगता । अपरार्कमें वसिष्ठने लिखा है कि वेदके नाशक, शूद्रका यज्ञ करानेवाले जो विप्रआदि वर्णोंके संघट्टसे पतित हो गये हैं, उनके पात्रका दान कुत्सित पात्रोंमेंसे करे, अर्थात् निंदित पात्रोंमेंसे एक पात्र उनको दे, असवर्ण भार्याका पुत्र वा असवर्ण बन्धु उस पात्रको लेकर बाँये पगसे अग्रभागसे छिन्न हुई लाल कुशा बिछाकर जलसे पूर्ण उस पात्रको पतितके निमित्त दान करे । उस पात्रके ले जानेवालेको बालोंको खोलकर सब जातिके मनुष्य छुएँ फिर अपसव्य हो यथेच्छ

स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन तं धर्मयन्तः' इति । उत्तमवर्णा ब्राह्मणादयः तेषां वर्गः समूहस्तस्मात्पतिता ब्रह्महादयः । अपात्रसङ्करः कुत्सितपात्रसमूहः । प्रवृत्ताग्राः छिन्नाग्राः । स्वैरं यथेच्छं धर्मादिकार्यं कुर्युः । अस्माद्वचनसामर्थ्यात्पात्रनिनयनात्प्राक्पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपरार्कः। 'तस्य विद्यागुरुयोनिसम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः' । 'दासः कर्मकरो वाऽवकरादमेध्यं पात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदा विपर्यस्येदमुदकं करोमि इति नामग्राहं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः' इति गौतमोक्तेश्च । उदकादीत्युक्तेर्दाहनिवृत्तिः । प्रेतकार्याण्येकादशाहश्राद्धान्तानि । दास्याहृतोऽम्बुघटो दासीघटः । तेनोदकेनामेध्यपात्रं पूरयित्वा दासादिर्न्युब्जं वामपादेन कुर्यादिति हरदत्तः । अत्र नामग्राहवचनमुदकादिप्रेतकार्ये तद्वर्जनत्वार्थम् । तेन तत्तूष्णीं भवति । एतच्च प्रायश्चित्तानिच्छोः । 'तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्याप्य तमनुभाष्य पुनःपुनराचारं लभस्वेति सपद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्' इति शंखोक्तेः । जीवन्तमेवोद्दिश्य पिंडोदकश्राद्धानि नाम्ना दद्यादित्यपरार्कः । कृतप्राय-

---

घर आवे, यह करने उपरान्त उसके संग धर्मआदि व्यवहार करे, न करे तो उसके तुल्य ही होते हैं, इस वाक्यके सामर्थ्यसे पात्र नियतसे प्रथम पतित ज्ञातियोंको धर्ममें अधिकार है नहीं यह अपरार्क लिखते हैं । उसके विद्यागुरु, योनिसम्बन्ध सब एकत्र होकर जलदानआदि सम्पूर्ण प्रेतकर्म करें और इसके पात्रको औंधे करनेका निषेध है । कोई कर्मकर (भृत्य) पात्रोंमेंसे अपवित्र पात्रको लेकर दासीके घडोंमेंसे भरकर दक्षिण मुख किये चरणसे फेंक दे और नाम लेकर यह जल देते हैं, यह कहकर सब जातिके मनुष्य देनेवालेको छुए और शिखा खोले हुए विद्यागुरु और योनिसम्बन्धवाले देखते रहें और जलका स्पर्श करके ग्राममें प्रवेश करें, यह गौतमने लिखा है । जलदान कथनसे यहाँ दाहकी निवृत्ति है और प्रेतकार्य एकादशाहपर्यन्त लेना । हरदत्तने तो यह लिखा है कि दासीके लाये हुए जलके घड़ेको दासीघट कहते हैं, उसके जलसे अपवित्र पात्रको भरकर दास आदि बांये चरणसे औंधा करें । यहाँ नाम लेकर कथन इस कारण है कि प्रेतकर्ममें जलदान आदि नाम लेकर न करना किंतु मौन होकर, यह भी उसके निमित्त है; जो प्रायश्चित्तकी इच्छा न करता हो, कारण कि शंखने लिखा है कि गुरु, बांधव और राजाके आगे उसके दोषोंको कहकर उससे कहें कि तू आचारको प्राप्त हो, यह कहनेपर भी उसकी बुद्धि ठिकाने न हो तो उसका घड़ा फेंक दे । अपरार्क तो यह लिखते हैं कि जीते हुए उसके निमित्त जल पिंडदान और श्राद्ध नाम लेकर दे । घट फोड़नेके उपरांत जिसने प्रायश्चित्त

श्चित्तस्य घटस्फोटे कृतेऽपि संग्रहविधिमाह गौतमः–' यस्तु प्रायश्चित्तेन शुध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यहृदात्पूरयित्वा (स्रवन्तीभ्यो वा) तत एनमुपस्पर्शयेयुरथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्स प्रतिगृह्य जपेच्छान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पावमानीभिस्तरत्सम॰न्दीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं दद्याद्गां चाचार्याय । यस्य तु प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्ध्येत्सर्वाण्येव तस्मिन्नुदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युरेतदेव शान्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु' इति । घटस्फोटोत्तरं प्राणान्तिकप्रायश्चित्ते कृते तु मृत एव शुद्ध्येन्न तत्र संग्रहविधिः । अतस्तेन विनापि प्रेतकर्म कुर्यादित्यर्थः । उपपातकेष्वपि घटस्फोटे कृत एवं कार्यमित्यर्थः । याज्ञवल्क्यः– "चरितव्रत आयाते निनयेरन्नवं घटम् । जुगुप्सेरन्नचाप्येनं संवसेयुश्च सर्वशः ॥" कृतघटस्फोटस्यैवायं परिग्रहविधिरिति मिताक्षरायामपरार्के च । अन्यथा प्राय॰श्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् । मनुरपि घटस्फोटमुक्त्वा–' निवर्त्तेरंस्ततस्तस्मात्संभाषणसहासनैः ।' इत्युक्त्वा–" प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥" इति तच्छब्दं प्रायुङ्क्त । अपरार्के वसि–

किया हो उसके संग्रहकी विधि गौतमने लिखी है कि जो प्रायश्चित्तसे पवित्र हो उसकी शुद्धिके उपरांत सुवर्णके पात्रको पवित्र कुंड वा नदियोंमेंसे भरकर फिर इसका स्पर्श करे और उसको वह पात्र दे, वह पतित उस पात्रको लेकर यह पढ़े कि 'शांता द्यौः शान्ता पृथ्वी शांतं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ' इत्यादि यजुर्वेदके मन्त्रोंसे और ' पावमानी, तरत्समन्दी, कूष्मांडी' ऋचाओंसे घृतका हवन करे, सुवर्ण और गौ आचार्यके निमित्त दे । जिसका प्रायश्चित्त मरणांतिक हो वह मरकर पवित्र होता है और जल आदि सब प्रेतके कर्म करे, यही शांत्युदक सब उपपातकोंमें होता है । घट फोड़नेके उपरांत प्राणांतिक प्रायश्चित्त करने उपरांत ही शुद्ध होता है, उसमें संग्रहकी विधि नहीं है, इससे संग्रहके विना भी प्रेतकर्म करे । उपपातकोंमें भी घट फोड़नेके उपरांत ऐसे करना । याज्ञवल्क्यने भी लिखा है कि जब प्रायश्चित्त करके वह आवे तब नया घड़ा ले जाय और उसकी निन्दा न करे और उसके संग रहे, जिसका घट फोड़ा हो उसके ग्रहण करनेकी यह विधि है, यह मिताक्षरा और अपरार्कमें कहा है, नहीं तो सब प्रायश्चित्तोंमें इस विधिका प्रसंग प्राप्त होगा । मनुने भी घटस्फोटको लिख॰कर और उसके संग संभाषण और स्थिति नहीं करते हैं, यह कहकर इस वाक्यमें तत् शब्दका प्रयोग किया है कि प्रायश्चित्त किये उपरांत पानीसे भरे नये घड़ेको उसके संग पवित्र जलाशयमें स्नान करके फेंक देना चाहिये । अपरार्कमें वसिष्ठका भी वचन है कि जिन पति-

ष्ठोऽपि पतितानां चरितव्रतानां प्रत्युद्धारोऽथाप्युदाहरन्ति—"अग्रेऽत्युद्धरतां गच्छेत्क्रीडन्निव हसन्निव । पश्चात्पातयतां गच्छेच्छोचन्निव रुदन्निव ॥" इत्याचार्यमातृपितृहन्तारस्तत्प्रसादादगतपापा एतेषां प्रत्यापत्तिः । पूर्णहदात्प्रवृत्ताद्वा सकाशान्नं पात्री माहेयं वाद्भिः पूरयित्वापोहिष्ठीयाभिरेनमद्भिराभिषिञ्चेयुः, 'सर्व एवाभिषिक्तस्य प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मना व्याख्यातः' इति । प्रत्युद्धारः परिग्रहः । तत्रोद्धरतां हसन्निवाग्रेसरः स्यात् पातयतां घटस्फोटं कुर्वतां शोचन्निव पश्चाद्गच्छेत् । मातापित्रादिहन्तॄणां परिग्रहो न कार्यः । तत्प्रसादे सति चीर्णव्रतानां कार्यः । प्रवृत्तं निर्झरः । पुत्रजन्मनेत्यभिषेकोत्तरं जातकर्मादयः संस्काराः पुत्रजन्मवत्कार्या इत्यपरार्को व्याचख्यौ । अत एव विज्ञानेश्वरः—"घटेऽपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम् । प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया ॥" इत्यत्र गवां भक्षणाभावे पुनर्व्रतं चरेदित्येतत्प्रकृते,एवं चरितव्रतविधौ विशेषोऽयमिति वदन् घटस्फोटोत्तरं परिग्रह एवैतन्न सर्वत्रेत्याह । तस्मात्कृतेऽपि घटस्फोटे प्रायश्चित्तं परिग्रहविधिः पुनः संस्कारा भवन्तीति सिद्धम् । तथा जीवच्छ्राद्धे कृते हेमाद्रौ बौधायनः—'तत्राशौचं दशाहं स्यात् ।' इत्यलं प्रसङ्गेन । अथान्त्यकर्मसाधारणविधिः । एवं सापवादे आशौचे उक्ते प्रतिशाखं भिन्नेऽप्यन्त्यकर्मणि साधारणं किञ्चिदुच्यते ।

तोंने प्रायश्चित्त किया है, उनके प्रत्युद्धारको लिखते हैं—उद्धार करनेवालोंके आगे हँसता और क्रीडा करता और पातयितोंके पीछे रुदन करता हुआ चले, यह आचार्य माता पिताके मारनेवालोंकी उनके प्रसादसे पाप निवृत्ति होनेपर प्रत्यापत्ति लिखी है । पूर्ण कुंडमेंसे वा नदीमेंसे सोनेके बर्तनको जलसे पूरा कर आपोहिष्ठाआदि ऋचाओंको पढ़कर पातकियोंपर छिड़के और अभिषेक कियेका प्रत्युद्धार पुत्रजन्मके तुल्य लिखा है, प्रत्युद्धार नाम परिग्रहका है । उद्धार करनेवालोंके आगे हँसता और घड़ा फोड़नेवालोंके पीछे शोचता हुआ चले और माता पिताके मारनेवालोंका परिग्रह न करे, किन्तु उनकी प्रसन्नतासे कृतव्रतोंका परिग्रह करे, प्रवृत्त नाम झरनेका है 'पुत्रजन्मसे' यह कहनेसे अभिषेकके उपरांत जातकर्म आदि संस्कार पुत्रजन्मके तुल्य करने चाहिये, यह अपरार्कने इसकी व्याख्या लिखी है । इसीसे विज्ञानेश्वरने कहा है कि घट दिये उपरांत जातिके मध्यमें बैठकर गौओंको घास देनी उसकी ही श्रेष्ठ क्रिया होती है, जिसका गौओंसे सत्कार हो, गौओं द्वारा घासका भक्षण न हो तो फिर व्रत करे, यह प्रकृतमें है, इस प्रकार जिसने प्रायश्चित्तविधि कर ली है, उसके निमित्त यह विशेष है, यह कथन करता हुआ घट फूटनेके बाद परिग्रहमें ही यह है, सर्वत्र नहीं है; ऐसा कहा है, इससे घड़ा फूटनेके पीछे परिग्रह विधि और फिर संस्कार होते हैं, यह सिद्ध हुआ।इस प्रकार जीवच्छ्राद्ध किये उपरांत हेमाद्रिमें बौधायनने लिखा है कि वहां दशदिनका अशौच लगता है, प्रसंगसे इतना ही कहना बहुत है । इस प्रकार अपवादसहित अशौच वर्णन किया, शाखा शाखाके प्रति भिन्न भी अन्त्यका कर्म

तत्राधिकारिणः प्रागुक्ताः। सर्वाभावे धर्मपुत्रो वा कार्यः। "अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः। पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसंकीर्तनाय च ॥" इति व्यासवचनात्। गृह्यपरिशिष्टे-(कर्तृदेशविषये विशेषो मैत्रायणीयगृह्यपरिशिष्टे-"स्वगृहे विद्यते पुत्रः पिता ग्रामान्तरे मृतः। केनापि तत्र चारब्धमग्निपिण्डोदकादिकम् ॥ पुनः संचयनात्प्राक् चेद्गच्छेदूर्ध्वं स आचरेत्। स्वगृहे तत्र वा सर्वं प्रेतकार्यं सपिण्डनम् ॥" तथा। "भयस्थानेऽथवा मार्गे मृतस्तत्र च संस्कृतः। न तिष्ठति जनः पिण्डं तत्र तत्र च वर्तयेत् ॥" मंत्रेण दाहोऽस्थिसंचयनं च संस्कारस्तस्मिन्कृते तत्र च भयादिना स्थातुमशक्तौ यत्र यत्र प्रेतकार्यकृद्गच्छेत्तत्रतत्रैव पिण्डोदकदानादि सपिण्डनान्तं समापयेदिति श्राद्धसंकल्पः। तदेवं परिशिष्टयोर्विरोधे यथाचारमापदनापदादिभेदेन[1] व्यवस्था ज्ञेया। केचित्त्वस्यापवादमाहुः-)"असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्। प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ॥" दद्यात्पिण्डमिति शेषः। भविष्ये-'यत्राद्यो दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत्।' ब्राह्मेऽपि -"प्रथमेऽहनि यो दद्यात्प्रेतायान्नं समाहितः। अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि ॥" विज्ञानेश्वरादयस्तु-'कोचित्तु अग्निं दद्यात्' इति व्याचक्षते।

है तो भी सबके निमित्त साधारण कुछ वर्णन करते हैं-उसके अधिकारी प्रथम वर्णन कर आये हैं। यदि कोई भी न हो तो उसको धर्मपुत्रको करना चाहिये, क्योंकि जिसके पुत्र न हो वह पिंड और जलदान और नाम चलनेके निमित्त जैसे तैसे पुत्रको यत्नसे ग्रहण करे, यह व्यासजीने कहा है। गृह्यपरिशिष्टमें लिखा है (और कर्ताके देशविषयमें मैत्रायणीय गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि पुत्र अपने घर हो और पिता ग्रामान्तरमें मृतक हो जाय और उसके निमित्त किसीने अग्नि और पिंड जलदान आदिका प्रारम्भ कर दिया हो और अस्थिसंचयनसे प्रथम पुत्र चला जाय तो फिर वह कृत्य करे, अथवा अपने घरमें प्रेतकर्म और सपिंडीश्राद्ध करे और इसी प्रकारके वाक्य हैं कि भयस्थानमें अथवा मार्गमें कोई मृतक हो गया हो और संस्कार हो चुका हो तो मनुष्य मार्गमें जहां २ स्थित हो वहां २ पिंड दे, आशय यह है कि मन्त्रसे अस्थिसंचयन और संस्कार कर चुकनेपर और वहां भयआदिसे स्थित न हो सके तो प्रेतकर्म करनेवाला जहां २ गमन करे वहां २ पिंड जलदान आदि कर्मको सपिंडीतक पूरा करे। इति श्राद्धसंकल्पः। इससे इस प्रकार दोनों परिशिष्टोंके विरोधमें आचारके अनुसार आपत्ति और अनापत्तिके भेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये। कोई तो इसको अपवाद लिखते हैं) असगोत्री हो वा सगोत्री हो, स्त्री हो वा पुरुष प्रथम दिन जो पिण्ड दे वही दशदिनतक क्रियापूर्ति करे। भविष्यमें लिखा है कि जहां प्रथम दिन पिण्ड दिया जाय वहीं सब पूर्ति करे। ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि प्रथमदिन जो मनुष्य प्रेतके निमित्त अन्न दे, वही सावधानीसे नौ दिनोंतक अन्न दे। विज्ञानेश्वर आदि कहते हैं कि कोई तो यह व्याख्या लिखते हैं कि जो अग्नि दे वही क्रिया करे; कारण कि

१ कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठस्त्वधिकः।

"सगोत्रो वासगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धश्चेत्तु दशमेऽहनि ॥" इति दिवोदासीये वचनाच्च । तत्रैव-" दृष्ट्वा स्थानस्थमासन्नमर्धोन्मीलितलोचनम् । भूमिष्ठं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत् ॥ तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि ॥"तानि यथा-"मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन । मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुन्दः प्रीयतां मम॥" इति मोक्षधेनुमन्त्रः । "ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं त्वृणम् । तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेतां ददतो मम ॥" इति ऋणधेनोः । "आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः।तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव॥" इति पापधेनोः । भारते-"शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायां चोत्तरायणे । धन्यास्तात मरिष्यन्ति हृदयस्थे जनार्दने ॥"हेमाद्रौ वाराहे-"व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः । पुण्यकालास्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ॥" व्यासः-"आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्ववत् । तदभावे तु गौरेवं नरकोत्तरणाय वै ॥ तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीं तु गाम् । शक्तोऽन्य उत्कगां दद्याद्यतः श्रेयो मृतस्य तु ॥" मदनरत्ने जातूकर्ण्यः-"उत्क्रान्त्यादीनि दानानि दश दद्यान्मृतस्य तु । गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ॥ रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात् । एतानि दश दानानि नराणां मृत्युजन्मनोः ॥ कुर्यादभ्युदयार्थं तु प्रेतेऽपि हि परत्र वै ॥" ब्राह्मे-

---

दिवोदासीयमें लिखा है कि सगोत्री वा असगोत्री जो मित्रको अग्नि दे वही नवश्राद्ध करे और वह दशवें दिन पवित्र होता है और वहां ही कहा है कि आधे नेत्र मिचे और भूमिपर लेटे पिताको पुत्र अपने घरमें देखकर जो दान दे वह (दान) सौ अश्वमेधोंसे भी श्रेष्ठ है । वे दान ऐसे हैं कि हे हृषीकेश ! हे जनार्दन ! मोक्ष दो, इस मोक्षधेनुके दानसे मुकुन्द भगवान् मुझपर प्रसन्न हो, यह मोक्षधेनुका मन्त्र है । और इस लोक और परलोकका सात जन्मसे संचित सब ऋण इस धेनुके दानसे निवृत्त हो जाय, यह ऋणधेनुके दानका मंत्र है । और मन,वाणी, काया,कर्मसे जन्मसे लेकर जो पाप किया है वह सब इस गोदानसे दूर हो, यह पापधेनुका मन्त्र है । भारतमें लिखा है कि हे तात ! शुक्लपक्ष, दिन, भूमि, गंगा वा उत्तरायणमें जो जनार्दन भगवान्को हृदयमें धारण करके मरते हैं उन्हें धन्य है । हेमाद्रिमें वाराहपुराणका वाक्य है कि व्यतीपात, संक्रांति, सूर्यका ग्रहण मृत्युके समयमें ये सब पुण्यकाल होते हैं । व्यासने लिखा है कि जिस मनुष्यकी मृत्यु निकट हो उस मनुष्यको पूर्वोक्त प्रकारसे सवत्सा गौ देनी चाहिये, यदि सवत्सा गौ न हो तो नरकसे पार होनेके निमित्त केवल गौ दे, यदि वह मरणके समय आपत्तिमें वैतरणी गौ न प्रदान कर सके तो और पुत्र आदि समस्त मृतकके कल्याणके निमित्त पूर्वोक्त गौका दान करे । मदनरत्नमें ज़ातूकर्ण्यका वचन है कि मृत्युके समयमें मृतकके दशदान देने; वे क्रमसे इस प्रकार हैं-गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, अन्न, गुड, चांदी, लवण ये दश महादान मनुष्योंके मरण और जन्ममें कल्याणके निमित्त और परलोकमें मृतकके सुखके निमित्त करने चाहिये ।

"ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रं द्विजाय तु । सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्तानुसारतः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते गतिमुत्तमाम् । उत्क्रान्तिवैतरिण्यौ च दश दानानि चैव हि ॥ प्रेतेऽपि कृत्वा तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत् ॥" तत्रैव परिशिष्टे–'म्रियमाणस्य कर्णे तु पुण्यमन्त्राञ्जपेत्ततः ।' क्रियानिबन्धे गारुडे त्वष्टौ दानान्युक्तानि । "तुलसीं संनिधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा । तिलो लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा ॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ॥" इति । दशदानवैतरिणीधेनूत्क्रान्तिधेनुदानादि भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् । कर्ताऽन्त्यकर्माधिकारार्थं त्रीन् कृच्छ्रान् कुर्यादिति तत्रैवोक्तम् । अत्र देवयाज्ञिकेन मुमूर्षोर्मधुपर्कदानमुक्तम्, तदुक्तं वाराहे–"दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं यममार्गानुसारिणम् । प्रयाणकाले तु नरो मन्त्रेण विधिपूर्वकम् । मधुपर्कं त्वरन्, गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ॐ एतद्गृहाण रुचिरं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं ह्यमृतेन तुल्यम् । नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शान्तिकरणं सुरलोकपूज्यम् ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम् । नरस्य मृत्युकाले तु परलोकसुखावहम् ॥" अथ दुर्मरणे निर्णयः । स च दिवोदासीये–"चण्डालादिमृते विप्रे त्वन्तरिक्षमृतेऽपि वा । कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तु शुद्धिस्तत्र प्रकी-

---

ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि सेरभर तिलोंसे भरा सुवर्णसहित तांबेका पात्र अपने वित्तके अनुसार जो मनुष्य ब्राह्मणोंको देता है वह सर्व पापोंसे शुद्ध आत्मा होकर उत्तम गतिको प्राप्त होता है । उत्क्रांति और वैतरणी गौ तथा दशदान इन सबको प्रेतके निमित्त देकर शवके धर्मसे उस प्रेतको दग्ध करे । वहां ही परिशिष्टमें यह लिखा है कि मृतक होते हुए मनुष्योंके कानमें पवित्र मंत्रोंको जपे । क्रियानिबन्ध और गारुडमें तो आठ दान लिखे हैं कि तुलसी और शालग्रामकी शिलाको निकट रखकर तिल, लोहा, सुवर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी, गौ ये एकसे एक पवित्र हैं । दशदान, वैतरणी गौ, उत्क्रांति और धेनु दान आदि भट्टकी रची अन्त्येष्टिपद्धतिमें जानना और यह भी वहां ही लिखा है कि कर्ता अन्त्यकर्मके अधिकारके निमित्त तीन कृच्छ्र करे। यहां देवयाज्ञिकने मृत्युको प्राप्त होते मनुष्यको मधुपर्कका दान लिखा है, वही वराहपुराणमें कहा है कि यममार्गको गमन करनेवाले इसको विह्वल देखकर मरनेके समयमें मनुष्य विधिपूर्वक और शीघ्र मधुपर्कको ग्रहण करके यह मन्त्र उच्चारण करे कि सनातन संसारके नाशक अमृतके समान नारायणके निमित्त भगवान्‌के भक्तोंको दाहमें शांत करनेवाले और देवलोकमें पूजित इस मधुपर्कको ग्रहण करो, इस मन्त्रसे परलोकमें सुख देनेवाले मधुपर्कको मनुष्यके मृत्युसमयमें दे । अब दुर्मरणके विषयमें लिखते हैं– दिवोदासीयका कथन है कि चाण्डाल आदिसे और अन्तरिक्षमें ब्राह्मणकी मृत्यु हो तो कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण आदिसे शुद्धि होती है । देवजानीयमें जाबा-

र्त्तिता ॥" देवजानीये जाबालिः-"शूद्रेण दग्धो यो विप्रो न लभेच्छाश्वतीं गतिम्। प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ब्राह्मणः पापशुद्धये ॥ चान्द्रायणं पराकं च प्राजापत्यं विशोधनम् ॥" गृह्यकारिकायाम्-"उदक्या सूतिका वापि यदि प्रेतं स्पृशन्ति हि। तस्यैव विधिरादिष्टो वात्स्येनैव महात्मना ॥" एष सूतिकोक्तः। मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे-"ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च। अस्पृश्यस्पर्शने चैव खट्वादिमरणेऽपि च ॥ श्वानक्रव्यादसंस्पर्शे क्रिमिकीटोद्भवेऽपि च। एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ कृच्छ्रांस्त्रिषट्पञ्चदशांश्चान्द्रत्रयमथापि वा। शुद्ध्यै तदानीं सम्पाद्य शावधर्मेण दाहयेत् ॥" गृह्यकारिकायाम्-"खट्वायां मरणे चैव त्रींस्त्रीन्कृच्छ्रान् प्रकल्पयेत्। सप्तान्त्यजैस्तु संस्पृष्टो मृतो दैवात्कथंचन ॥ एकत्रिंशत्सुकृच्छ्रैस्तु शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः॥कुणपे त्वर्धदग्धे तु चितास्पृष्टान्त्यजादिभिः॥तत्स्पर्शने दूषणं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति॥"धर्मप्रदीपे-"चाण्डालसूतिकोदक्यास्पृष्टे प्रेते तथैव च। तस्य पापविशुद्ध्यर्थं कृच्छ्रान्पञ्चदशाचरेत् ॥" इत्युक्तम्। मनुः-'अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसम्पर्कदूषिता।' अत्रापि कृच्छ्रत्रयम्, 'अस्पृश्यस्पर्शने चैव' इत्युक्तेः। तत्रैव कर्मप्रदीपे-"रात्रौ वा रात्रिशेषे वा म्रियन्ते चेद्द्विजातयः। दाहं कृत्वा यथान्यायं द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः ॥" रजस्वलागर्भिण्यादिमृतौ तु वक्ष्यामः। निर्णयामृते पारिजाते यमः-"सन्ध्यायां वा तथा रात्रौ दाहः पाथेयकर्म च। नवश्राद्धं

लिने कहा है कि शूद्रद्वारा दग्ध किया हुआ ब्राह्मण उत्तम गतिको नहीं प्राप्त होता और पापकी शुद्धिके निमित्त वह ब्राह्मण चांद्रायण, पराक तथा प्राजापत्य प्रायश्चित्त करे। गृह्यकारिकामें कहा है कि रजस्वला सूतिका जिस प्रेतको स्पर्श करे उसके निमित्त महात्मा वात्स्यमुनिने वही प्रायश्चित्त लिखा है जो सूतिकाको है। मदनरत्नमें स्मृत्यन्तरका वचन है कि उच्छिष्टसे प्रथम वा पश्चात् वा उभयसे उच्छिष्ट और स्पर्शके अयोग्यके स्पर्शसे और खाटआदिपर मरनेसे, कुत्ता, मांसभक्षक तथा कृमिकीटके स्पर्शसे जो मृतक हुए हों इनमें दोषके अनुसार प्रायश्चित्त करे। तीन, छः, पांच, दश कृच्छ्र और तीन चांद्रायण करनेसे शुद्ध किये उपरान्त दान देकर शवधर्मसे दग्ध करे। गृह्यकारिकामें कहा है कि खाटपर मरनेमें तीन कृच्छ्र व्रत और यदि दैववश अन्त्यजके स्पर्शसे मृत्यु हो तो सात वा इकतीस कृच्छ्रोंसे बुद्धिमानोंने शुद्धि कही है, यदि आधे शरीरके दाह किये उपरांत अन्त्यज चिताको छू ले तो उनके छूनेका दोष तीन कृच्छ्रोंसे जाता है। धर्मप्रदीपमें तो यह लिखा है कि चाण्डाल, सूतिका, रजस्वला ये प्रेतको छू लें तो उस पापीकी शुद्धिके निमित्त पन्द्रह कृच्छ्र करे। मनुने लिखा है कि शूद्रके छूनेसे दूषित जो आहुति है, इससे स्वर्ग नहीं मिलता है, इसमें और स्पर्शके अयोग्यके छूनेसे तीन कृच्छ्र करे, ऐसा कहा है। और वहां ही कर्मप्रदीपमें कहा है कि रात्रि वा रात्रिके शेषमें जो द्विजाति मृत्युको प्राप्त हो तो नीतिपूर्वक दाह करके पुत्र दो पिण्ड दे। रजस्वला आदि गर्भिणीके मरनेका निर्णय आगे लिखेंगे। निर्णयामृत और मदनपारिजातमें यमका वचन है कि सन्ध्या वा रात्रिमें दाह और यममार्गका कृत्य करे, तथा नवश्राद्ध न करे और यदि करे तो निष्फल हो जाता है, परन्तु यदि दिनमें मरे मनुष्यका आलस्य आदिसे दाह

च नो कुर्यात्कृतं निष्फलतां व्रजेत् ॥" एतद्दिनमृतस्य रात्रिनिषेधार्थम् । यत्तु स्कान्दे-"यदि रात्रौ दहेत्तस्य समाप्तिर्दहनस्य तु । परेऽहन्युदिते सूर्ये कार्या तस्योदकक्रिया ॥ दग्धस्य तु न वै कार्या रात्रौ जातूदकक्रिया ॥" इति, तन्निर्मूलम्। रात्रिमृतस्य तु तत्रैव संग्रहे-"रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डांतं कृत्वा वपनवर्जितम् । वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनी वपनक्रिया ॥" इति । वपनं तु प्रातः । तच्च सर्वैः पुत्रैः कार्यम् । "गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ । आधाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥" इति मिताक्षरायां स्मृतेः । मरणस्याऽनङ्गित्वान्नैमित्तिकमिदम् । तदेव संग्रहवचनेन परेद्युरुत्कृष्यते तीर्थवत् । तेन कस्यचिद्दाहाङ्गत्वोक्तिश्चिन्त्या । मदनरत्ने गालवः-"प्रथमेऽहनि कर्त्तव्यं वपनं चानुभाविनाम् । प्रेतस्य केशश्मश्र्वादि वापयित्वाऽथ दाहयेत् ॥" आशौचान्ते तु पुनः कार्यं विधिबलात् । मदनपारिजातेऽप्येवम् । तेन सर्वस्यास्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव । स्मृतिरत्नावल्याम्-' शवं राज्युषितं चेत्त्रीन् कृच्छ्रान् कृत्वा दहेत्सुतः ।' मदनरत्नेऽङ्गिराः-"ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टे ह्यन्तरिक्षमृतेऽपि वा । कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे मरणेऽपि च ॥"

न किया हो तो रात्रिमें दाहके निषेधके निमित्त यह वचन है । जो स्कन्दपुराणमें लिखा है कि यदि रात्रिमें दाह करे तो उसकी पूर्ति तथा उदकक्रिया अगले दिन सूर्योदयके समय करे और दाह किये हुएका जलदान रात्रिमें कभी न करे, वह वाक्य निर्मूल है । रातमें जो मरे उसके निमित्त वहां ही संग्रहमें लिखा है कि रातमें दाह और मुण्डनके विना पिण्डान्तकर्म करके अगले दिन मुण्डन करे, कारण कि रात्रिमें मुण्डनका निषेध है और[1] प्रातःकालमें शिरका मुण्डन तो सब पुत्रोंको करना चाहिये; कारण कि मिताक्षरामें स्मृतिका वाक्य है कि गङ्गा, भास्करक्षेत्र, माता, पिता और गुरुके मरण तथा अग्निके आधान और सोमयज्ञ इन सातमें मुण्डन लिखा है। मरणका मुण्डन अंग नहीं, किन्तु मुण्डनका हेतु मरण है, उसीकी श्रेष्ठता संग्रहके वचनद्वारा अगले दिन तीर्थके समान लिखी है, इससे मुण्डनको जो किसीने दाहका अंग लिखा है वह अशुद्ध है । मदनरत्नमें गालवने लिखा है कि विचारवान् मनुष्य पहले दिन मुण्डन करे, बाल, डाढी, मूंछ आदि मुँड़वाकर प्रेतका दाह करे और अशौचके उपरान्त विधिके बलसे फिर मुण्डन करे । मदनपारिजातमें भी ऐसे ही कहा है, इससे यह निर्मूल है ऐसी जो उक्ति है वह अज्ञोक्ति ही है । स्मृतिरत्नावलीमें कहा है कि यदि मृतक रात्रिमें रहनेसे पर्युषित हो गया हो तो पुत्र तीन कृच्छ्र करके उसका दाह करे । मदनरत्नमें अंगिराका कथन है कि उच्छिष्टसे प्रथम वा उपरान्त और अंतरिक्षमें वा अशौचमें मृतक हो तो तीन

---

१ जो क्रिया करे उसका मुंण्डन तो उसी समय होना चाहिये और छोटों तथा पुत्रोंका दशाहमें मुण्डन होता है, दिन वा रात्रिमें यदि कहीं शव स्थित रह जाय तो वह पर्युषित कहाता है, तब पंचगव्यसे स्नान करके तीन प्राजापत्य व्रत करे ।

अथ साग्नेर्विशेषः। कारिकायाम्-" कृष्णपक्षे प्रमीयेत यद्यह्नि प्रातराहुतीः। शेषास्तु जुहुयाद्दर्शपर्यन्ताः पक्षहोमवत् ॥" प्रतिपत्प्रातर्होमान्ता इत्यर्थः। 'यद्याहिताग्निरपरपक्षे म्रियेताहुतिभिरेनं पूर्वपक्षे हरेयुः' इत्याश्वलायनोक्तेः। "तदानीमेव जुहुयात् सायंकालाहुतीरपि। सायं म्रियेत चेत्सायमाहुतीर्जुहुयादथ ॥ तदानीमेव जुहुयात् प्रातःकालाहुतीरपि । सकृद्गृहीतमन्त्रेष्टं भिन्नतन्त्रं च होमयोः ॥ दार्शं चापि प्रकुर्वीत स्थालीपाकं तदैव तु ॥" छन्दोगपरिशिष्टे-"हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद्गृही भवेत्। प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्च स पुनर्नवा ॥" इदं शुक्लपक्षपरम्। दुर्बलो मुमूर्षुः। त्रिकाण्डमण्डनः-"दर्शेष्टिं च तदा कुर्यादिष्टिर्यदि न संभवेत् । देवतानां प्रधानानामेकैकस्य हुनेत्पृथक् ॥ पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यां चतुरस्तु घृताहुतीः ॥" तथा-"अग्नावरुण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि। प्रेतं स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वा चोपावरोहणम् ॥ घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रिया ॥" विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं तत्रैवोक्तम्। "प्रेतं स्वाम्यालये क्षिप्त्वा मथित्वाग्न्यानलेऽरणी। सन्निधायारणीं मन्थेद्यस्येति यजुषा ततः ॥ यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् । जायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु ॥" इति मन्त्रतः।" प्रणीय पावकं चैव

कृच्छ्र करना चाहिये। अब साग्निके निमित्त विशेष लिखते हैं-कारिकामें लिखा है कि कृष्णपक्षमें मृतक हो तो दिनमें प्रातःकाल आहुति देकर शेष आहुति पक्षहोमके तुल्य अमावस्यापर्यन्त देना; कारण कि आश्वलायनने लिखा है कि यदि आहिताग्नि कृष्णपक्षमें मृतक हो तो प्रतिदिनकी आहुतिसे इसे शुक्लपक्षमें ले जाना, फिर शुक्लपक्षमें प्रातःकाल आहुति दे, यहां दोनों होमोंका भेद और तन्त्र इष्ट है और तभी अमावस्याका होम और स्थालीपाक करे। छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि सायंकालकी आहुतिके उपरान्त गृहस्थ दुर्बल (असमर्थ) हो और जीवे तो प्रातःकाल हवन होता है, यह शुक्लपक्षके विषयमें है। त्रिकांडमण्डनका कथन है कि यदि यज्ञ न हुआ हो तो अमावास्याको यज्ञ करे, और प्रधान देवताओंमें एक एककी पृथक् आहुति देनी, पुरोनुवाक और याज्यमन्त्रोंसे चार घीकी आहुति दे। इसी प्रकारके मन्त्र हैं कि खाटआदिपर आरूढ पति मृतक हो जाय तो अग्नावरुण मन्त्रसे प्रेतका स्पर्श और अग्निका मथन और उपारोहण मन्त्रको जपकर घृतकी बारह आहुति दे, और मौन होकर शवकी क्रिया करे। जिसकी श्रौत अग्नि नष्ट हो गयी हो वह मृतक हो जाय तो वहां ही प्रेताधान लिखा है कि प्रेतको स्वामीके घरमें रखकर और अरणीमें मथी अग्निका स्थापन करके मथनके दण्डमें "यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम्। जायंतु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयंतु ॥" इस यजुर्वेदके मन्त्रको पढ़कर

द्वादशोपात्तसर्पिषा। तूष्णीं हुत्वा ततः कुर्यात्प्रेते माल्या इति क्रियाम् ॥ नष्टेष्वग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी म्रियेत चेत्। आहरेदरणीद्वन्द्वं मनोज्योतिर्ऋचा ततः ॥" यज्ञपार्श्वः-"यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति । वर्षाद्यभिहते वह्नौ कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ तदर्धदग्धकाष्ठेन मन्थनं तत्र कारयेत्। तच्छेषालाभतोऽन्येन दग्धशेषेण वा पुनः॥ हुत्वाज्यं लौकिके वह्नौ हुतशेषं दहेत्तु वा ॥" अत्राग्निषु सत्सु पर्णशरैः शरीरोत्पत्तिः। शरीरे वासति प्रेताधानेनाग्न्युत्पत्तिः। उभयाभावे तु प्रेताधानेऽनधिकाराद्दाहादिसंस्कारलोपः। उदकदानाद्येव कार्यमिति केशवीकारशतद्वयीप्रमुखाः। तन्न। 'निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः।' इति विरोधात्। 'क्रियालोपगता ये च' इति निषेधात्तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः। पुमानपीत्यभावे विधानस्याग्न्यभावेऽपि साम्याच्च। तेन प्रेताहुत्यभावेऽपि स्विष्टकृद्द्रव्यान्तरोक्तेरदृष्टार्थत्वात्। प्रेताधानं दाहोऽपि भवत्येव। प्रतिकृतेरग्नीनां च प्रेताधानप्रयोजकत्वापत्तेः। पत्न्या अप्येवम्। 'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः।' इति याज्ञवल्क्योक्तेः॥

अरणीकी अग्निको लाकर बारह वार लिये घीसे मौन हो आहुति देकर प्रेतकी अन्त्येष्टि करे। अग्नि और अरणी दोनोंके नष्ट होनेपर स्वामीकी मृत्यु हो तो "मनोज्योतिः०" इस ऋचासे दो अरणी लावे। यज्ञपार्श्वका कथन है कि जब यजमान चितामें आरूढ हो जाय और पात्रन्यास कर चुका हो और वर्षा आदिसे अग्नि नष्ट हो जाय तो यज्ञके कर्ता किस प्रकार करे? तब आधे जले काष्ठसे मथन करे और उसका शेष न मिले तो और आधे जले हुए काष्ठसे मथनी बनावे लौकिक अग्निमें घृतका होम करके दग्धसे शेषका दाह करे। यहां अग्नि हो तो पर्णशरोंसे शरीरको निर्माण करे, शरीर न हो तो प्रेतके पूर्वोक्त आधानसे अग्निको उत्पन्न करे। दोनों न हों तो प्रेतके आधानका अधिकार न होनेसे दाह आदि संस्कारका लोप हो जाता है। जलदान आदि ही करने, यह केशवीकार और शतद्वयी आदिका कथन है, सो यथार्थ नहीं है, कारण कि गर्भाधानसे श्मशानक्रियातक जिनके कर्म मन्त्रसे होते हैं, इस वाक्यसे विरोध है और जिनकी क्रियाका लोप है, इस निषेधसे उसके अभावमें ढाकके डंठलोंसे पुरुषको निर्माण करे, इस विधिके अग्निकी अप्राप्तिमें माननेकी समानता है, इससे प्रातःकाल आहुतिके अभाव होनेपर भी स्विष्टकृत्के निमित्त अन्य द्रव्य लिखा है, इससे अर्थात् प्रेताधान होगा और उसका दाह भी होगा; कारण कि प्रतिकृति और अग्नि ये दोनों प्रेताधानके कथन करनेवाले हैं। पत्नीका भी ऐसा ही होता है; कारण कि याज्ञवल्क्यने लिखा है कि आचरणवाली भार्याका पति अग्निहोत्रसे

---

१ अग्निनाशसे मृति हो जाय तो आहिताग्निको अग्नि मथन कर भस्म करे, यह न हो तो उस भस्मसे काष्ठ छुवाय अग्नि मथन कर भस्म करे यह कारिकामें कहा है।

यत्तु–" द्वितीयां चैव यो भार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः । जीवन्त्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं स्मृतम् ॥" इति तदाधाने सहानधिकृताविषयमिति विज्ञानेश्वरः । मदनरत्ने ब्राह्मेऽपि–" आहिताग्न्योश्च दंपत्योर्यस्त्वादौ म्रियते भुवि । तस्य देहः सपिण्डैश्च दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ॥ पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकिकाग्निना । अनाहिताग्निदेहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः ॥ " त्रिकाण्डमण्डनस्तु विकल्पमाह–" ज्येष्ठायां विद्यमानायां द्वितीयायै स्वयोषिते । काम्यं नित्याग्निहोत्रं वा न कथंचित्प्रयच्छति ॥ स्त्रीमात्रमविशेषेण दग्ध्वान्यैर्वैदिकादिभिः । विवाह्याद्धते यद्वाधानमेवास्ति चेद्वधूः ॥" इति । अत्रेदं तत्त्वम् । साग्नेः पत्नीमृतौ द्वौ पक्षौ । पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्दहेदित्येकः पक्षः । " भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥" इति मनूक्तेः । 'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ॥' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च । पुनर्विवाहशक्तौ निर्मन्थ्येन तां दग्ध्वा पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रेष्ट्यादिकार्यमित्यर्थः ।" आहार्येणाहिताग्निं पत्नीं च" इत्याश्वलायनोक्तेः । भरद्वाजोऽपि–'निर्मन्थ्येन पत्नीम्' इति । पूर्वाग्न्येकदेशेन दहेदिति यज्ञपार्श्वदेवयाज्ञिकादयः । यानि च–'तस्मादपत्नी-

---

दाह करे। जो यह कथन है कि जो दूसरी भार्याका वैतानिक अग्निसे प्रथमके जीते दाह करे, वह कृत्य सुरापानके सदृश है, यह वाक्य उस भार्याके निमित्त है, जिसका आधानमें सह अधिकार न किया हो, यह विज्ञानेश्वरका कथन है । मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि आहिताग्नि स्त्रीपुरुषोंमें जो प्रथम पृथ्वीपर मृतक हो जाय उसके देहको सपिंड तीनों अग्नियोंसे दग्ध करे और जो पीछे मरे उसका लौकिक अग्निसे दाह करे और अनाहिताग्निके देहको तो ब्राह्मण गृह्याग्निसे भस्म करे। त्रिकांडमण्डनने तो विकल्प लिखा है कि बड़ी विद्यमान हो तो दूसरी अपनी स्त्रीको काम्य नित्यका अग्निहोत्र कदाचित् न दे, स्त्रीमात्रको वैदिक अग्नियोंसे दग्ध करके विवाही भार्यायुक्त आधान करे। जो वधू विद्यमान हो तो यहां यह विचार है कि साग्निकी स्त्रीके मृतक होनेमें दो पक्ष हैं, फिर विवाह करनेकी इच्छा हो तो पूर्वाग्नियोंसे दाह करे,यह एक पक्ष है।कारण कि मनुने लिखा है कि प्रथम मरी स्त्रीको अन्त्यकर्ममें अग्नियोंको प्रदान कर फिर विवाह और आधान करे। याज्ञवल्क्यने कहा है कि आचारवाली स्त्रीको अग्निहोत्रसे दग्ध करके (फिर विवाह करे) फिर विवाहका सामर्थ्य न हो तो मथन की हुई अग्निसे दाह करके पूर्व अग्नियोंमें ही अग्निहोत्र आदि करना, यह दूसरा पक्ष है। कारण कि आश्वलायनने कहा है कि आहार्य (अन्यकुलसे लाई) अग्निसे अनाहिताग्निको और पत्नीको दग्ध करे। भरद्वाजने लिखा है कि मथी अग्निसे भार्याको दग्ध करे। देवयाज्ञिक, यज्ञपार्श्व आदि तो यह लिखते हैं कि पूर्व अग्निके एक देशसे दाह करे। और जो वाक्य है कि इससे पत्नीरहितको भी अग्नि-

कोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत् ' इति श्रुतिः । विष्णुः छन्दोगपरिशिष्टं च-" मृतायामपि भार्यायां लौकिकाग्निं नहि त्यजेत् । उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत् ॥" उपाधिर्हैमकुशपत्न्यादिः। " अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः. । अग्निहोत्रमुपासीरन् यावज्जीवमनुव्रताः ॥ " इत्यपरार्के स्मृत्यन्तरात् । कात्यायनोऽपि– "रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥"इत्यादीनि, तानि पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रादिपराणि नत्वपत्नीकस्याधानार्थानि क्रतुविधीनामाधानाप्रयोजकत्वात् । अपत्नीकस्याधानाप्रवृत्तिरिति मानवपरिशिष्टाच्च। 'सोमो न भवत्येव अपत्नीकोऽप्यसोमपः' इति श्रुतेः । यत्तु भरद्वाजापस्तम्बसूत्रम्–' दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयम् । इति । अस्यार्थः–पुनर्विवाहाशक्तौ यदग्न्याधेयं पूर्वं कृतमस्ति तदात्मार्थमेव न पत्न्यै दद्यादिति । ब्राह्मणभाष्यापरार्काशार्करामाण्डारादितत्त्वमप्येवम् । त्रिकाण्डमण्डनस्तु पक्षद्वयमाह । अन्येऽप्यपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्मः । याज्ञवल्क्यः–' आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः । अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः ॥ " क्रतुः–" एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥"

होत्र करना चाहिये, यह श्रुति है। विष्णु और छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि भार्याकी मृत्यु होनेपर भी लौकिक अग्निको न त्यागे, उपाधि (सुवर्ण वा कुशाकी पत्नी) से भी जीवन पर्यन्त उस कृत्यको करे। अपरार्कमें यह दूसरी स्मृति है कि और गृहस्थ कुशाकी पत्नी बनाकर उस व्रतमें तत्पर हुए जीवनपर्यंत अग्निहोत्रकी उपासना करते रहते हैं। कात्यायनने भी लिखा है कि रामचन्द्रने भी सोनेकी यशस्विनी सीतास्त्रीको बनाकर भाइयोंसहित बहुत यज्ञ किये इत्यादि वाक्य हैं, परन्तु वे पूर्व अग्नियोंमें ही अग्निहोत्रके विषयमें लिखे हैं, पत्नीरहितको आधानके कहनेवाले नहीं हैं; कारण कि यज्ञकी विधि आधानकी प्रेरक नहीं हो सकती और मानवपरिशिष्टमें भी कहा है कि भार्यारहितको आधानमें प्रवृत्त होना नहीं है। सोमयज्ञ भी नहीं होता; कारण कि यह श्रुति है कि जो पत्नीरहित है वह सोम नहीं कर सकता। जो भरद्वाज और आपस्तम्बका यह सूत्र है कि स्त्रीके कर्ममें जो असमर्थ हो वह अपने निमित्त अग्निका आधान करे, इसका अर्थ यह है कि फिर विवाह करनेमें असमर्थ हो और जो अग्न्याधान प्रथम किया हुआ है वह अपने निमित्त है, पत्नीको न देना। ब्राह्मणभाष्य, अपरार्क, आशार्क, रामाण्डार आदिका भी तत्त्व इसी प्रकार है। त्रिकांडमण्डनने तो दो पक्ष लिखे हैं। औरोंने भी भार्यारहितको आधान लिखा है, परन्तु उनके अभिप्रायको हम नहीं जानते, अर्थात् वह यथार्थ नहीं है। वृद्धयाज्ञवल्क्यने लिखा है कि आहिताग्निको नीतिके अनुसार तीन अग्नियोंसे दग्ध करे. और अनाहिताग्निको लौकिक एक अग्निसे दग्ध करे। क्रतुने कहा है कि इस प्रकार आचरणवाली पूर्व मरी सवर्ण स्त्रीको धर्मका ज्ञाता द्विजाति अग्निहोत्र और यज्ञके पात्रोंसे दग्ध करे।

कारिकायाम्–"पत्नीमपि दहेदेवं भर्तुः पूर्वं मृता यदि। अनग्निकां दहेदेवं कपालेन हविर्भुजा ॥" छन्दोगपरिशिष्टे–"आर्येवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता। अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥" इदं छन्दोगानामेव। तथा–"अग्निनैव दहेद्भार्यां स्वतंत्रां पतिता न चेत्। तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगन्तिके॥"इदमपि तेषामेव। आशौचप्रकाशे क्रतुः–"विधुरं विधवां चैव कपालस्याग्निना दहेत्। ब्रह्मचारी यती चैव दहेदुत्तपनाग्निना॥तुषाग्निना च दग्धव्या कन्यका बाल एव च। अग्निवर्णं कपालं तु कृत्वा तत्र विनिक्षिपेत् ॥ करीषादि ततो वह्निर्जातो यः स कपालजः ॥" अनुपनीते यद्यपि जातारण्यग्निः कैश्चिदुक्तस्तथापि तस्य कलौ निषिद्धत्वोक्तेरयमेव ज्ञेयः। स्मृत्यन्तरे-"गृहस्थो ब्रह्मचारी च विधुरो विधवाः स्त्रियः॥औपासनश्चोत्तपनस्तुषाग्निस्तु कपालजः ॥"उत्तपनस्तु–"दर्भाग्रेऽग्निं तु प्रज्वाल्य पुनर्दर्भैस्तु संयुतः।पुनर्दर्भैस्तृतीयोऽग्निरेष उत्तपनः स्मृतः ॥" यमः–"यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि च। प्रेतत्वं च सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते ॥" देवलः–"चण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च

कारिकामें कहा है कि भर्ताके प्रथम मृतक हुई हो तो पत्नीका भी इसी प्रकार दाह करे और अग्निहोत्र न करती हो तो कपालकी अग्निसे दग्ध करे। छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि जो स्त्री स्थितिसे रहती हो उसको भी इसी प्रकारसे दाह करना चाहिये और उसके निमित्त अग्नि देनेका मन्त्र न पढे, यह स्थिति है, यह छन्दोगोंके निमित्त है। ऐसे ही कथन है कि पतित न हो तो स्वतन्त्र भार्याको भी अग्निसे दाह करे और उसके शरीरसे उत्तरकी ओर समीप वा उत्तर दिशामें पृथक् अग्निके पात्रका दाह करे, यह भी छंदोगोंके निमित्त है। अशौचप्रकाशमें क्रतुने लिखा है कि भार्यारहित पुरुष और विधवा स्त्रीको कपालकी अग्निसे, ब्रह्मचारी और संन्यासीको उत्तपनकी अग्निसे, कन्या और बालकको तुषकी अग्निसे दग्ध करे। मृत्तिकाके कपालको अग्निके तुल्य लाल करके उस कपालमें करीष (सूखा गोबर) आदि डाल दे, उससे उत्पन्न हुई अग्निको 'कपालाग्नि' कहते हैं। यद्यपि यज्ञोपवीत न हुआ हो उसके निमित्त अरणीसे उत्पन्न हुई अग्नि लिखी है तो भी वह कलियुगमें निषिद्ध है, इससे वही पूर्वोक्त जाननी। अन्य स्मृतिमें लिखा है कि गृहस्थ, ब्रह्मचारी, स्त्रीसे हीन तथा विधवाके निमित्त क्रमसे औपासन, उत्तपन, तुषाग्नि और कपालाग्नि देनी चाहिये। उत्तपन अग्नि वह होती है कि कुशाके अग्रभागमें अग्निको प्रज्वलित करे, फिर उसे कुशामें मिलावे, फिर और कुशाओंमें मिलावे, तो उस तीसरी अग्निको उत्तपन कहते हैं। यमने कहा है कि जिसके निमित्त शूद्र अग्नि, तृण, काष्ठ, हवि ले जाय वह सदा प्रेत रहता है और वह अधर्मसे संयुक्त होता है। देवलने कहा है कि चाण्डालाग्नि, अपवित्र अग्नि, सूतिका और पतितकी अग्नि और चिताकी अग्नि ये किसी प्रकार भी श्रेष्ठोंको ग्रहण करने योग्य नहीं है।

कर्हिचित् । पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः ॥" मनुः-"दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्।पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः॥"अत्र प्रातिलोम्येन क्रमः । "पूर्वामुखस्तु नेतव्यो ब्राह्मणो बान्धवैर्गृहात् । उत्तराभिमुखो राजा वैश्यः पश्चान्मुखस्तथा ॥ दक्षिणाभिमुखः शूद्रो निर्हर्तव्यः स्वबान्धवैः ॥" इत्यादिपुराणादित्यपरार्कः। तेन त्रिंशच्छ्लोक्युक्तोऽनुलोमक्रमो हेयः। आश्वलायनः-'ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्या गच्छेयुः'आधानोत्तरं द्वितीयविवाहे कृते यजमानमरणे श्रौतस्मार्ताग्न्योः संसर्गः। बौधायनसूत्रे-'अथ यद्याहिताग्निर्द्वे भार्ये विन्देत प्राक् संयोगान्म्रियेतौपासनं संपरिस्तीर्याज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धाग्नौ जुहोति समितं संकल्पेथामिति मिंदाहुतीर्व्याहृतीश्च हुत्वा अथैतमग्निमयं ते योनिर्ऋत्विज इति समिधि समारोप्य गार्हपत्ये समिधमभ्यादधाति।भवतं नः समनसाविति गार्हपत्य आज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गार्हपत्ये जुहोत्यग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट इत्यपरं चतुर्गृहीत्वा चित्तिः स्रुगिति सग्रहं जुहोति, अथ गार्हपत्ये स्रुवाहुतीर्जुहोति ब्राह्मण एक होतेति दशभिः,अथ प्राचीनावीत्यन्वाहार्यपचने जुहोति ये समाना ये सजाता इति द्वाभ्याम् अथ तत्रैव स्रुवाहुतिं जुहोत्यग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहेति, अथ यज्ञोपवीती द्वादशगृहीतेन स्रुचं पूरयित्वा पुरुषसूक्तेनाहवनीये जुहोति, अथ स्रुवाहुतीर्जुहोत्यग्नये विविचये स्वाहाग्नये

मनुका कथन है कि शूद्रको दक्षिण पुरीके द्वारसे ले जाना चाहिये और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनको क्रमसे पश्चिम, उत्तर तथा पूर्वके द्वारसे ले जाय । यहां क्रम प्रतिलोमसे जानना, कारण कि यहँ आदिपुराणमें लिखा है कि पूर्वाभिमुख ब्राह्मणको, उत्तराभिमुख क्षत्रियको और पश्चिमाभिमुख वैश्यको और दक्षिणाभिमुख शूद्रको अपने कुटुम्बवाले घरसे ले जायँ, ऐसा अपरार्क कहते हैं, इससे त्रिंशत्श्लोकीमें कहा अनुलोम क्रम छोड़ने योग्य है । आश्वलायनने कहा है कि ज्येष्ठ पहिले और कनिष्ठ पीछे जाय और आधानके उपरांत दूसरा विवाह करनेके पीछे यजमान मर जाय तो श्रौत और स्मार्त अग्निका संयोग होता है । बौधायन सूत्रमें कहा है कि इसके अनन्तर यदि आहिताग्नि दो भार्याओंको विवाहे और संयोगसे प्रथम मर जाय तो उपासनाग्निका स्थापन और घीको तपाकर चार वार स्रुवेसे लेकर प्रज्वलित अग्निमें हवन 'समितं सङ्कल्पेथाम्' इस मन्त्रसे मिन्दाहुति और व्याहृति हवन करके उस अग्निको 'अयं ते योनिर्ऋत्विज०, इस मन्त्रसे समिधपर रखकर उस समिधको गार्हपत्य अग्निपर रक्खे । 'भवतं नः सुमनसौ०' इस मन्त्रसे गार्हपत्य अग्निपर घीको तपाकर और चार वार घीको ग्रहण करके गार्हपत्य अग्निमें 'अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः०' इस मन्त्रसे आहुति दे, फिर चार वार ग्रहण करके चित्तिस्रुक् आदिसे अग्निमें होम कर दे, फिर गार्हपत्य अग्निमें स्रुवेसे दशवार आहुति दे, उसमें एक ब्राह्मण होता चाहिये फिर अपसव्य होकर 'ये समाना० ये सजाता०' इन दो मन्त्रोंसे अन्वाहार्य वाक्य आहुति दे, 'फिर अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे स्रुवाहुति दे, फिर सव्य होकर बारह बार लिये घीको स्रुवेमें भरकर पुरुषसूक्तसे आहवनीय अग्निमें आहुति दे । फिर स्रुवेसे यह आहुति दे कि

व्रतपतये पवमानायाग्नये पावकायाग्नये शुचये स्वाहाग्नये पथिकृते स्वाहाग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायेति, अथ चतुर्गृहीतं जुहोति मनोज्योतिरित्यत ऊर्ध्वं पैतृकं कर्म प्रतिपद्यते' इति। आहिताग्नौ विदेशमृते पथिकृतीष्टिर्मृताग्निहोत्रं तद्दाहः पात्रयोजनं च कल्पसूत्रादिभ्योऽस्मत्पितामहकृतपद्धतेश्च ज्ञेयमिति बहुवक्तव्येऽप्युपरम्यते। स्मार्ताग्नेस्तूक्तं मदनरत्ने छन्दोगपरिशिष्टे च—"दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम्। दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत्॥ घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य शुद्धवस्त्रोपवीतिनम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषयेत्॥ हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु। मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः॥ आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरस्सरम्। एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्धमर्धपथ्युत्सृजेद्भुवि॥ ऊर्ध्वमादहनं कार्यमासीनो दक्षिणामुखः। सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत्॥ अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्दारुचयं महत्। तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे॥ आज्यपूर्णं स्रुवं दद्याद्दक्षिणाग्रां नसि स्रुचम्। पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम्॥ पार्श्वयोः शूर्पचमसौ सव्यदक्षिणयोः क्रमात्। मुसमे तु न्यसेन्मुञ्जमन्तरूर्वोरुलूखलम्॥ चान्त्रोविलीढमत्रैव अग्नयेरप्ययं विधिः(?) अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः॥

'अग्नये विविचये स्वाहा अग्नये व्रतपतये अग्नये पवमानाय अग्नये पावकाय अग्नये शुचये स्वाहा अग्नये पथि कृते स्वाहा अग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा।' फिर चार वार ग्रहण करके 'मनोज्योतिः०' इस मन्त्रसे आहुति दे, ऐसा करनेके उपरांत पैतृक कर्म सिद्ध होता है। आहिताग्नि विदेशमृतक हो तो मार्गका यज्ञ और मृतकका अग्निहोत्र और उसका दाह तथा पात्रोंका योजन कल्पसूत्र आदिके अनुसार हमारे पितामहकी निर्माण की हुई पद्धतिमें जानना चाहिये, यहाँ बहुत कुछ कहना था तो भी (विस्तार होनेके भयसे) नहीं कहते हैं। स्मार्त अग्निवालेका दाह तो मदनरत्न और छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि दुर्बल (मरने योग्य) को स्नान कराकर शुद्धवस्त्रसे ढककर और दक्षिणकी ओर शिर करके भूमिमें कुशाओंपर लिटा दे, घृत मलकर, स्नान कराकर और शुद्ध वस्त्र और यज्ञोपवीत पहराके, सब अंगपर चन्दन छिड़के और फूलोंसे भूषित करे, सुवर्णके टुकड़े सातों छिद्रोंमें डालकर और मुख ढककर पुत्र आदि इसको श्मशानमें ले जायँ। आमपात्रमें अन्न लेकर अग्निको आगे कर एक मनुष्य चले, उस (अन्न)के आधे भागको आधे मार्गमें भूमिपर त्याग दे, फिर दक्षिणको मुख करके और पिण्डदानके समान बायें गोड़को नवाकर तिलके सहित दग्ध करना चाहिये। फिर पुत्र आदि स्नान करके काष्ठकी बृहत् चिता निर्माण करें, फिर सीधे उस प्रेतको चितामें लिटाकर मुखमें घीसे भरे स्रुवेको दे, और दक्षिणको अग्रभाग करके नासिकामें दे, चरणोंमें प्राक्अरणी और छातीपर ऊपरकी अरणी और सूप और चमस सव्य तथा दक्षिण पार्श्वोंमें क्रमसे रख देने और प्रेतके जंघाओंमें समान देशमें ऊखल रक्खे, और चांत्रविलीढ वहां ही स्थापन करे, अग्निकी भी यही विधि है, अपसव्य होकर मौन होकर

अथाग्निं सव्यमावृत्को दद्याद्दक्षिणतःशनैः॥अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतांपुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति परिकीर्तयेत्॥" तथा-"एवमेवाहिताग्नेश्च पात्रन्यासादिकं भवेत्। कृष्णाजिनादिकं चात्र विशेषोऽध्वर्युचोदितः॥" तत्रैव-"अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता। अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः॥" इदं छन्दोगानामेव। पात्रन्यासोक्तिरुत्तानदेहत्वं साग्निपरम्, निरग्निस्तु पुमानधोमुखः, स्त्रीतूत्ताना दाह्या। "सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः।अधोमुखो दक्षिणादिक्चरणस्तु पुमानिति। उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः॥" इत्यादित्यपुराणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः। उत्तरशिरस्त्वं सामगेतरपरम्। वाराहे त्वग्निदानेऽन्यो मन्त्रः-"कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान्स गच्छतु॥ ज्वलमानं महावह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत्। चतुर्वर्णेषु संस्थानमेवं भवति पुत्रके॥" अत्र क्रियानिबन्धे गारुडे षट्पिण्डदानमुक्तम्। "मृतस्योत्क्रान्तिसमये षट् पिण्डान् क्रमशो ददेत्। मृतिस्थाने तथा द्वारि चत्वरे तार्क्ष्यकारणात्। विश्रामे काष्ठचयने तथा संचयने च षट्॥" तथा-"आदौ देयास्तु षट् पिण्डा दश

सब करे और दक्षिणकी ओर मुख करके बैठे, फिर सव्य होकर अग्निको लेकर शनैः शनैः दक्षिणाशाकी तरफ अग्नि दे और यह मन्त्र उच्चारण करे कि इस अग्निसे उत्पन्न हुआ और ब्रह्मरूप तुझसे यह अग्नि फिर उत्पन्न हो यह स्वाहा स्वर्गलोकके निमित्त है। ऐसे ही वाक्य है कि इसी प्रकार आहिताग्निके पात्रोंका रखना होता है, और अध्वर्युके द्वारा कहा हुआ काले मृगका चर्म यहां विशेष लिखा है। और वहां ही लिखा है कि जो नारी श्रेष्ठ आचरणवाली है, उसे भी इसी प्रकार दग्ध करना केवल अग्नि देनेका मन्त्र इसके निमित्त नहीं कहना; यह स्थिति है, यह छन्दोगोंके निमित्त है। पात्रोंका रखना कहनेसे सीधा देह रखना साग्नियोंके लिये है और निरग्नि अधोमुख रखे जाते है तथा स्त्रियोंको उत्तान ही दग्ध करे, क्योंकि सगोत्री ग्रहण करके मृतकको चितामें रक्खे,नीचामुख और दक्षिणको शिर पुरुषका करे और सपिंड बांधव स्त्रीको उत्तान मुख चितापर रक्खें, यह आदित्यपुराणमें लिखा है,ऐसा शुद्धितत्त्व और हारलता आदि लिखते हैं। उत्तरको शिर करना यह सामवेदियोंसे पृथक्के विषयमें है। वराहपुराणमें तो अग्निके दानका दूसरा मंत्र है कि जानकर वा न जानकर पापकर्मोंको करके और मृत्युकालके वशमें होकर मृतक हुए धर्म अधर्मसे युक्त और लोभ मोह सहित मनुष्यके सब गात्रोंको दाह करे आर वह जीव स्वर्गलोकमें जावे इस मन्त्रसे जलती हुई अग्निको शिरके स्थानमें लगावे और हे पुत्र! चारों वर्णोंमें इसी प्रकार स्थिति होती है। यहां क्रियानिबन्धमें गरुड़के वाक्यसे छः पिण्डोंका देना लिखा है कि हे गरुड ! मृतकके मरणके समय क्रमसे छः पिण्ड देने जैसे कि एक मृतस्थानमें, एक द्वारमें, चौराहेमें, विश्राम और चिता और अस्थिसञ्चय ये छः कहे हैं। ऐसे ही वाक्य हैं कि छः पिण्ड आदिमें देने और दश पिण्ड दशदिनके, मृतस्थान, अर्द्धमार्ग, चिता, शवका हाथ, श्मशान-

देया दशाहिकाः । स्थाने चार्धपथेऽतीते चितायां शवहस्तके ॥ श्मशानवासिभूतेभ्यः षष्ठं संचयने तथा ॥" ततः—"त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः । उक्तः संहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय ॥" इत्यग्निं दत्त्वा । अस्मात्त्वमिति मन्त्रेणार्धदग्धे आज्याहुतिरुक्ता । आहिताग्नौ पराशरः—"शमीं शिश्ने विनिक्षिप्य अरणीं मुष्कयोरपि । जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ शिश्ने तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् । उरसि न्यस्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥ श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः । कर्णे नेत्रमुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् ॥ अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र निक्षिपेत् ॥" प्रचेताः—"स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः । नग्नदेहं दहेन्नैव किंचिद्देयं परित्यजेत् ॥" यमः—'प्रेतं दहेच्छुभैर्गन्धैः स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।' आश्वलायनसूत्रे—'संस्थिते प्रेतालंकारान् कुर्वन्ति केशश्मश्रुलोमनखानि वापयन्ति नलदेनानुलिम्पन्ति नलदमालां प्रतिमुञ्चन्ति' इति । माधवीये ब्राह्मे—'दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो नग्नः कस्यांचिदापदि ।' तथा—'निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित्त्यजेन्नरः ।' दाहकालेऽग्निनाशे तु मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—" यजमाने मृते क्वापि चितायां वै प्रवेशिते । वर्षाद्यभिहतेऽग्नौ तु कथं प्रेतविकल्पना ॥ शेषं

वासीभूतोंको, छठा संचयनमें दे । फिर हे अग्निदेव ! तुम भूतोंके करनेवाले तथा जगत्के करनेवाले और लोकके पालक हो, इससे इस मृतकको स्वर्गमें ले जाओ, इस मन्त्रसे अग्नि देकर और 'अस्मात्त्वमधिजात०' इस पूर्वोक्त मन्त्रसे आधा शरीर दग्ध होनेपर घीकी आहुति देनी लिखी है। आहिताग्निके निमित्त पराशरने लिखा है कि शमीको लिंगके स्थानपर और अरणीको अंडकोशोंपर, जुहूको दक्षिण हाथपर और उपभृतको वाम हाथपर, उलूखलको शिश्नपर, मुशलको पृष्ठपर, छातीपर पत्थर, तण्डुल, घी और तिलोंको मुखमें, कानोंमें प्रोक्षणी और आज्यस्थालीको नेत्रोंमें तथा सोनेके खण्ड कान, मुख, नेत्र और नासिकामें रक्खे और संपूर्ण अग्निहोत्रकी सामग्री वहां रख दे । प्रचेताने लिखा है कि पुत्र आदि प्रेतका स्नान और वस्त्र आदिसे पूजन करें, नग्नका दाह न करें और कुछ देनेकी वस्तु दे । यमने कहा है कि स्नान और मालाओंसे भूषित करके प्रेतका दाह शुभ गन्धोंसे करना चाहिये। आश्वलायन सूत्रमें कहा है कि मृत्युके पीछे प्रेतका अलंकार करते हैं, केश, श्मश्रु, लोम, नख मुड़ाते हैं, चन्दन लिप्त करते हैं और चन्दनकी माला पहराते हैं माधवीयमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि कैसी भी आपत्ति क्यों न हो ? परन्तु दरिद्रीको भी नग्न करके दग्ध न करे । इसी प्रकारके वाक्य हैं कि मनुष्य सब दाह न करे, किन्तु कुछ शेष छोड़ दे । दाहके समय अग्नि नष्ट हो जाय तो मदनरत्नमें यज्ञपार्श्वने लिखा है कि मृतक हुए यजमानको चिंता आदिमें प्रविष्ट करनेपर यदि वर्षा आदिसे अग्नि नष्ट हो जाय तो प्रेतकी कल्पना कैसे हो ? तो उसपर कहते हैं कि शेषका दाह करे वा अग्निको मथकर दाह करे । यदि पुतले आदिके दाहमें अग्नि

दग्ध्वा प्रदग्धेषु निर्मथ्यैव तु कारयेत् ॥" अथ पर्णशरादिदाहेनाग्निनाशे पश्चात्तद्देहलाभे मदनरत्ने ब्राह्मे-" अथ पर्णशरे दग्धे पात्रन्यासे कृते सति । गतेष्वग्निषु तद्देहो यदूर्ध्वं लभ्यते क्वचित् ॥ तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तं दहेत् । यद्यर्धदग्धकाष्ठं तु तदीयं वै न लभ्यते ॥ तदा तदस्थिखण्डं तु निःक्षेप्तव्यं महाजले ॥" दंपत्योरेकदा मृतौ विशेषमाहापस्तम्बः-' तथैव प्रेते सहैव पितृमेधो द्विवचनलिङ्गान्मन्त्रान् सन्धारयन्ति '।' पितृमेधो दाहान्तं कर्म । 'दाहान्तमेकतन्त्रत्वम्' इति बौधायनोक्तेः । अस्थिसंचयनमप्येवम् । उदकपिंडदानादि पृथगेव । सहगमनेऽप्येवम् । तदाह मदनरत्ने भाष्यार्थसंग्रहकारः-" एककालमृतौ भार्या भर्ता च यदि चेद्द्वयोः । तन्त्रेण दहनं कुर्यात्पिण्डश्राद्धं पृथक् पृथक् ॥ एककाले मृतौ जायापती यदि तदा पितुः । विभज्याग्निं क्रियां कुर्यादिति यत्तदसांमतम् ॥ दाहान्तमेकतन्त्रत्वमिति याज्ञिकसंमतम् । मृतं पतिमनुव्रज्य या नारी ज्वलनं गता ॥ अस्थिसंचयनान्तोऽस्या भर्तुः संस्कार एव हि । कीकशानां तु संस्कारो न्यायसिद्धोऽपि यो मतः ॥ एककाले मृतेऽप्येवं कीकशानां विधिः स्मृतः । नवश्राद्धं सपिण्डान्तं भिन्नकालमृतौ यथा ॥" कपर्दिकारिकापि-"मृते भर्त्तरि तद्दाहात्प्राक्

नष्ट हो जाय और पीछे उसका देह मिल जाय तब मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि पर्णशरदग्ध और पात्रन्यास करनेपर अग्नि बुझनेपर उसका देह मिल जाय तो आधे जले हुए उन काष्ठोंको ही मथकर दाह करे और जो आधा जला काष्ठ न मिले तो अस्थियोंके टुकडोंको महाजलमें फेंक दे । स्त्रीपुरुष एकबार मृतक हो जायँ तो आपस्तंबने लिखा है कि उस समयमें मरनेमें संग ही पितृयज्ञ करे और जिनमें द्विवचन हो ऐसे मन्त्रोंको स्वीकार करते हैं; कारण कि बौधायनने लिखा है कि दाहपर्यन्त प्रेतकर्ममें तन्त्र होता है, अस्थियोंका संचयन भी ऐसे ही होता है, जल और पिंडदान पृथक् होते हैं । सती होनेमें भी इसी प्रकार है वही मदनरत्नमें भाष्यार्थसंग्रहकारने लिखा है कि एक समयमें भर्ता और भार्या मृतक हो जाय तो उसका दाह एकचितामें करे और पिंडश्राद्ध भिन्न भिन्न करे । (जो किसीने यह लिखा है कि) एककालमें स्त्री पुरुष मृतक हो जाय तो पिताका दाह पृथक् करे, यह अनुचित है, क्योंकि यज्ञके कर्ताओंकी यह संमति है कि, दाह पर्यन्त एकतंत्र करे । मृतक पतिके उपरांत जो स्त्री सती हो गयी हो तो अस्थिसंचयनतक पतिका संस्कार ही उसका संस्कार है और नीचोंका तो संस्कार न्यायसिद्ध नहीं है, एक समयमें मरे अधमकी भी ऐसे ही विधि लिखी है; जैसे नवश्राद्ध सपिंडीपर्यन्त भिन्न कालमें मरनेपर भी होता है । कपर्दिकारिकामें लिखा है कि स्वामीके मरनेपर दाहसे प्रथम स्त्री मृतक हो जाय वा स्त्रीके दाहसे प्रथम

पत्नी म्रियते यदि । पत्न्यां वा प्राक् प्रमीतायां दाहाद्र्वाक्पतिर्मृतः ॥ तत्र तन्त्रेण दाहः स्यान्मन्त्रेषु द्वित्वमूह्यते । कीकशानां तु संस्कारः पृथगेव तयोर्भवेत् ॥ एकाहमृत्यौ युगपन्नवश्राद्धादिकं तयोः । मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता ॥ तत्रापि दाहस्तन्त्रेण पृथगस्थिक्रिया भवेत् ॥" अस्थिसंचयनपृथक्त्वे विकल्पः । सहगमने सर्वत्र पाकैक्यमाह प्रचेताः-" एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक् पिण्डं समाचरेत् ॥" अथोदकदानमाह वसिष्ठः-" शरीरमग्नौ संयोज्यानवेक्षमाणा अपोऽभ्यवयन्ति सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्त्ययुग्मम् ॥" आपस्तम्बः-" मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्यः पितुश्चासप्तमात् पुरुषाद्यावतां वा सम्बन्धो ज्ञायते तेषां प्रेतेषूदकक्रिया" इति । याज्ञवल्क्यः-" सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः । अपनः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ॥" सप्तमाद्दशमाद्वा दिवसादादन्तमिति विज्ञानेश्वरः । कातीयास्तु सप्तमाद्दशमाद्वा पुरुषादित्याहुः । 'सप्तमाद्दशमाद्वा पुरुषात्समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनुस्मरेयुः' इति पारस्करोक्तेः । मन्त्रस्नानांगमेवेति हेमाद्रिः ।

पति मृतक होजाय तो वहां एक चितामें दाह होता है, और मन्त्रोंमें द्विवचनका ऊह करना । कीकश (नीच) जातिमें तो उन स्त्री-पुरुषोंका संस्कार भिन्न भिन्न होता है और एक दिन मरनेमें उनके नवश्राद्ध आदि साथ ही होते हैं । मृतकपतिके पीछे पत्नी सती हो तो वहां भी दाह संग और अस्थिसंचयन भिन्न होता है और अस्थिसंचयनके पृथक् होनेमें विकल्प है । सती होनेमें सर्वत्र एक पाक प्रचेताने लिखा है कि यदि मरे हुए स्त्रीपुरुष एक चितामें दग्ध किये हों तो पाक एक करे और पिंड पृथक् पृथक् दे । अब जलदानको लिखते हैं-वसिष्ठने कहा है कि अग्निमें शरीरको मिलाकर और उसको नहीं देखते हुए जलके निकट जायँ, वाम और दक्षिण हाथोंसे विषम (एक तीन आदि) मनुष्य जलदान करे । आपस्तंबने लिखा है कि माताके योनिसम्बन्धी और पिताके सात पीढ़ियोंमें वा जितनोंका सम्बन्ध विदित हो वे सब मरे हुएको जलदान दें । याज्ञवल्क्यने लिखा है कि सातवीं वा दशवीं पीढ़ीतक जातिके मनुष्य जलके निकट जायँ, दक्षिणको मुख करके." अपनः शोशुचदघम्०" इस मंत्रको कहकर नाम गोत्र उच्चारण कर और मौन होकर जलदान करे । सातवें, दशवें दिनसे दाँत निकलनेतक जलदान होता है, यह विज्ञानेश्वरने लिखा है । कातीय तो यह लिखते हैं कि सातवें वा दशवें पुरुषतक जलदान करना चाहिये; कारण कि पारस्करने लिखा है कि सातवें वा दशवें पुरुषतक एक ग्राममें जितने मनुष्य निवास करते हों उनमें जितनोंका संबन्ध विदित

प्रचेताः—"प्रेतस्य बान्धवा यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्वर्षयेयुरुदकान्ते प्रसिञ्चेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणामुखाः ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः॥" स एव 'नदीकूलं ततो गत्वा' इत्युक्त्वा "सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः। पाषाणं तत आदाय विप्रे दद्याद्दशाञ्जलीन्॥ द्वादश क्षत्रिये दद्याद्वैश्ये पञ्चदश स्मृताः। त्रिंशच्छूद्राय दातव्यास्ततस्तु प्रविशेद्गृहम्॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत्॥" अथ प्रेतस्नाने विशेषः शुद्धितत्त्वे आदित्यपुराणे—"आदौ वस्त्रं च प्रक्षाल्य तेनैवाच्छादितस्ततः। कर्त्तव्यं तैः सचैलं तु स्नानं सर्वमलापहम्॥" पूर्वपरिहितं वस्त्रं प्रक्षाल्य पुनः परिधाय स्नायादित्यर्थः। अपन इति मन्त्रेण वामहस्तानामिकया जलालोडनम्। अवतरणे वृद्धपुरस्सरत्वोक्तेः। 'यथाबालं पुरस्कृत्य' इति बौधायनीयं जलादुत्थानपरमिति हारलतादयः। आश्वलायनः 'सव्यावृता व्रजन्त्यनीक्षमाणा यत्रोदकमवहद्भवति, तत्प्राप्य सकृदुन्मज्ज्यैकाञ्जलिमुत्सृज्य तस्य गोत्रं नाम गृहीत्वा' इति। प्रचेतसाऽन्वहमञ्जलित्रयमप्युक्तं 'त्रिःप्रसेकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु' इति। तथा—"दिनेदिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात्प्रेतकारणात्। तावद्वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते॥" एकवृद्धिस्त्रिकवृद्धिर्वेत्यर्थः।

हो उनको जलदान करना चाहिये। मंत्र तो स्नानाङ्ग ही है, यह हेमाद्रि लिखते हैं। प्रचेताने लिखा है कि प्रेतके बांधव वृद्ध वृद्धके क्रमसे जलमें उतरकर स्नान करें और जलके निकट बैठकर यज्ञोपवीत और वस्त्रको अपसव्य करके शूद्र दक्षिणमुख, ब्राह्मण उत्तरको और क्षत्रिय, वैश्य पूर्वको मुख करके जलदान करे। और प्रचेताने ही कहा है कि नदीके किनारे जाकर सवस्त्र स्नानके पीछे शुद्ध और सावधान मनुष्य पत्थरको लेकर उसके ऊपर ब्राह्मणको दश अंजलि, क्षत्रियको बारह, वैश्यको पन्द्रह, शूद्रको तीस दें, फिर घरमें आवें, वहां फिर स्नान और घरकी शुद्धि करें। प्रेतके स्नानमें विशेष शुद्धितत्त्वमें आदित्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि पहले वस्त्रको धोकर फिर उसी धुले वस्त्रको ओढकर सचैलस्नान करे, अर्थात् पूर्व त्यागे हुए वस्त्रको धोकर और धुले हुए वस्त्रको ओढ़कर फिर सचैलस्नान करे, यह स्नान सब मलोंके दूर करनेवाला है "अपनःशोशुचदयम्०" इस मन्त्रको उच्चारण कर बांये हाथकी अनामिका (कनउंगली) से जलको बिलोवे। जलमें घुसनेमें वृद्धोंको आगे कहनेसे यह बौधायनका वाक्य है कि बालकोंको आगे करके जलसे निकलनेमें है, यह हारलता आदि लिखते हैं। आश्वलायनने लिखा है कि सव्य होकर प्रेतको नहीं देखते, जहां जल अधिक हो वहां जाय और जाकर स्नान करके प्रेतका नामगोत्र लेकर एक एक अंजली देनी। प्रचेताने तो प्रतिदिन तीन अंजली देना कहा है कि प्रेत तृप्त हो यह कहकर प्रत्येक तनि तीन अंजली दे। ऐसे ही वाक्य है कि प्रेतके निमित्त प्रतिदिन जलसे पूर्ण अंजली दे और जबतक पिंड समाप्त हो तबतक अंजली प्रतिदिन

मदनरत्ने भरद्वाजगृह्ये तु द्विकवृद्धिरप्युक्ता –" आशौचान्ते प्रदद्यात्तु प्रेतपुत्रस्तिलाञ्जलीन् । प्रथमेऽह्नि सकृद्दद्यात्पिण्डयज्ञावृतो दिवा ॥ त्रींश्च दद्याद्द्वितीयेऽह्नि तृतीये पञ्च एव च । चतुर्थे सप्तसंख्यास्तु पञ्चमे नव चोत्सृजेत् ॥ षष्ठेऽह्नि चैकादशकाः सप्तमे तु त्रयोदश । अष्टमे पञ्चदशका नवमे दश सप्त च ॥ एकोनविंशतिं चाग्रे शताञ्जलिमतं स्मृतम् । केचिद्दशाञ्जलीन् प्रोचुः केचिदाहुः शताञ्जलीन् ॥ पञ्चपञ्चाशतं चान्ये स्वशाखोक्तव्यवस्थया ॥" छन्दोगपरिशिष्टे–"अयानवेक्षयेत्पापः सर्वे चैव शवस्पृशः। गोत्रनामपदान्ते तु तर्पयामीत्यनन्तरम् ॥ दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलं तु पृथक् पृथक् ॥ विष्णुपुराणे–"सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥" रामायणे–"इदं पुरुषशार्दूल विमलं दिव्यमक्षयम् । पितृलोकेषु पानीयं मद्दत्तमुपतिष्ठताम् ॥" दानवाक्ये विकल्पः । याज्ञवल्क्यः–कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्त्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥' काम इच्छा । प्रेततृप्तीच्छायां देयमन्यथा नेत्यर्थः । शङ्खपारस्करौ–"आचार्ये चैवं मातामहयोश्च स्त्रीणां चाप्रत्तानां कुर्वीरंस्ताश्च तेषाम्" इति । द्विवचनान्मातामह्या अपि । शङ्खलिखितौ–'उदकक्रिया कामं श्वशुरमातुलयोः शिष्ये सहाध्यायिनि राजनि च' इति । वृद्धमनुः–"क्लीबाद्या नोदकं कुर्युः स्तेना

बढ़ाता जाय । मदनरत्न और भरद्वाजगृह्यमें तो दो अंजलिकी भी वृद्धि लिखी है कि अशौचके पीछे प्रेतका पुत्र तिलांजलि दे, पहले दिन अपसव्य होकर एक अंजली, दूसरे दिन तीन, तीसरे दिन पांच, चौथे दिन सात, पांचवें दिन नौ, छठे दिन ग्यारह, सातवें दिन तेरह, आठवें दिन पंद्रह, नौवें दिन सतरह, दशवें दिन उन्नीस उसके आगे सौ अंजली लिखी हैं । और कोई दश अंजली, कोई सौ अंजली, कोई ५५ अंजली अपनी अपनी शाखांमें लिखी हुई व्यवस्थासे कथन करते हैं । छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि शव(मृतक)के स्पर्श करनेवालेको न देखकर गोत्र और नामके पीछे 'अहं तर्पयामि' ऐसा उच्चारण कर दक्षिणको अग्रभाग करके कुशा और तिल लेकर पृथक् पृथक् जलदान करना चाहिये । विष्णुपुराणमें कहा है कि सपिंडीतक ऋजु(सीधी) कुशासे पितृकार्य करे और सपिंडीकरणके पश्चात् दूनी कुशाओंसे विधिपूर्वक पितृकर्म करना चाहिये । रामायणमें कहा है कि, हे पुरुषशार्दूल ! निर्मल दिव्य मेरा दिया हुआ यह जल पितृलोकमें अक्षय होकर प्राप्त हो, दानके वाक्यमें विकल्प है, क्योंकि याज्ञवल्क्यने कहा है कि विवाही कन्या, भानजा, श्वशुर, ऋत्विज इनको इच्छाके अनुसार अर्थात् प्रेततृप्तिकी इच्छा हो तो देना; नहीं तो न देना । शंख और पारस्करने लिखा है कि आचार्य, नाना, नानी, विवाही स्त्रियोंको जल दे और वे उनको दें । शंखलिखितमें कहा है कि श्वशुर और मामाको यथेच्छ जलदान देना चाहिये और शिष्य, संन्यासी तथा राजाको भी दे । वृद्धमनुने कहा है कि नपुं-

व्रात्या विधर्मिणः।गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः॥" याज्ञवल्क्यः-'न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा॥' षडशीतौ-"स्वीयाचारादपि भ्रष्टाः पतिता ये च दूषिताः। न कुर्युरुदकं ते वै तेभ्योऽप्यन्ये न चैव हि ॥" मदनरत्ने हारीतः-"पतितानामवृद्धानां चरन्तीनां च कामतः।प्रत्तानां चैव कन्यानां निवर्त्या सलिलक्रिया॥" अपरार्के शङ्खलिखितौ-'अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि व्यावर्तन्ते ।' अपपात्रितः कृतघटस्फोटः । तस्यापि संग्रहविधौ कृते आशौचोदकादि कुर्यादेवेत्याशौचप्रकाशः । अथाशौचे नियमाः । याज्ञवल्क्यः-"इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहं बालपुरःसराः। विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः ॥ आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् । प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥ प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि । क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्क्षितौ ॥"इदं त्वाद्येऽह्नि । वसिष्ठः-'आद्ये प्रस्तरे गृहमनश्नन्त आसीरन् क्रीतोत्पन्नेन वा वर्तेरन् ।' शुद्धितत्त्वे बैजवापः-'शमीमालभन्ते शमी पापं शमयतु इति,अश्मानमश्मेव स्थिरो भूयासमिति, अग्निमग्निर्नः शर्म यच्छत्विति ज्योतिस्त्वन्तरा गामजमुपस्पृशन्तः क्रीत्वा लब्ध्वा वान्यगेहोदकान्नमलवणमेकरात्रं दिवा भुञ्जीरंस्त्रिरात्रं च कर्मोपरमणम्, क्रीताद्यशनमुपवासाशक्तस्य।' आश्व-

---

सक आदि, चोर, व्रात्य और विधर्मी, गर्भ और स्वामीके द्रोही तथा मद्यपी स्त्री इनको जलदान न करना चाहिये याज्ञवल्क्यने कहा है कि ब्रह्मचारी और पतितको जलदान करना उचित नहीं । षडशीतिमें कहा है कि निज आचरणमें भ्रष्ट, पतित, दूषित ये जल न दें और अन्य भी इनको न दें । मदनरत्नमें हारीतने कहा है कि पतित, युवावस्थामें यथेच्छ विचरती हुई और विवाही कन्याको जलदानका निषेध है अपरार्कमें शंखलिखितका वाक्य है कि जो पात्रोंसे बाह्य है उसका भाग, पिंड, जलदान निवृत्त होते हैं, पात्रोंसे बाहर वह होता है जिसका घटस्फोट हुआ हो । यदि उसकी संग्रहविधि कर दी हो तो अशौच और जलदान आदि करने यह अशौचप्रकाशमें कहा है । अब अशौचनियम लिखते हैं-याज्ञवल्क्यने कहा है कि यह सुनकर और बालकोंको आगे करके घरको जाय और मंदिरके द्वारपर नीमके पत्ते चाबकर,आचमन करके और अग्नि, जल,गोबर तथा श्वेत सरसोंको छूकर पत्थरपर चरण रखकर धीरेधीरे घरमें प्रवेश करें । यह प्रवेश आदिका कर्म प्रेतके छूनेवालोंको भी है, मोल लेकर भोजन करें और भूमिपर पृथक् पृथक् शयन करें, यह प्रथम दिनका नियम है।वसिष्ठने कहा है कि प्रथमदिन भूमिपर सोवें और भोजनको त्यागकर रहें,वा मोलके लिये वा औरका अन्न भक्षण करें । शुद्धितत्त्वमें बैजवापने कहा है कि शमी पापको दूर करो, यह उच्चारण कर शमीको छुए,पत्थरके समान स्थिर रहूँ,यह कहकर पत्थरको,अग्नि हमें सुख दो,यह कहकर अग्निको,ज्योतिरूप है, यह कहकर गौ और बकरीको छुए । मोल लिये वा औरके घरसे मिले,लवणसे हीन अन्नजलको एक दिन भोजन करे तीन दिनतक कर्मको छोड दे, मोल लेकर भोजन करना उसके निमित्त है,जिसको व्रत करनेकी सामर्थ्य न हो । आश्वलायनने

लायनस्तु–'नैतस्यां रात्र्यामन्नं पचेरन् त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनः स्युः द्वादशरात्रं वा' इत्याह । अशक्तौ रत्नाकरे आपस्तम्बः–'नार्याः परमगुरुसंस्थायां चाकालभोजनानि कुर्वीरन् ।' यदा मृतिः परदिने तावत्कालमित्यर्थः । बृहस्पतिः–" अधःशय्यासना दीना मलिना भोगवर्जिताः । अक्षारालवणान्नाः स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा ॥" भोगोऽभ्यङ्गताम्बूलादिः । क्षाराः परिभाषायामुक्ताः । यत्तु मार्कण्डेयपुराणे–'तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत् । तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः॥प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा । वस्त्रत्यागं बहिःस्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकम्" इति, तदन्त्यदिनपरम् । 'आशौचान्ते तिलकल्कैः स्नाता गृहं प्रविशेयुः' इति विष्णूक्तेः । विष्णुपुराणे त्वस्थिसंचयोर्ध्वं भोगोऽप्युक्तः।"शय्यासनोपभोगस्तु सापिण्डानामपीष्यते । अस्थिसंचयनादूर्ध्वं संयोगस्तु न योषिताम्॥"भारते–"तिलान् ददतु पानीयं दीपं ददतु जाग्रतु । ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥" मनुः–'मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक्क्षितौ।'देवजानीये कारिकायाम्-"लवणक्षीरमाषान्नापूपमांसानि पायसम् । वर्जयेदाहृतान्नेषु बालवृद्धातुरैर्विना ॥ उपवासो गुरौ प्रेते पत्न्याः पुत्रस्य वा भवेत् ॥" मरीचिः–"प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे दशमे तथा । ज्ञातिभिः सह भोक्त-

---

तो लिखा है कि उस रातमें अन्नका पाक न करे, तीन राततक खारा और लवण न भोजन करे, वा बारह राततक भोजन न करे । असामर्थ्यमें तो रत्नाकरमें आपस्तंबका वचन लिखा है कि भार्या परमगुरुके मृतक होनेपर मरनेके समयसे दूसरे दिन उसी समयतक अकालमें भोजन करे । बृहस्पतिने कहा है कि नीचे सोवें, दीन और मलिन रहें और भोगोंसे वर्जित रहें, खार और लवणहीन अन्न खावें, वा मिला हुआ वा मोलका भोजन करें, भोगपदसे उबटना और तांबूल आदि लेना, खारे पदार्थ परिभाषामें लिखे हैं । और जो मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि तेलका लगाना, अंगका दबवाना यह कर्म बांधव करें, जो बांधव भोजन करते हैं उससे वह (प्रेत) पुष्ट होता है । पहले, तृतीय, सप्तम, नवम इन दिनोंमें वस्त्रोंको त्याग और बाहर स्नान करके तिलजल दें । वह वाक्य अंत्यदिनके विषयमें है; कारण कि विष्णुने लिखा है कि अशौचके पीछे तिलकी खलसे स्नान करके घरमें प्रवेश करे । विष्णुपुराणमें तो अस्थिसंचयनके उपरान्त भोग भी लिखा है कि शय्या आसनका भोग सपिंडोंको भी इष्ट है, परन्तु अस्थिसंचयनके बाद स्त्रियोंका संग इष्ट नहीं । भारतमें कहा है कि तिल, जल, दीप दो और जागो, ज्ञातिमें बैठकर भोजन करना, यह प्रेतोंमें दुर्लभ है । मनुने लिखा है कि मांस भोजन न करे और पृथ्वीपर भिन्न हो शयन करे । देवजानीयमें कारिका लिखी है कि लवण, दूध, उड़द, पूवे, मांस, खीर इनको बालक, वृद्ध, आतुरको छोड़कर मँगवाये हुए अन्नमें त्याग दें, गुरु और भार्या बेटेके मरनेमें उपवास करना चाहिये । मरीचिने कहा है कि प्रथम, तृतीय, सातवें, दशवें दिनोंमें ज्ञातियोंके

ठ्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥ " भोजनं च दिवैव । ' दिवा चैव तु भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ ।' इति विष्णुपुराणात् । 'क्रीत्वा लब्ध्वा वा दिवान्नमश्नीयुः' इति पारस्करोक्तेश्च। मदनरत्ने हारीतः-' पाणिषु मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वाऽश्नीरन् ।' देवजानीये ब्राह्मे-' आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान् ।' अन्त्यदिने तु मदनरत्ने ब्राह्मे-"यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र गृहशुद्धिं च वस्त्रशुद्धिं करोत्यपि ॥"अन्त्यकर्मकालीनवस्त्रयोस्तु तन्त्रेणैवोक्तम्-"ग्रामाद्बहिस्ततो गत्वा प्रेतस्पृष्टे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोत्यथ ॥" इति । शंखः-" दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । प्रेतपिण्डक्रियावर्ज्यमाशौचे विनिवर्तते ॥" काठकगृह्ये-'यत्र प्राणोत्क्रमस्तत्रान्वहं महाबलिं कुर्यात् ।' इति । पारस्करः-'तदानीमेव वस्त्रं तण्डुलं दीपं कांस्यभाजनं प्रेताय दद्यात् ।' आशौचप्रकाशे भरद्वाजः-"वासोऽन्नं च जलं कुम्भं प्रदीपं कांस्यभाजनम् । नग्नप्रच्छादने श्राद्धे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥" भृगुः-" तिलोदकं तथा पिण्डान् नग्नप्रच्छादनादिकम् । रात्रौ न कुर्यात्संध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम् ॥" अथ प्रेतपिण्डनिर्णयः । यद्यपि हेमाद्रौ पारस्करेण- ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ।

संग भोजन करना प्रेतोंको दुर्लभ है । भोजन दिनमें ही करे; कारण कि विष्णुपुराणमें लिखा है कि हे मनुष्योंमें उत्तम ! मांसको त्याग कर दिनमें ही भोजन करे । और पारस्करने भी कहा है कि मोल लिये वा मिले हुए अन्नको दिनमें भोजन करे । मदनरत्नमें हारीतका वचन है कि हाथ, मिट्टीके बरतन वा पत्तोंके दोनोंमें भोजन करना चाहिये । देवजानीयमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि अशौचके बीचमें यत्नसे अपने सगोत्रियोंको जिमाना चाहिये । अन्त्यके दिन तो मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि जिस जिस वर्णका जो जो पिछला दिवस है, वह उस दिन घरकी और वस्त्रोंकी शुद्धि करे । अन्त्यकर्म करनेके वस्त्रोंका उसी स्थलमें यह लिखा है कि ग्रामसे बाहर जाकर प्रेतस्पर्शके दोनों कपड़े अन्त्यज और सेवकोंको देकर स्नान करे । शंखका कथन है कि दान, प्रतिग्रह, होम, वेदपाठ, पितरोंका कर्म ये सब प्रेतकी पिंडक्रियाको छोड़कर अशौचमें निवृत्त हो जाते हैं । काठकगृह्यमें कहा है कि जहाँ प्राण निकले हों वहाँ प्रतिदिन महाबलि देनी चाहिये । पारस्कर लिखते हैं कि उसी समय वस्त्र, चावल, दीप और कांसीका बर्तन प्रेतको दे । अशौचप्रकाशमें भरद्वाजका कथन है कि वस्त्र, अन्न, जल, घड़ा, कांसीका पात्र और धोती ये श्राद्धमें ब्राह्मणको देनी चाहिये । भृगुका कथन है कि तिल, जल, पिण्ड तथा धोती आदिका दान; इनको रात्रि और संध्यामें न करे, यदि करे तो वह व्यर्थ है अर्थात् फल नहीं देता । अब प्रेतपिण्डको लिखते हैं-यद्यपि हेमाद्रिमें पारस्करने ब्राह्मणको दश पिण्ड, क्षत्रियको बारह, वैश्यको पन्द्रह और शूद्रको

वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥" इत्युक्तं तथापि—'प्रेतेभ्यः सर्ववर्णेभ्यः पिण्डान्दद्याद्दशैव तु।' इति तेनैवोक्तेः सर्वेषां दशैव ज्ञेयाः। मदनरत्नेऽप्येवम्। तथा च हेमाद्रौ ब्राह्मपाद्मयोः—"जात्युक्ताशौचतुल्यांस्तु वर्णानां क्वचिदेव हि। देशधर्मान्पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डान्वपन्त्यपि॥" इत्युक्त्वा—विप्रान्येषु दशमपिण्डोत्कर्ष उक्तः। "देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेऽहनि। वैश्यानां वै पञ्चदशे देयस्तु दशमस्तथा॥ शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे पूर्णेऽह्नि दीयते॥" इति। युद्धमृतादेः सद्यःशौचे त्र्यहादौ च तेनैवोक्तम्—'सद्यःशौचे प्रदातव्याः सर्वेऽपि युगपत्तथा।' दैवतैक्येऽपि न सांतपनं प्राजापत्यवत्तन्त्रेण किन्तु दश पिण्डान् पृथक् दद्यात्। शिरस्त्वाद्येन पिण्डेनेति दशत्वावच्छिन्नस्यैव शरीरोत्पादकत्वात्। "त्र्यहाशौचे प्रदातव्यः प्रथमेऽह्न्येक एव हि। द्वितीयेऽहनि चत्वारस्तृतीये पंच चैव हि॥" त्र्यहे प्रकारान्तरं प्रागुक्तम्। शातातपः—'आशौचस्य च ह्रासेऽपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु।' तत्रैकपात्रे सकृत्त्यक्त्वा दश पिण्डान्दद्यात्। 'उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये। पूर्वदत्ताञ्जलीन् दद्यात्पूर्वपिण्डांस्तथैव च॥ इति गृह्यकारिकायां पात्रविपर्यये दोषोक्तेः। शिलाविपर्यये घटस्फोटादेर्नावृत्तिः। अक्षाभ्यञ्जनादिपदकर्मण एकहायननिनयनवदप्रयोजकत्वात्। तद्वच्चात्र लौकिकग्रहणम्। केचित्तु—'नवान्यादाय भाण्डानि आरुकं चरुकं तथा।' इति प्रचेतसोक्तेः पात्रानेकत्व-

---

तीस लिखे हैं, तथापि सब वर्णोंके प्रेतोंको दश पिण्ड देने, यह उसने ही लिखा है, इससे सबके दश ही जानने। मदनरत्नमें भी ऐसे ही लिखा है, वही हेमाद्रिमें ब्राह्म और पद्मपुराणके वाक्य हैं कि वर्णोंकी जातिके अशौचके समान कहीं कहीं पिण्ड देते हैं और देशधर्मके अनुसार भी पिण्ड देते हैं, यह लिखकर ब्राह्मणसे भिन्न जातियोंमें दशवें दिनका उत्कर्ष लिखा है कि राजाओंको दशवां पिण्ड बारहवें दिन, वैश्योंको पन्द्रहवें दिन और शूद्रको महीनेकी पूर्तिपर देना चाहिये। युद्धमें मृतक हुए आदिके अशौचमें और तीन दिन आदिके अशौचमें उसने ही लिखा है कि सद्यःशौचमें सब पिण्ड एक साथ देने चाहिये। देवता एक भी हो तो सांतपन और प्राजापत्यके समान तन्त्रसे न करे, किन्तु भिन्न भिन्न दशों पिण्ड देने; कारण कि प्रथम पिंडसे शिर होता है, इत्यादि वाक्यसे दशों ही शरीरके उत्पादक हैं। तीन दिनके अशौचमें प्रथम दिन एक, दूसरेमें चार, तीसरेमें पांच दे और तीन दिनका अन्य प्रकार पहले कह आये हैं। शातातपने कहा है कि अशौचका ह्रास हो जाय तो भी दश ही पिण्ड दे और वहां एक पात्रमें एक बार देकर दश पिंड देने, दुपट्टा, शिला, पात्र, कर्ता तथा द्रव्यकी नष्टता हो जाय तो पूर्व दी हुई अंजली और दिये हुए पिंडोंको दे, यह गृह्यकारिकामें पात्रके नष्ट होनेमें दोष लिखा है। शिलाका विपर्यय हो जाय तो घटस्फोट दूसरी बार न करना चाहिये। नेत्रोंके अभ्यंजन आदि पद कर्मोंको एकहायन (वर्ष) के ले जानेके तुल्य बोधकता नहीं है और इसी प्रकार यहां लौकिक पदका ग्रहण है। कोई तो नये पात्र

माहुः । क्रियाकर्तुर्नाशेऽन्येन शेषः समापनीयः । "एवं क्रियाप्रवृत्तानां यदि कश्चिद्वि-पद्यते । तद्बन्धुना क्रिया कार्या सर्वैर्वा सहकारिभिः ॥" इति शुद्धितत्त्वे बृहस्पति-स्मृतेः । पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने च तदन्ते कुर्यात् । 'शावाद्द्विगुणमार्तवम्' इत्युक्तेः । आशौचान्ते आर्तवे कर्तुरस्वास्थ्ये वान्येन क्रिया सर्वावर्तनीया कर्तुर्विपर्ययात्काला-तिक्रमयोगाच्च । वाराहे—"स्थण्डिले प्रेतभागं तु दद्यात्पूर्वाह्ण एव तु । कृत्वा तु पिण्डं संकल्प्य नामगोत्रेण सुन्दरि ॥" मरीचिः—"प्रेतापिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रवि-वर्जितम् । प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ॥" दर्भवर्जनमनुपनीतपरम् । 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु ' इति प्रचेतसोक्तेः । मिता-क्षरायां स्मृत्यन्तरे—'भूमौ माल्यं पिण्डं पानीयमुपले वा दद्युः । शुनःपुच्छः—" फलमूलैश्च पयसा शाकेन च गुडेन च । तिलमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत् ॥ तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च धूपं दीपं तथैव च । शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्व-पेत् ॥ प्रथमेऽह्नि यद्द्रव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम् ॥" मदनरत्ने मात्स्ये—"तैजसं मृन्मयं

तथा आरुक और चरुको लेकर, इस प्रचेताके वाक्यसे अनेक पात्रोंको लिखते हैं । क्रिया करनेवाला मृतक हो जाय तो औरसे क्रियाको पूर्ण करावे; कारण कि शुद्धितत्त्वमें बृहस्पतिस्मृ-तिका वाक्य है कि इसी प्रकार क्रिया करनेवालोंमें कोई यदि मृतक हो जाय तो उसके बंधु क्रिया करें, वा सब सहायतापूर्वक करें । यदि भार्या करती हो और रजोदर्शन हो जाय तो रजके अन्तमें कर्म करे; कारण कि मृतकके अशौचसे दूना आर्तवको माने, ऐसा कथन है और अशौचके पीछे आर्तव हो वा करनेवाला अस्वस्थ हो तो दूसरेसे सब क्रियाको करावे; कारण कि करनेवालेका विपर्यय है और समयका अवलंबन हो नहीं सकता है । वाराहपुराणमें लिखा है कि स्थंडिलपर प्रेतका भाग पूर्वाह्णमें दे, नाम और गोत्र लेकर हे सुन्दरि ! पिण्डका संकल्प कर देना चाहिये । मरीचिने लिखा है कि कुशा और मन्त्रसे वर्जित प्रेतपिंडको ईशान-दिशामें चरुको स्नान करके सावधानीसे बनाकर बाहर दे । कुशाका त्याग यज्ञोपवीत रहितके निमित्त है, क्योंकि जो संस्कारहीन हैं उनको भूमिपर पिंड दे और संस्कारियोंको कुशापर दे, यह प्रचेताने कहा है । मिताक्षरामें स्मृत्यन्तरका वचन है कि भूमिपर माल्य, पिण्ड और पानी पत्थरपर दे । शुनःपुच्छने कहा है कि फल, मूल, दूध, शाक, गुडमें तिल मिलाकर कुशाओंपर दक्षिणदिशामें पिंड देने और सेचन, फूल, धूप तथा दीपको मंत्रके विना दे, वा सांठी, सत्तू या शाकका पिण्ड दे और प्रथम दिन जो द्रव्य हो वही दशदिनतक होना चाहिये । मदनरत्नमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि तैजस वा मृत्तिकाके पात्रको यत्नपूर्वक पवित्र

---

१ पिताका दशाह करते यदि पुत्रकी मृत्यु हो जाय तो दूसरा पुत्र शेष पिण्ड दे, वह न हो तो उसका पुत्र प्रतिदिन पहले अपने पिताको पिण्ड दे, फिर स्नान कर पितामहको शेष पिण्ड दे, कारण कि औरको अधिकार नहीं है ।

वाथ पात्रं संशोध्य यत्नतः। लौकिकाग्नावधिश्रित्य पचेदन्नं घृतप्लुतम् ॥ स्नात्वाथ तिलसंमिश्रं प्रदद्याद्दर्भसंस्तरे ॥" शुद्धितत्त्वे देवजानीये च ब्राह्मे-"प्रथमेऽहनि यो दद्यात् प्रेतायान्नं समाहितः। अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि॥ मृन्मयं भाण्ड-मादाय नवं स्नातः सुसंयतः। तण्डुलप्रसृतिं तत्र त्रिः प्रक्षाल्य पचेत्स्वयम्॥ सपवित्रै-स्तिलैर्मिश्रं कृमिकेशविवर्जितम्। द्वारोपान्ते ततः क्षिप्त्वा शुद्धां वा गौरमृत्तिकाम्॥ भपृष्ठे संस्तरे दर्भान् याम्याग्रान्देशसंभवान्। ततोऽवनेजनं दद्यात् संस्मरन् गोत्र-नामनी॥ तिलसर्पिर्मधुक्षीरैः संसिक्तं तप्तमेव हि। दद्यात्प्रेताय पिण्डं तु दक्षिणा-भिमुखः स्थितः॥ अर्घ्यैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैस्तोयैश्च शीतलैः। ऊर्णातन्तुमयैः शुद्धै-र्वासोभिः पिण्डमर्चयेत्॥ दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एवं क्रमेण तु। सद्यःशौचे प्रदा-तव्याः सर्वेऽपि युगपत्तथा॥ त्र्यहाशौचेऽपि दातव्यास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः। द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः।दशाहेऽपि च दातव्यः प्रथमे त्वेक एव हि॥ एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकं च दीयते। द्वितीये द्वौ तृतीये त्रीन्॥" इत्याद्युक्त्वा-"एवं स्युः पञ्चपञ्चाशत्तोयस्याञ्जलयः क्रमात्। तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि तिलादिभिः॥" इति। पात्रं कुम्भः।अत्राहःपदमहो-रात्रपरम्, तेन रात्रावपि देय इति गौडाः। दिवसपदाद्रात्रौ नेति मैथिलाः। स एवं

करके और लौकिक अग्निपर रखकर घी डाल अन्नको पकावे और स्नान करके तिलोंसे युक्त पिण्ड कुशाओंपर दे। शुद्धितत्त्व और देवजानीयमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि प्रथम दिन जो मनुष्य सावधानीसे प्रेतको अन्न दे; उसीको और नौ दिनोंमें देने चाहिये। मिट्टीके नये बरतनको लेकर स्नान कर और जितेन्द्रिय हो तीन बार धोकर एक प्रसृति तण्डुल उस पात्रमें डालकर स्वयं पक करे और पवित्र सहित तिलोंसे युक्त और कीट और बालोंसे रहि-तको द्वारके समीप फेंककर वा शुद्ध श्वेत मृत्तिकाको फेंककर वेदीपर दक्षिणाग्रदेशमें उत्पन्न हुई कुशा रक्खे, फिर नाम गोत्र उच्चारण करके अवनेजन दे और तिल, घी, मधु, दूधसे युक्त पिण्डको दक्षिणाभिमुख स्थित होकर प्रेतके लिये दे। फिर अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप, तथा शीतलजल और ऊर्णातन्तुमय शुद्धवस्त्रसे पिण्डकी अर्चा करे। प्रतिदिन इसी क्रमसे पिण्ड देने और सद्यःशौचमें सब पिण्ड एकत्र देने और तीन दिनके अशौचमें भी सावधानीसे तीन पिण्ड देने चाहिये और चार पिण्ड दूसरे दिन देने और एक अस्थिसञ्चयनमें देना, तीन तीसरे दिन दे, फिर वस्त्रआदि धोकर एक दशवें दिन दे और प्रथम दिन एक दे और एक ही जलकी अंजलि और एक ही पात्र दे, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन अञ्जली दे, इत्यादि कहकर इस जलकी पचपन ५५ अञ्जली क्रमसे होती हैं और तिलआदिसे युक्त जलके पात्र भी उतने ही होवे हैं। पात्र कुम्भको कहते हैं। यहां दिन पदसे दिनरात लेना, इससे रात्रिमें भी दे, यह गौडोंका कथन है। दिवस पदसे रात्रिमें न दे, यह मैथिलोंका कथन

त्युक्तेः सपिण्डेन दशपिंडे प्रक्रान्ते पुत्रागमेऽपि स एव दद्यात् ।'असगोत्रः सगोत्रो वा' इति प्रागुक्तेः । दाहकर्तैव दशाहं कुर्यादिति मिताक्षरायाम् । शुद्धितत्त्वे वायवीयेऽपि- "असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि ॥" इति । तत्रैव-"पूरकेण तु पिंडेन देहो निष्पाद्यते यतः । कृतस्य करणायोगात् पुनर्नावर्तते क्रिया॥"शुद्धिप्रकाशे वायवीयेऽपि-"निवर्तयति यो मोहात् क्रियामन्यनिवर्तिताम् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥ तस्मात् प्रेतक्रिया येन केनापि च कृता यदि । न तां निर्वर्तयेत्प्राज्ञः सतां धर्ममनुस्मरन् ॥" इति । आदित्यपुराणे-"पितृशब्दं स्वधां चैव न प्रयुञ्जीत कर्हिचित् । अनुशब्दं तथा चेह प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ उपतिष्ठतामयं पिण्डः प्रेतायेति समुच्चरेत् ॥" क्रियानिबन्धे व्यासः-' प्रेताय पिण्डं दत्त्वा तु ततोऽश्नीयाद्दिनात्यये । ' भविष्ये- "ओदनामिषसक्तूनां शाकमूलफलादिषु । प्रथमेऽहनि यद्द्यात्तद्द्यादुत्तरेऽहनि ॥ गृहद्वारि श्मशाने वा तीर्थे देवगृहेऽपि वा । यत्राद्ये दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत् ॥" ब्राह्मे-' शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा । द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाश्च समासतः ॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम् । चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च ॥ जानू जंघे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि

है । वही दे, यह कहनेसे सपिण्डने जब दश पिण्डका प्रारम्भ कर दिया हो तो पुत्रके आनेपर भी उसे ही देने चाहिये; कारण कि असगोत्र हो वा सगोत्र हो, इस पूर्वोक्त कथनसे जिसने दाह किया हो वही दशाह करे; यह मिताक्षरामें कहा है । शुद्धितत्त्वमें वायुपुराणका वाक्य लिखा है कि असगोत्र हो वा सगोत्र हो स्त्री हो वा पुरुष हो परन्तु जो प्रेतको अग्नि दे वही पिण्ड दे । वहां ही कथन है कि जिस हेतुसे पूरकपिण्डसे देह उत्पन्न होता है, इससे कृतका करना अयोग्य है, इससे फिर क्रिया न करे । शुद्धिप्रकाशमें वायुपुराणका वचन है कि औरकी की हुई क्रियाको जो मनुष्य मोहसे निवृत्त करता है वह उससे विधिका हनन करनेवाला और पिताका नाश करनेवाला होता है, इससे "यदि जिस किसीने प्रेतक्रिया कर दी हो तो सत्पुरुषोंके धर्मका स्मरण करते हुए बुद्धिमान् पुरुषको उसकी निवृत्ति न करनी चाहिये । आदित्यपुराणमें कहा है कि पितृशब्द और स्वधाको किसी प्रकार न कहे और ' अनु ' शब्दको यहां यत्नपूर्वक त्याग दे, प्रेतको यह पिण्ड प्राप्त हो; यह कहे । क्रियानिबन्धमें व्यासका वचन है कि प्रेतको पिण्ड देकर सूर्यास्त होनेपर भोजन करे । भविष्यपुराणमें लिखा है कि चावल, मांस, सत्तू, शाक, मूल, फलमेंसे प्रथम दिन जो दे, दूसरे दिन भी वही दे और गृहद्वार, श्मशान, तीर्थ, देवमन्दिरमेंसे जहां प्रथम पिण्ड दे वहां ही सब दे । ब्रह्मपुराणका वचन है कि प्रथम पिण्डसे प्रेतका शिर बनता है, दूसरेसे कान, नेत्र और नासिका, तीसरेसे कंठ, कंधे, भुजा और छाती, चौथेसे नाभि, लिंग, गुदा और पांचवेंसे जानु, जंघा, पाद तथा छठेसे

षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः॥ दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च। दशमे स्यात्तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः॥"इति। याज्ञवल्क्येन तु-'पिंडयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम्।' इत्युक्तम्। अत्र फलतारतम्यं ज्ञेयमिति विज्ञानेश्वरः। तेन त्र्यहाशौचपरत्वं देवयाज्ञिकोक्तं चिन्त्यम्। 'आशौचस्य हि ह्रासेऽपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु।' इति वचनाच्च। दिनत्रयावश्यकत्वार्थमिति हारलतादयः। शातातपः-'जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये।'. पारस्करः-'मृन्मये तां रात्रिं क्षीरोदके विहायसि निदध्युः' प्रेतात्र स्नाहीत्युदकम्, पिब चेदमिति क्षीरम्।' इदं रात्रावेवेति गौडाः। गारुडे तु-'अपक्वे मृन्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम्।' इत्युक्तम्। हेमाद्रौ पाद्मे दशाहमुक्तम्। "तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयो जलम्। सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम्॥" देवजानीये कारिकायाम्-" तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डितम्। कुर्यात्प्रदीपं तैलेन वारिपात्रं च मार्त्तिकम्॥ भोज्याद्भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत्। नामगोत्रेण संबुद्ध्या धरित्र्यां पितृयज्ञवत्॥"शातातपः-"भूलोकात्प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत्। तत्पाथेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य तु॥" अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः। भविष्ये-" प्रवृत्ताशौचतन्त्रस्तु यदि दर्शं प्रपद्यते। समाप्य

सब मर्म, सातवेंसे नाडी, आठवेंसे दाँत और लोम, नौवेंसे वीर्य, दशवेंसे पूर्णता होकर क्षुधाका नाश होता है। याज्ञवल्क्यने तो कहा है कि पिंड और अन्न अपसव्य होकर प्रेतको देने चाहियें, ऐसा कहा है। यहाँ फलको तारतम्य जानना चाहिये, यह विज्ञानेश्वर कहते हैं, इससे देवयाज्ञिकने जो तीन दिनके आशौचमें यह वाक्य लिखा है, वह निर्मूल है और यह भी वाक्य है कि अशौचकी न्यूनतामें भी दश ही पिंड दे। तीन दिनकी आवश्यकताके निमित्त यह हारलता आदि लिखते हैं। शातातपने लिखा है कि एक दिन आकाश (छायारहित स्थान) में जल रक्खे और मिट्टीके पात्रमें दूध रक्खे। पारस्करने लिखा है कि उस रात्रिमें दूध और जल मृत्तिकाके पात्रमें आकाशमें दे और यह कहे कि हे प्रेत! यहाँ स्नान कर और दूध पी। यह रात्रिमें ही दे, यह गौड कहते हैं। गारुडमें तो यह लिखा है कि कच्चे मिट्टीके पात्रमें तीन दिन दूध दे। हेमाद्रिमें तो पद्मपुराणके वाक्यसे दश दिनतक दूध देना लिखा है कि इससे सब तापोंकी शांति और मार्गके श्रमनाशकके अर्थ दश राततक आकाशमें दूध तथा जल रक्खे। देवजानीयमें कारिका लिखी है कि वहां प्रेतके हितके निमित्त दश रात्रितक तेलका अखण्डित दीप और मृत्तिकाका जलपात्र दे और भोजनके समय भोजनके पदार्थमेंसे एक मुट्ठी अन्न नाम गोत्र और संबोधनसे भूमिपर अपसव्य होकर रख दे। शातातपने लिखा है कि भूलोकसे प्रेतलोकमें जानेके लिये श्राद्ध करे, वही मृतकके मार्ग चलनेमें प्राप्त होता है। अब यदि दश दिनके मध्यमें अमावस्या आ जाय तो उसका निश्चय कहते हैं-भविष्यपुराणमें लिखा है कि यदि अशौचके मध्यमें अमावस आ जाय तो जब

चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाचरेत् ॥" ऋष्यशृङ्गः-"आशौचमन्तरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम्। समाप्तिं प्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः ॥" पैठीनसिः-"आद्ये-न्दावेव कर्तव्या प्रेतपिण्डोदकक्रिया। द्वितीन्दवे तु कुर्वाणः पुनः शावं समश्नुते ॥" मातापित्रोस्तु श्लोकगौतमः-" अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत्। पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डान् जलाञ्जलीन् ॥" इदमपि त्र्यहमध्ये दर्शपाते। तदूर्ध्वं दर्शे तु पित्रोरपि तन्त्रं समाप्यमेव।" पित्रोराशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापयेत्। तावदे-वोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत् त्र्यहात्परम् ॥"इति गालवोक्तेः। अन्येषां तु त्र्यहमध्येऽपि समाप्तिरिति पराशरमाधवीये निर्णयामृते चोक्तम्। कालादर्शेऽपि-" दर्शो दशाह-मध्ये स्यादूर्ध्वं तन्त्रं समापयेत्। त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोर्मृतावीति विनिश्चयः ॥" मदनपा-रिजाते तु गालवीयमापदनौरसपुत्रादिविषयम्। त्र्यहोर्ध्वमपि पित्रोर्न तन्त्रसमाप्तिरि-त्युक्तम्। मदनरत्नेऽप्येवम्। मम तु देशाचाराद्व्यवस्थेति प्रतिभाति। अथास्थिसं-चयः। तत्राश्वलायनेन च कृष्णपक्षे एकादशीत्रयोदशीदर्शेषु आषाढीफाल्गुनीप्रौष्ठ-पदीभिन्नर्क्षे उक्तम्, तदाशौचमध्येऽसंभवे तदूर्ध्वं च प्रागब्दात्करणे ज्ञेयम्। आशौच-

---

और पिंड समाप्त करके स्नान मात्र करे। ऋष्यशृङ्गने कहा है कि यदि अशौचके बीचम अमावस्या आ जाय तो सब वर्णोंके प्रेतके तंत्रकी पूर्ति कर दे, यह गौतमका मत है। पैठीनसिने लिखा है कि पहले चन्द्रमामें प्रेतपिंड और जलदान करे, दूसरे चन्द्रमामें करे तो फिर शावसूतक लगता है। माता पिताके विषयमें तो श्लोकगौतमने कहा है कि दश दिनके भीतर अमावस्या आ जाय तो वहां सब पूर्ति करे और माता पिताका तो जबतक अशौच हो तबतक जलकी अं-जली दे यह भी तब है जब तीन दिनके बीचमें अमावस्या हो और उसके उपरान्त अमावस्या हो तो माता पिताका भी तन्त्र पूर्ण करने योग्य है; कारण कि माता पिताके अशौचमें यदि अमावस्या हो जाय और तीन दिन बीत गया हो तो तंत्रको पूर्ण कर दे, यह गालवने लिखा है। औरोंमें तो तीन दिनके मध्यमें भी पूर्ति हो जाती है; यह पराशरमाधवीय और निर्ण-यामृतमें कहा है। कालादर्शमें भी लिखा है कि दर्श दशाहके बीचमें हो तो उसके उपरान्त तन्त्रकी पूर्ति करे, यदि पिता माताके मरे पीछे तीन दिनके मध्यमें हो, यह निश्चय है। मदन-पारिजातमें तो गालवका वाक्य आपत्ति और औरससे भिन्न पुत्रके विषयमें है, क्योंकि तीन दिनके पीछे भी माता पिताके मरणमें दर्श हो तो तन्त्रकी पूर्ति नहीं होती, यह लिखा है। मदनरत्नमें भी इसी प्रकार है। मुझे तो यह यथार्थ प्रतीत होता है कि ऐसी व्यवस्था देशके आचारसे माननी चाहिये। अब आस्थिसंचयका कथन करते हैं-उसमें आश्वलायनने कृष्णपक्षकी एकादशी, त्रयोदशी, दर्श इन तिथियोंमें और पूर्वाषाढ, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा-भाद्रपद इनसे पृथक् नक्षत्रोंमें करना कहा है, परन्तु वह अशौचके बीचमें न हो सके और उसके

मध्ये तु मदनरत्ने संवर्तः-"प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ॥" छंदोगपरिशिष्टे तु-' अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थिसंचयनं भवेत्।' इति द्वितीये युक्तम्। विष्णुकात्यायनौ-' संचयनं चतुर्थम्' इति। माधवीये यमः-"भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मे विवर्जयेत्। वर्जयेदेकपादर्क्षे द्विपादर्क्षेऽस्थिसंचयम् ॥ प्रदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादर्क्षे विशेषतः ॥" ब्राह्मे-" चतुर्थे ब्राह्मणानां तु पञ्चमेऽहनि भूभृताम्। नवमे वैश्यजातीनां शूद्राणां दशमात्परम् ॥" दशमेऽहनीति वा पाठः। शौनकः-' पालाशेष्वस्थिदाहे च सद्यः संचयनं भवेत्।' काम्यमरणे तु तस्य त्रिरात्रमाशौचम्। द्वितीये त्वस्थिसंचय इत्युक्तम्। अङ्गिराः-"प्रेतीभूतं तथोद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत्। देवतानां तु यजनं तं शपन्त्यथ देवताः ॥" तद्विधिः स्वस्वसूत्रे भट्टकृतौ ज्ञेयः। हेमाद्रौ नागरखण्डे-" त्रीणि संचयनस्यार्थे तानि वै शृणु सांप्रतम्। यत्र स्थाने भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ एकोद्दिष्टं ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः। ततः संचयनस्यार्थे तृतीये श्राद्धमिष्यते ॥" अपरार्के मदनरत्ने च ब्राह्मे-"सद्यः शौचे तथैकाहे सद्यः संचयनं भवेत्। त्र्यहाशौचे तृतीयेऽह्नि कर्तव्यस्त्वस्थिसंचयः ॥" तत्रैव-"श्मशानदेवतायागं चतुर्थे दिवसे चरेत्।

पश्चात् वर्षसे प्रथम करनेमें जानना चाहिये। अशौचके बीचमें तो मदनरत्नमें संवर्तका वाक्य है कि पहले दिन, तीसरे, सातवें तथा नववें दिन सगोत्रियोंके संग अस्थिसंचय करे। छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, दूसरे वा तीसरे दिन अस्थिसंचय होता है, इस वाक्यसे दूसरे दिनमें भी लिखा है। विष्णु और कात्यायनका वाक्य है कि, चौथे दिन संचयन करे। माधवीयमें यमका वाक्य है कि मंगल, सूर्य, शनैश्चर और युग्म तिथि और एकपाद तथा द्विपाद नक्षत्र इनमें अस्थिसंचयन त्यागने योग्य है, और विशेषकर पिंड देनेवालेका जन्म नक्षत्र और त्रिपाद नक्षत्रोंमें भी त्यागने योग्य है। ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि ब्राह्मणोंका चौथे दिन राजाओंका पांचवें दिन, वैश्योंका नौवें दिन और शूद्रोंका दशवें दिनके पीछे अस्थिसंचय करे, वा दशवें दिन यह पाठ है। शौनकका वाक्य है कि यदि ढाकके काठमें अस्थियोंका दाह हुआ हो तो सद्यः अस्थिसंचयन प्राप्त होता है। यदि काम्य (इच्छासे) मृत्यु हो तो उसका अशौच त्रिरात्र होता है और दूसरे दिन अस्थिसंचय करे, यह कथन कर आये हैं। अंगिराका वाक्य है कि प्रेतके निमित्त जो मनुष्य देवताओंका पूजन पवित्र होकर नहीं करता, उसको देवता शाप देते हैं, उसकी विधि भट्टके रचे अपने अपने अपने सूत्रमें जाननी चाहिये। हेमाद्रिके नागरखंडमें कहा है कि संचयनके निमित्त तीन श्राद्ध हैं, उनको तू अब श्रवण कर, जहां मृत्यु हो वहां श्राद्ध करे और जहां विश्राम किया हो उस जगहमें एकोद्दिष्ट करे, फिर अस्थिसंचयनके निमित्त तीसरा श्राद्ध करना कहा है। अपरार्क और मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि सद्यःशौच और एकाह अशौचमें सद्यः अस्थिसंचयन होता है और तीन

मृन्मयेषु च भाण्डेषु कुम्भेषु रुचकेषु वा ॥ सुपक्वैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पायसैः पानकैस्तथा ॥ फलैर्मूलैर्वनोत्थैश्च पूज्याः क्रव्याददेवताः ॥ धूपो दीपस्तथा माल्यमर्घ्यं देयं त्वरान्वितैः । तत्र पात्राणि पूर्णानि श्मशानाग्नेः समन्ततः ॥ निवेदयद्भिर्वक्तव्यं तैः सर्वैरनहंकृतैः । नमः क्रव्यादमुख्येभ्यो देवेभ्य इति सर्वदा ॥ येऽत्र श्मशाने देवाः स्युर्भगवन्तः सनातनाः । तेऽस्मत्सकाशाद्गृह्णन्तु बलिमष्टाङ्गमक्षयम् ॥ प्रेतस्यास्य शुभाँल्लोकान्प्रयच्छन्तु च शाश्वतान् । अस्माकमायुरारोग्यं सुखं च ददतां चिरम् ॥ एवं कृत्वा बलीन्सर्वान्क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः । एवं दत्त्वा बलिं चैव दद्यात्पिण्डत्रयं बुधः ॥ एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम् । तृतीये तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात् ॥ ततो यज्ञियवृक्षोत्थां शाखामादाय वाग्यतः । प्रेतस्यास्थीनि गृह्णाति प्रधानाङ्गोद्भवानि च ॥ शिरसो वक्षसः पाण्योः पार्श्वाभ्यां चैव पादतः । पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्ट्य च ॥ प्रक्षिप्य मृन्मये भाण्डे नवे साच्छादने शुभे ॥ अरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थापयत्यपि । गृहीत्वास्थीनि तद्भस्म नीत्वा तोये विनिक्षिपेत् ॥ ततः संमार्जनं भूमेः कर्तव्यं गोमयाम्बुभिः । पूजां च पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूर्ववत्क्रमात् ॥" इति ॥ अथ तीर्थेऽस्थिक्षेपविधिः । तत्रैव-" तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा कदाचिज्जाह्नवीजले । कश्चित्क्षिपति सत्पुत्रो दौहित्रो वा सहोदरः ॥

दिनके अशौचमें तीसरे दिन अस्थिसंचय करना होता है। वहां ही कहा है कि श्मशान देवताओंका पूजन चौथे दिन करे और मृत्तिकाके पात्रोंमें कुम्भ और दोनोंमें भले प्रकार पके, भक्ष्य, भोज्य पायस और पानकोंसे और वनके फल, मूलोंसे क्रव्याद देवताको पूजे और धूप, दीप, माला, अर्घ्यको देकर अहंकारसे रहित होकर कहे कि क्रव्याद मुख्य देवताओंको सर्वदा नमस्कार है और जो इस श्मशानमें ऐश्वर्यवाले सनातन देवता हैं, वे हमारे निकटसे अष्टांग अक्षय बलिको स्वीकार करें और इस प्रेतको सुन्दर लोक और हमे बहुत कालतक आयु आरोग्य सुख दें। इस प्रकार बलि देकर और दूधसे छिडककर बुद्धिमान् मनुष्य मौन हो तीन पिण्ड दे। एक तो श्मशानवासी भूतोंके निमित्त, दूसरा प्रेतको और तीसरा प्रेतके मित्रोंको अपसव्य होकर आदरपूर्वक दे, फिर यज्ञके वृक्षकी शाखाको लेकर और मौन होकर प्रेतके प्रधान अंगकी अस्थियोंको ग्रहण करे और शिर, छाती, हाथ, पार्श्व और पादोंको ग्रहण करे, पश्चात् पञ्चगव्यसे स्नान कराके पाटके वस्त्रसे लपेटे और मृत्तिकाके नये पात्रमें रक्खे और वस्त्रसे ढके और वनके वृक्षके मूलमें स्थापित करे, अस्थि और भस्मको ग्रहण करके जलमें डाल दे, फिर पृथ्वीका मार्जन करके गोबर और जलसे लीपे और फूल, धूप, बलि आदिसे पीछे कहे अनुसार पूजा करनी चाहिये। अब तीर्थमें अस्थिनिक्षेपकी विधि लिखते हैं-वहां ही कहा है कि उस स्थानसे अस्थिको लेकर श्रेष्ठ पुत्र, दौहित्र वा सहोदर शनैः गंगाजलमें

मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः । अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" तत्रैव ब्रह्माण्डपुराणे-"अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कथंचित् । सद्बान्धवस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥ स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्य । ततस्तु मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपरूढाम् ॥ नमोऽस्तु धर्माय वदेत्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च । उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं स दक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात् ॥ एवं कृते प्रेतपुरःस्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ॥" यमः-"गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शुभकर्मणः । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात् ।" तथा-"अस्तंगते गुरौ शुक्रे तथा मासे मलिम्लुचे । गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥" दशाहान्तर्न दोषः। "दशाहस्यान्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति।गंगायां मरणं यादृक् तादृक् फलमवाप्नुयात् ॥" इति मदनरत्ने वृद्धमनूक्तेः । शौनकः-"शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि अस्थिक्षेपविधिं क्रमात् । आदौ ग्रामाद्बहिर्गत्वा स्नानं कुर्यात्सचैलकम् ॥ प्रोक्षयेत्पंचगव्येन भुवं मन्त्रैर्विचक्षणः॥" गायत्र्याद्यैः पंचगव्यमन्त्रैर्निखातास्थिभूमिं प्रोक्षेदित्यर्थः । "उपसर्पादिभिर्मन्त्रैः प्रार्थनं खननं तथा । मृत्तिकोद्धरणं

डाले, और जो नराधम माता तथा पिताके कुलको छोड अन्य कुलमें उत्पन्न हुएकी अस्थि ले जाता है, उसे चान्द्रायण करना चाहिये । वहां ही ब्रह्माण्डपुराणका वचन है कि माता पिताके पूर्ववंशियोंके और अपने बांधवके अस्थि जो गंगामें दया करके किसी प्रकार डालते हैं उनको तीर्थका फल प्राप्त होता है । फिर स्नान करके पञ्चगव्य, छिडककर सुवर्ण, मधु, घी, तिल मिलाकर मिट्टीके बरतनमें रखकर दक्षिण दिशाको देखता हुआ 'धर्मको नमस्कार है' यह कहता हुआ जलमें प्रविष्ट होकर 'वह प्रेत मुझपर प्रसन्न हो' यह कहकर (अस्थि) डाल दे और उठकर सूर्यका दर्शन कर ब्राह्मणोंमें मुख्यको दक्षिणा दे, इस प्रकार करनेसे प्रेतकी स्वर्गमें इन्द्रके तुल्य गति होती है । यमने कहा है कि जिन शुभकर्मियोंकी अस्थि गंगाजलमें डाली जाती हैं वे सनातन ब्रह्मलोकसे फिर नहीं आते । इसी प्रकारका वाक्य है कि गुरु और शुक्रके अस्तमें और मलमासमें गंगामें अस्थि निक्षेप न करे, यह गौतम लिखते हैं । परन्तु दश दिनके बीचमें दोष नहीं; कारण कि मदनरत्नमें वृद्धमनुने लिखा है कि दश दिनके भीतर जिसकी अस्थि गंगाजलमें पड़ती है वह गंगाजलमें मरनेके फलको प्राप्त होता है । मैं शौनक अस्थियोंके निक्षेपकी विधि क्रमसे लिखता हूँ-पहले ग्रामसे बाहर जाकर और सचैल स्नान कर मन्त्रोंसे पृथ्वीको छिडककर अर्थात् गायत्री आदि मन्त्रोंसे पञ्चगव्यसे भूमिको सिंचन कर उपसर्प आदि मन्त्रोंसे पृथ्वीकी प्रार्थना करे और खोदे, मिट्टीको उखाडे और अस्थियोंका ग्रहण करे अर्थात् उपसर्प आदि चार मन्त्रोंसे क्रमसे प्रार्थना

---

१ उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीम्सुशेवाम् ॥ ऊर्णम्रदायुवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥ ऋ० ७ । ६ । २७ ॥

चास्थ्नां ग्रहणं च यथाक्रमम् ॥" उपसर्पेति चतुर्भिर्मन्त्रैः क्रमेण प्रार्थनादि ज्ञेयम्। "स्नात्वास्थिशुद्धिं कुर्वीत एतोन्विन्द्रेतिसूक्ततः। स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा ततः स्नानं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ दश स्नानानि कुर्वीत तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः। गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ भस्म मृन्मधु वारीणि मन्त्रतस्तानि वै दश। कुशैः संमार्जयेदस्थीन्यतोदेवेति मन्त्रतः ॥ एतोन्विन्द्रं शुचीवेति नतमंह इतीति च। पावमानीमिमाग्नेश्च रुद्रसूक्तं यथाक्रमम् ॥" एतैः कुशैर्मार्जनम्। "हेमश्राद्धं ततः कुर्यात्पितॄनुद्दिश्य यत्नतः। पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम् ॥" अस्थिक्षेपांगं चेदम्। "अजिनं कम्बला दर्भा गोकेशाः शाणमेव च। भूर्जपत्रं ताडपत्रं सप्तधा वेष्टनं स्मृतम् ॥ हैमं च मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा। निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत तिलाज्येन विचक्षणः। उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ततो गत्वा क्षिपेत्तीर्थे स्पर्शदोषो न विद्यते। कृत्वा मूत्रपुरीषे च आचम्यास्थीनि धारयेत् ॥" अत्र दशदानं वैतरणीऋणमोक्षपापधेनुदानमुक्तम्। दिवोदासीये काशीखण्डे—"धनंजयोऽपि धर्मात्मा मातृभक्तिपरायणः। आदायास्थीन्यथो मातुर्गंगामार्गस्थितोऽभवत् ॥ पंचगव्येन संस्नाप्य तथा पंचामृतेन वै। यक्षकर्दमलेपेन क्षिप्त्वा पुष्पैः प्रपूज्य च ॥ आवेष्ट्य नेत्रवस्त्रेण ततः पट्टाम्बरेण च। ततः सुरसवस्त्रेण ततो माञ्जिष्ठवाससा ॥ नेपालकम्बलेनाथ मृदा

आदि जाननी। स्नान करके 'एतोन्विन्द्र०' इस सूक्तसे अस्थियोंकी शुद्धि करे और बारम्बार स्पर्श करके पञ्चगव्यसे स्नान करे और उस उस मन्त्रसे बुद्धिमान् मनुष्यको दश बार स्नान करना चाहिये और मन्त्रसे वे दश स्नान ये हैं कि गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशाका जल, भस्म, मिट्टी और जलसे फिर 'अतो देवा' इस मन्त्रसे अस्थियोंका मार्जन करे और इन मन्त्रोंसे कुशाओंसे मार्जन करे कि 'एतोन्विन्द्रं० शुचीवो० नतमंहो०' पावमानी ऋचा, 'इमं मे०' रुद्रसूक्त पढ कुशासे मार्जन करे। फिर यत्नसे हेमश्राद्ध पितरोंके निमित्त करे, फिर पिण्डदान और तिलोंसे तर्पण करना। यह तर्पण अस्थिक्षेपका अंग है। और इन सातोंसे अस्थियोंको लपेटना लिखा है कि मृगछाला, कम्बल, कुशा, गौके केश, शण, भोजपत्र, ताडपत्र और सुवर्ण, मोती, चांदी, मूंगा, नीलक इनको अस्थियोंके मध्यमें डाले अन्यथा शुद्धि नही होती, पुनः बुद्धिमान् मनुष्य तिल, घीसे होम करे। और 'उदीरता० इस सूक्तसे एकसौ आठ आहुति दे, फिर जाकर तीर्थमें फेंके तो स्पर्शका दोष नहीं लगता। मूत्र और पुरीष करने उपरान्त आचमन करके फिर अस्थियोंका धारण करे। यहां दश महादान और ऋणमोक्ष तथा पापधेनुओंका दान करना चाहिये। दिवोदासीयमें काशीखण्डमें लिखा है कि माताकी भक्तिमें तत्पर धर्मात्मा धनञ्जयने माताकी अस्थिको लेकर गंगाके मार्गमें स्थित हुए. वहां पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान कराकर चन्दनसे लीप और फूलोंसे पूजकर नेत्रवस्त्र और रेशमके वस्त्रसे लपेटकर और सुरसवस्त्रसे फिर मंजीठके वस्त्रसे फिर

चाथ विशुद्धया । ताम्रसंपुटके कृत्वा मातुरंगान्यथो व्रजेत् ॥ " व्यासः–"पट्टवस्त्रं च कौशेयं माञ्जिष्ठं श्वेतवस्त्रकम् । कम्बलं शाणपट्टं च अजिनं च तथोत्तरम् ॥ " एषां विकल्पः । अन्यश्चात्र विशेषस्त्रिस्थलीसेतौ दिवोदासीये च ज्ञेयः । संचयनोत्तरं श्राद्धमाहाश्वलायनः–' श्राद्धमस्मै दद्युः' इति । 'स्मृत्यर्थसारे–' संचयने कृते मनुष्यलोकात्प्रेतलोकं गच्छतः पाथेयश्राद्धमामेन कार्यम् ' इति । अनुपनीतस्य न संचयनम् । अथ नवश्राद्धनिर्णयः । स च पृथ्वीचन्द्रोदयेऽङ्गिराः–" प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥" शिवस्वामी–" नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः । आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥ " पञ्च एकादशाहिकं विना । 'मरणाद्विषमेषु दिनेष्वेकैकं नवश्राद्धं कुर्यादानवमात्, यदि नवमं विच्छिद्येतैकादशे तत्कुर्यात् ' इति मदनरत्ने बौधायनोक्तेः । भविष्ये–" नव सप्त विशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् । आद्यन्तयोर्वर्णयोस्तु षडित्याहुर्महर्षयः ॥ " हेमाद्रौ वृद्धवसिष्ठः–"अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्न विमुच्यते । अवाक्तु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तरति दुष्कृतम् ॥" अतः षडेव । एतान्येव विषमश्राद्धानीत्युच्यन्ते । नागरखण्डे तु–" पञ्चमे सप्तमे तद्वदष्टमे नवमे तथा । दशमैकादशे चैव नवश्राद्धानि तानि च"

नेपालके कंबलसे, फिर शुद्ध मृत्तिकासे लपेटकर और तांबेके तष्टेमें करके माताके अंगोंको ले चले । व्यासने कहा है कि पाटका, कुशाका और मंजीठका वस्त्र, श्वेतवस्त्र, कंबल, शण तथा मृगछाला इनके लपेटनेमें विकल्प है, अर्थात् चाहे जिसमें लपेटे और इसमें जो कुछ और विशेष है, वह त्रिस्थलीसेतुमें और दिवोदासीयमें लिखा है, वहां देख लेना । अस्थिसञ्चयनके उपरांत आश्वलायनने श्राद्ध लिखा है कि प्रेतको श्राद्ध दे । स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि अस्थिसञ्चयन किये उपरान्त मनुष्यलोकसे प्रेतलोकको जाते हुएके निमित्त पाथेय श्राद्ध आमान्नसे करे । जिसका उपनयन नहीं हुआ उसका सञ्चयन नहीं होता । अब नवश्राद्धको लिखते हैं–पृथ्वीचन्द्रोदयमें अंगिराका वचन है कि जो पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें, नवमें तथा ग्यारहवें दिन हो उसे नवश्राद्ध कहते हैं । शिवस्वामीने लिखा है कि आश्वलायनशाखावाले पांच नवश्राद्ध लिखते हैं और आपस्तंब छः लिखते हैं, दूसरोंमें विकल्प है, कारण कि मदनरत्नमें बौधायनने यह लिखा है कि एकादशाहके विना मृत्युसे विषम दिनोंमें नौ दिन पर्यंत एक एक श्राद्ध करे, यदि नौवें दिन न हो सके तो ग्यारहवें दिनमें श्राद्ध करे । भविष्यपुराणमें लिखा है कि वैश्य और क्षत्रियोंके नव और सात श्राद्ध क्रमसे होते हैं और पहिले पीछे (ब्राह्मण, शूद्र) वर्णोंके छः होते हैं, यह महर्षि कहते हैं । हेमाद्रिमें वृद्धवसिष्ठने कहा है कि नवश्राद्ध न मिले तो प्रेतयोनिसे छुटकारा नहीं होता और द्वादशाहसे प्रथम नवश्राद्धको प्राप्त होकर पापसे तर जाता है, इससे छः ही हैं, इनको ही विषमश्राद्ध कहते हैं । नागरखण्डमें तो यह लिखा है कि पञ्चम, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम तथा एकादश इन

इत्युक्तम् । कात्यायनस्तु-" चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा । यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥ " प्रथमे सप्तमे चैवेत्याद्यपादे व्यासपाठः । बह्वृचानां तु-'नवश्राद्धदशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून्' इत्युक्तं नारायणवृत्तौ । अथ चतुर्थदिनकृत्यम् । दीपिकायाम्-' अथ तनुयादाद्ये चतुर्थे दिने श्राद्धे पञ्चमसप्तमाष्टनवदिग्रुद्रेषु युग्मद्विजैः ।' " प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चसप्तनवस्वपि । द्वौ द्वौ पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषेष्वेकं तु विन्यसेत् ॥" एको विषमश्राद्धेऽवयवपिण्डश्चैकम् इति द्वावित्यर्थः । अत्र शाखाभेदाद्व्यवस्था । अपरार्के भविष्ये-" नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षण्मासं मासिकानि च । न करोति सुतो यस्तु तस्याधः पितरो गताः॥" वाराहे-" गतोऽसि दिव्यलोकं त्वं कृतान्तविहितात्पथः । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये । पूजयिष्यामि भोगैस्त्वामेवं विप्रं निमन्त्रयेत् ॥ " आवाहनेऽपि तत्रैव-" इहलोकं परित्यज्य गतोऽसि परमां गतिम् । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये ॥" इति । तत्रैव बह्वृचपरिशिष्टे-" अनूदकमधूपं च गन्धमाल्यविवर्जितम् । नवश्राद्धममन्त्रं च पिण्डोदकविवर्जितम् ॥ " उदकमर्घ्यः । पिण्डोदकं शुन्धंतां पितर इत्यवनेजनादि । " एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । नाग्नौकरणमन्त्रश्च एकं वात्र तिलोदकम् ॥ अनपत्येषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । स्वस्त्यस्तु विसृजेदेवं सकृत्प्रणववर्जितम् ॥ एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो न विद्यते ।

दिनके श्राद्ध नवश्राद्ध कहाते हैं । कात्यायनने लिखा है कि चौथा, पाँचवाँ, नौवाँ तथा ग्यारहवाँ इनमें जो कुछ जंतुको दिया जाय वह नवश्राद्ध कहाता है । 'पहले और सातवेंमें' यह पहले पादमें व्यासका पाठ है । बह्वृचोंके निमित्त तो यह कहा है कि दशदिनतक और नवमें दिन और छः ऋतुपर्यन्त नवश्राद्ध लिखे हैं, यह नारायणवृत्तिमें कहा है । दीपिकामें लिखा है कि इसके पीछे पहले, चौथे दिन श्राद्ध करे और पाँचवें, तीसरे, सातवें, आठवें, नौवें, दशवें तथा ग्यारहवें दिनोंमें दो दो पिंड देने, और शेष दिनोंमें एक एक पिंड दे, अर्थात् एक पिंड विषम श्राद्धका और एक पिंड शरीरके अवयवका ये दो दे, इसकी व्यवस्था शाखाके भेदसे है । अपरार्कमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि नवश्राद्ध, त्रिपक्ष, षण्मास और मासिक इन श्राद्धोंको जो पुत्र नहीं करता उसके पितर नरकमें जाते हैं । वाराहपुराणमें लिखा है कि यमके रचे हुए मार्गसे दिव्यलोकमें तू वायुरूप मनके द्वारा गया है, हे प्रेत ! तुझे मैं ब्राह्मणमें नियुक्त करता हूँ, मैं तेरा भोग्यपदार्थोंसे सत्कार करूँगा, इस प्रकार ब्राह्मणको निमन्त्रण दे । आवाहनमें भी वहां ही लिखा है कि इस लोकको त्यागकर तू परमगतिको भवनरूप मनसे प्राप्त हुआ है, मैं तुझे ब्राह्मणमें नियुक्त करता हूँ । वहाँ ही बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि अर्घ्य, धूप, गन्ध, पुष्प, मन्त्र, पिंड, जल इतने कर्मोंका नवश्राद्धमें निषेध है ।"शुन्धन्तां पितरः०"इस मन्त्रसे अवनेजन आदि दे । सब एकोद्दिष्ट श्राद्धोंमें 'स्वधा' और 'अभिरम्यताम्', अग्नौकरण, मन्त्र और तिलोदक इतने कर्म नहीं होते हैं तथा सन्तानसे हीन सबके श्राद्धमें 'स्वधा, अभिरम्यताम्' नहीं कहे जाते और ॐकारसे हीन स्वस्तिको कहकर विसर्जन करे, एकोद्दिष्टके पिण्डमें अनुशब्द नहीं होता और पितृशब्द न उच्चारण

पितृशब्दं न कुर्वीत पितृहा चोपजायते ॥" सपिण्डनात्प्रागिति हेमाद्रिः । 'तेन स्वधां प्रयुञ्जीत प्रेतश्राद्धे दशाहिके ।' इति ऋष्यशृङ्गोक्तौ दशाहिकोक्तेरेकादशाहे स्वधाप्रयोगे एवेति हारलता परास्ता । रत्नावल्याम्-"आशिषो द्विगुणा दर्भा जपाशीः स्वस्तिवाचनम् । पितृशब्दः स्वसंबद्धः शर्मशब्दस्तथैव च ॥ पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम् । तृप्तिप्रश्नश्च विकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च ॥ प्रदक्षिणा विसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा । अष्टादश पदार्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ॥" अत्र स्वधापितृनमःशब्दानां तिलोऽसीतिमन्त्रे प्रेतशब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम् । तूष्णीमर्घ्यदानम् । अमुष्मै स्वाहेति प्रेतनाम्ना पाणिहोमः । नाम्ना एकः पिण्डः । निनयनमन्त्रे ऊहः । अनुमन्त्रणादि त्वमन्त्रकम् । अभिरम्यतामिति विसर्जनम् । एवं नवश्राद्धवर्जैकोद्दिष्टेषु । 'नवश्राद्धे त्वमन्त्रकं सर्वम्' इति नारायणवृत्तिः । क्रियानिबन्धे-"उत्तानं स्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुधः । न्युब्जं तु पार्वणे कुर्यात्तस्योपरि कुशान्न्यसेत् ॥ नवश्राद्धं गृहे कुर्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा । सपिण्डीकरणान्तानि प्रेतश्राद्धानि यानि वै । तानि स्युर्लौकिके वह्नावित्याह त्वाश्वलायनः ॥" इदं संभवेऽन्नेन कार्यम् । "नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहपर्युषितं च यत् । दंपत्योर्भुक्तशेषं च

करे, यदि करे तो पितरोंको मारनेवाला होता है । यह सब वार्ता सपिंडीसे प्रथम होनी चाहिये, ऐसा हेमाद्रिने कहा है । इस दश दिनतकके श्राद्धमें स्वधा और प्रेतशब्द उच्चारण करे, इस ऋष्यशृंगके वाक्यमें दशाहिक कहनेसे एकादशाहमें स्वधाशब्दका प्रयोग होता है इस वाक्यसे यहाँ हारलता परास्त होती है । रत्नावलीमें कहा है कि आशीर्वाद, द्विगुण कुशा, जप, स्वस्तिवाचन, पितृशब्द, अपना सम्बन्ध और शर्मशब्द, पात्रोंका आलम्भ, अवगाह, उल्मुक, उल्लेखन, सकृदाच्छिन्न[1] कुशा, तृप्तिप्रश्न, विकिर, शेषका प्रश्न, प्रदक्षिण, विसर्जन और सीमाके अन्ततक जाना ये अठारह पदार्थ प्रेतश्राद्धमें त्यागने चाहिये । इस श्राद्धमें 'स्वधापितृनमः' शब्दसे, 'तिलोसि'इस मन्त्रसे,प्रेतशब्दके ऊहसे वा मौन हो तिलोंको डाल दे और मौन हो अर्घ दे और 'अमुष्मै स्वाहा' कहकर प्रेतके नामसे हाथमें हवन करे, नाम लेकर एक पिण्ड दे । निनयनके मन्त्रमें ऊह करना चाहिये, अनुमन्त्रण आदि विना मन्त्रके करना,'अभिरम्यताम्'कहकर विसर्जन करना । ऐसे ही नवश्राद्धसे भिन्न एकोद्दिष्टोंमें जानना, नवश्राद्धमें तो विना मन्त्र सब होता है, यह नारायणवृत्तिमें कहा है । क्रियानिबन्धमें कहा है कि बुद्धिमान् मनुष्यको एकोद्दिष्टमें सदा सीधा पात्र रखना चाहिये और पार्वणमें औंधा करना चाहिये और उसके ऊपर कुशा रख दे, नवश्राद्ध जहां पत्नी और अग्नि हो वहां करे । सपिंडीतक जितने प्रेतश्राद्ध हैं वे सब लौकिक अग्निमें होते हैं, यह आश्वलायनने लिखा है । यह संभव हो तो अन्नसे करना चाहिये । आंगिराका लिखा वाक्य है कि नवश्राद्धका शेष, घरका बासी अन्न, स्त्री पुरुषके भोजनका शेष इनको कभी भोजन न

---

१ आदिशब्देन सकृदाच्छिन्नकुशास्तरणं ज्ञेयम् । " न सकृदाच्छिन्नकुशाः किन्तु समूलाः कुशाः " इति हेमाद्रौ भृगुस्मरणात् ।

न तद्भुञ्जीत कर्हिचित्॥" इत्यङ्गिरोवचनलिङ्गात् । 'द्वाभ्यां तदा तु कृच्छ्राभ्यां शुद्धिः स्यात्तु विवेकिनाम् । ' इति ब्राह्मे उक्तम् । विघ्ने तु निर्णयामृते कण्वः-" नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तारितं भवेत् । तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥" हेमाद्रौ गालवः-"शावे तु सूतकं चेत्स्यान्निशायां च मृतौ तथा । नवश्राद्धानि देयानि यथाकालं यथाक्रमम् ॥" निशायामाशौचान्ते द्व्यहवृद्धौ । अन्वारोहणे तु-"नवश्राद्धानि सर्वाणि सापिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥" आशौचान्तदिने कार्यमुक्तं ब्राह्मे-"यस्ययस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं करोत्यपि ॥ समाप्य दशमं पिण्डं प्रेतस्पृष्टे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ॥ श्मश्रुलोमनखानां च यत्त्याज्यं तज्जहात्यपि । गौरसर्षपकल्केन तिलकल्केन संयुतम् ॥ शिरःस्नानं ततः कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्यतः । वृषभं गां सुवर्णं च स्पृष्ट्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥" क्रियानिबन्धे गृह्यकारिकायाम्-"अत्र पिण्डत्रयं दद्युस्तत्सखिभ्यस्तथादिमम् । प्रेताय मध्यमं तद्वत्तृतीयं च यमाय वै ॥" तथा-" कर्त्रात्र प्रार्थिताः सन्तो ज्ञातिसंबन्धिबान्धवाः । दद्युरभ्यङ्गतः पूर्वं त्रींस्त्रीन्धर्मोदकाञ्जलीन्॥पूर्ववन्नामगोत्राभ्यां नियमो नेह कश्चन॥" मदनरत्ने विष्णुहारीतौ-'आशौचान्तेकृतश्मश्रुकर्माणस्तिलकल्कैःसर्षपकल्कैर्वा स्नाताः

करे । ज्ञानियोंकी तो दो कृच्छ्रोंसे शुद्धि होती है, यह ब्रह्मपुराणमें लिखा है । यदि विघ्न हो जाय तो निर्णयामृतमें कण्वका वचन है कि जिस नवश्राद्ध वा मासिकमें विघ्न हो जाय तो उसे उत्तरश्राद्धके तंत्रसे करना चाहिये । हेमाद्रिमें गालवका वाक्य है कि मृतकमें सूतक हो जाय और रात्रिमें मरण हो जाय तो नवश्राद्धको समय और क्रमके अनुसार करे,रात्रिमें कहनेका आशय यह है कि अशौचके अन्तमें दो दिनकी वृद्धिमें जानना । सती होनेमें तो सब नवश्राद्ध और सपिंडी भिन्न भिन्न होती है तथा एक वृषोत्सर्ग और एक ही गोदान होता है । आशौचके अन्त्यदिनका कार्य ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि जिस जिस वर्णका जो जो पिछला दिन होता है, वह उस दिन वस्त्र और घरकी पवित्रता करता है, दशम पिंडको देकर प्रेतके स्पर्श किये कपडोंको अन्त्यज और आश्रितोंको देकर स्नान करे।डाढ़ी,मूंछ,बाल, नख इनमें जो त्यागने योग्य हो उसका भी त्याग करे, श्वेत सरसों वा तिलकी खलसे शिरको धोकर और जलसे आचमन करके और तूर्ष्णी होकर बैल, गौ तथा सुवर्णका स्पर्श करके मनुष्य पवित्र होता है । क्रियानिबंधमें गृह्यकारिकाका वाक्य है कि इसमें तीन पिंड दे,प्रथम पिंड उसके सखाओंको, दूसरा प्रेतको और तीसरा यमको दे । ऐसे ही वाक्य है कि कर्ताकी प्रार्थनासे सम्बन्धी, ज्ञाति और बान्धव उबटनसे प्रथम तीन तीन अंजलि धर्मजलकी दे और पूर्वके तुल्य नाम गोत्रका उच्चारण करे, इसका यहां कोई नियम नहीं है । मदनरत्नमें विष्णु और हारीतके कहे वाक्य हैं कि अशौचके पीछे मुण्डन कराकर तिल

शुक्लवाससो गृहं प्रविशेयुस्तत्र शान्तिकं कृत्वा ब्राह्मणपूजनं कुर्युः' इति । देवलः–"दश-मेऽहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च ॥" अपरार्के बृहस्पतिः–' नवमे वाससां त्यागो नखरोम्णां तथान्तिमे ।' तत्रैव व्यासः-'आशौचान्त्यदिने क्षौरं जनन्यां च गुरौ मृते ।' एतत्प्रेताल्पवयसामित्याहापस्तम्बः । 'अनुभाविनां च परिवापनम्' इति विज्ञानेश्वररत्नाकरादयः । अनुभाविनः कनिष्ठाः। ' आशौचमनुभवतां पुंसां सर्वाशौचे तु मुण्डनम् । ' " आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च । बन्धमोक्षमखदीक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु ॥" इति रत्नमालोक्तेर्जननाशौचेऽपीति शुद्धितत्त्वादयः । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । परं शिखावर्ज्यम् । 'केशश्मश्रुनखलोमानि वापयीत शिखावर्ज्यम्' इति गोभिलोक्तेः । यत्त्वापस्तम्बः–'न समावृत्ता वपेयुरन्यत्र विहारात्' इत्येके । विहारो दर्शादियागः । तेन विना समावृत्ता गृहस्था न वपेयुरित्यर्थः । यच्च–'वृथा छिनत्ति यः केशास्तमाहु-र्ब्रह्मघातिनम्' इति, तत्–'केशश्मश्रुधारयतामग्र्या भवति संततिः ।' इति दानधर्मोक्तं काम्यपरम् । अनुभाविनः पुत्रादय इत्येके । ' पुत्रः पत्नी च वपनं कुर्यादन्ते यथा-

---

वा सरसोंकी खलसे स्नान कर और श्वेत वस्त्रोंको धारण करके घरमें प्रवेश करे, वहाँ शांति करके ब्राह्मणोंका सत्कार करे । देवलने लिखा है कि दशवें दिन ग्रामसे बाहर स्नान करे और वहाँ वस्त्र, केश, श्मश्रु तथा नखका त्याग करे । अपरार्कमें बृहस्पतिका कथन है कि नवमें दिन वस्त्रोंका त्याग और पिछले दिन नख और रोमोंका त्याग करे । वहाँ ही व्यासका वचन है कि माता और गुरुकी मृत्यु होनेपर अशौचके अन्त्यदिनमें हजामत बनवावे, यह भी थोड़ी अवस्थाके प्रेतोंमें लेख है, यह आपस्तम्बने लिखा है । अनुभावियों (छोटों) का तो मुण्डन होता है, यह विज्ञानेश्वर, रत्नाकर आदिका मत है । जिनको अशौच हो उनका मुण्डन सब अशौचमें होता है, अपने राजाकी आज्ञा, द्विजातियोंका विवाह, मरण और सूतक, बन्धनसे मुक्ति (छूटना), यज्ञकी दीक्षामें और सब अमावस्यामें क्षौर कराना इष्ट है, इस रत्नमालाके वाक्यसे जन्मके अशौचमें भी मुण्डन होता है, यह शुद्धितत्त्वआदि लिखते हैं । यहाँ देशाचारसे व्यवस्था जाननी, परन्तु मुंडन शिखाको छोड़कर करना, कारण कि गोभिलने लिखा है कि केश, डाढ़ी, लोम तथा नखको शिखा त्यागकर मुड़वावे । जो आपस्तंबने लिखा है कि समावृत्त विहार (दर्शआदि यज्ञ) को छोड़कर मुंडन करे, इससे यह अर्थ है कि उसके विना गृहस्थ मुण्डन न करावें । जो वृथा केशोंका छेदन करता है उसको ब्रह्महत्यारा कहते हैं, यह वाक्य जो केशश्मश्रु धारण करते हैं उनकी सन्तान मुख्य होती है, इस दानधर्ममें कहा हुआ काम्यमें है । कोई यह लिखते हैं कि अनुभावी पुत्र आदि होते हैं; कारण कि

विधि । पिण्डदानोचितोऽन्योऽपि कुर्यादित्थं समाहितः ॥" इत्यपरार्के व्यासोक्तेः । यत्तु मिताक्षरायाम्—"द्वितीयेऽहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः। तृतीये पञ्चमे वापि दशमे वा प्रदानतः ॥" इति । 'आप्रदानतः' इति चतुर्थादीनि । तत्प्रथमदिने संभवे ज्ञेयम् । "अलुप्तकेशो यः पूर्वं सोऽत्र केशान्प्रवापयेत् । द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमेऽपि वा ॥ यावच्छ्राद्धं प्रदीयेत तावदित्यपरं मतम् ॥" इति माधवीये मदनरत्ने च बौधायनोक्तेः । मदनपारिजाते तु दशमे प्रथमे च समुच्चय उक्तः । यत्तु—'दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत् ।' इति, तदेकादशाहश्राद्धाङ्गविप्रनिमन्त्रणार्थं ज्ञेयम्। अथैकादशाहनिर्णयः । मनुः—"विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधैः । वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥" शुद्धितत्त्वे देवलः—"अघाहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः। आशौचाद्द्विज मुच्यन्ते ब्राह्मणांन्स्वस्ति वाच्य च ॥" याज्ञवल्क्यः—'आद्यमेकादशेऽहनि ।' क्षत्रियादेराशौचेऽप्येकादशेऽह्नि श्राद्धं कार्यम् । "आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः" इति हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः। पैठीनसिः—"एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक्पृथक् ॥" यत्तु मरीचिः—"आशौचान्ते ततः सम्यक्

अपरार्कमें व्यासने कहा है कि पुत्र और पत्नी अशौचके पीछे यथाविधि मुण्डन करावें, और भी पिंड देनेयोग्य मनुष्य सावधानीसे मुण्डन करावें । जो मिताक्षरामें लिखा है कि दूसरे दिन प्रयत्नसे क्षौरकर्म करे वा पिण्डदानपर्यन्त तीसरे, पांचवें, दशवें दिन करें । पिण्डदान-पर्यन्त करना तब है जब पहिले दिन न हो सके; कारण कि माधवीय और मदनरत्नमें बौधायनका वाक्य है कि जिसके केश पहले न मुँड़े हों वह दूसरे, तीसरे, पांचवें वा सात-वें दिन जबतक श्राद्ध दिया जाय तबतक मुण्डन करावे, यह दूसरा पक्ष है । मदनपारिजा-तमें तो दशवें और प्रथम दिन समुच्चय लिखा है । और जो यह कथन है कि दशवें पिंडको देकर रात्रिशेषमें शुद्ध होता है वह एकादशाह श्राद्धके अंग ब्राह्मणनिमंत्रणार्थ जानना चाहिये । अब एकादशाहका कथन करते हैं—मनुने लिखा है कि ब्राह्मण जलके छूनेसे, क्षत्रिय वाहन तथा आयुधोंके छूनेसे, वैश्य कोड़े वा रस्सियोंके छूनेसे और शूद्र क्रिया करनेसे शुद्ध होता है । शुद्धितत्त्वमें देवलने लिखा है कि पापके दिन बीतनेपर भले प्रकार स्नान, मंगल और स्वस्तिवाचन करनेसे ब्राह्मण अशौचसे छूट जाते हैं । याज्ञवल्क्यने कहा है कि एकादशाहको आद्यश्राद्ध होता है । क्षत्रियआदिको तो अशौचमें भी आद्यश्राद्ध करना चाहिये; कारण कि हेमाद्रिमें शंखने लिखा है कि अशुद्ध मनुष्य भी एकादशाहके दिन आद्यश्राद्ध करे, तो कर्ताकी श्राद्ध करनेके समयमें पवित्रता होती है और फिर वह अशुद्ध हो जाता है । पैठीनसिने कहा है कि एकादशाहका जो श्राद्ध है वह सामान्य वर्णन किया है और सूतक तो चारों वर्णोंका भिन्न भिन्न है । जो मरीचिने लिखा है कि अशौचके पीछे भले प्रकार पिंडदान समाप्त होता है, फिर

पिण्डदानं समाप्यते । ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥" इति, तत्सर्ववर्णानां दशाहाशौचपरम् । यत्तु विष्णुः-'अथाशौचापगमः' इति । यच्च गौडग्रन्थे हारीतः-'श्वोभूते एकोद्दिष्टं कुर्यात्।' यच्च बैजवापः-'ऊर्ध्वं दशम्या अपरेद्युः' इति, तद्विप्रविषयम् । एतेन दशमपिण्डोत्कर्षपक्षे अवयवपिण्डासमाप्तौ कथमेकादशाहे श्राद्धमिति मूर्खोक्तिः परास्ता । वचनादाशौचमध्ये इव तत्राप्यविरोधात् । भविष्ये-"एकादशभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादेकादशेऽहनि । भोजनं तत्र वैकस्मै ब्राह्मणाय महात्मने ॥" यत्तु मात्स्ये-"एकादशेऽहनि तथा विप्रानेकादशैव तु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान् ॥" इति । तद्रुद्रगणश्राद्धपरमिति मदनपारिजातः । गौडास्त्वस्मद्वचनात्क्षत्रियादीनामाशौचान्त एवेत्याहुः । रामायणेऽपि-"समतीते दशाहे तु कृतशौचो यथाविधि । चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च ॥" द्वादशाहेन निर्वर्त्य त्रयोदशाहश्राद्धं त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयं सपिण्डनपाथेयादि । क्षत्रियाणां द्वादशाहाशौचे त्रयोदशे महैकोद्दिष्टं चतुर्दशे सपिण्डनम् । द्विविधवाक्यादेकादशाहाशौचान्तयोर्विकल्प इत्येके । सद्यःशौचादौ युद्धहतादेरेकादशाहः ।

श्राद्ध करना सब वर्णोंमें यह विधि लिखी है परन्तु यह तब है जब सब वर्णोंमें दश दिनका अशौच माना जाय । जो विष्णुने लिखा है कि अब अशौच दूर हुआ और जो गौडग्रन्थमें हारीतका वचन है कि प्रातःकाल होनेपर एकोद्दिष्ट करे तथा जो बैजवापने लिखा है कि दशमीसे ऊपर अपरदिनमें करे, यह ब्राह्मणके विषयमें है, इससे जब दशपिण्ड करनेका श्रेष्ठ पक्ष है, अंगपिण्डोंकी पूर्ति न होनेपर एकादशाहमें श्राद्ध किस प्रकार होगा ? यह मूर्खोंका कथन परास्त हुआ, कारण कि वाक्यसे अशौचमध्यमें तुल्य, वहां भी करनेमें विरोधकी प्राप्ति नहीं है । भविष्यपुराणमें लिखा है कि एकादशाहमें ग्यारह ब्राह्मणोंको वा एक महात्मा ब्राह्मणको भोजन देना चाहिये । जो मत्स्यपुराणमें लिखा है कि एकादशाहके दिन ग्यारह ब्राह्मणोंको और क्षत्रियादि सूतकके अन्तमें विषम ब्राह्मणोंको भोजन करावे, वह रुद्रगण श्राद्धपरक है, यह मदनपारिजातमें लिखा है । गौड तो यह लिखते हैं कि इस पूर्वोक्त वाक्यसे क्षत्रिय आदिको अशौचके पीछे ही ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये । रामायणमें भी लिखा है कि दश दिनके बीतनेपर शास्त्रोक्तविधिसे शौच करनेके उपरान्त द्वादशिक और त्रयोदशिक श्राद्ध किया । द्वादशिकपदसे बारह दिन बीतनेपर श्राद्धका ग्रहण करना और त्रयोदशिक पदसे चौदह १४ दिनमें करनेयोग्य सपिण्डी पाथेय ग्रहण करते हैं । क्षत्रिय आदिके द्वादशाह अशौचमें तेरह दिनमें महैकोद्दिष्ट होता है, और चौदहवें दिनमें सपिण्डी । दोनों प्रकारके वाक्योंके मिलनेसे एकादशाह अशौच और दूसरे अशौचोंका विकल्प है, 'यह कोई

---

१ सब प्रेतोंके निमित्त दशपिण्ड होते हैं, राजाका दशवां पिण्ड बारहवे दिनमें, वैश्यका पन्द्रहवें दिन और शूद्रका दशवां पिण्ड मासकी पूर्तिमें होता है यह आदिपुराणमें लिखा है ।

अन्येषामाशौचान्ते इति वयम् । कौर्मे-" एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः । द्वादशे वाह्नि कर्तव्यमनिन्द्येऽप्यथवाहनि ॥" निन्द्यं प्रेतक्रियाकालयुक्तम् । एकादशे तु न निषेध इत्युक्तं प्राक् । बृहस्पतिः-" वस्त्रालंकारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम् । गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे तदर्पयेत् ॥ श्रोत्रिया भोजनीयास्तु नव सप्त त्रयोदश । ज्ञातयो बान्धवा निःस्वास्तथा चातिथयोऽपरे ॥" देवयाज्ञिकनिबन्धे-"एकादशसु विप्रेषु प्रेतमावाह्य भोजयेत् । तत्राद्याय च शय्यादि दद्यादाद्यमिति स्मृतम् ॥" विष्णुः-' एकवन्मन्त्रानूहेदेकोद्दिष्टे । ' बहुवचनान्तानेकवचनान्तान्वदेदित्यर्थः । एतत् दृष्टार्थत्वे । अस्य विघ्ने गौणकालमाह हेमाद्रौ बौधायनः-" एकोद्दिष्टं श्व एव स्याद्द्वादशेऽहनि वा पुनः । अत ऊर्ध्वमयुग्मेषु कुर्वीताहस्सु शक्तितः ॥ अर्धमासेऽथवा मासि ऋतौ संवत्सरेऽपि वा ॥"इति।

लिखते हैं। हम तो यह कथन करते हैं कि सद्यःशौच आदिमें युद्धमें मरे आदिका ग्यारहदिनमें और अन्योंका अशौचके पीछे होता है। कूर्मपुराणका वाक्य है कि ग्यारहवें दिनमें प्रेतके निमित्त भावसे बारहवें दिन वा श्रेष्ठ दिनमें श्राद्ध करे, निन्द्य दिन प्रेताक्रियाके वर्णनमें लिख आये हैं। ग्यारहवें दिनका तो निषेध है, यह पहले कह आये हैं। बृहस्पतिने लिखा है कि पिताके वस्त्र, भूषण, शय्या, वाहनआदिका गन्धपुष्पोंसे पूजन कर श्राद्धके भोक्ता ब्राह्मणको दे दे और नौ, सात, तेरह श्रोत्रिय (वेदपाठी ब्राह्मण) जिमावे, ज्ञाति बान्धव निर्धन अतिथियोंको भी जिमावे। देवयाज्ञिकनिबन्धमें कहा है कि ग्यारह ब्राह्मणोंमें प्रेतका आवाहन करके जिमावे, उनमें प्रथमको शय्याआदि दे, यह आद्यश्राद्ध [१] लिखा है। विष्णुने कहा है कि एकोद्दिष्टमें मन्त्रोंमें एकवचनका ऊह करना अर्थात् बहुवचनांत पदोंको एकवचनांत पढना चाहिये परन्तु यह दृष्टार्थ (इस लोकके निमित्त) है। इसमें विघ्न होनेपर गौण काल हेमाद्रिमें बौधायनके वचनसे लिखा है कि इस प्रकार एकोद्दिष्ट बारहवें दिन होता है, इससे आगे शक्ति न हो तो विषमदिनोंमें करे, वा आधे महीने या मास, ऋतु (२ दो महीने) या, वर्षमें करे।

---

१ वायवीय प्रेतदेह प्रायः एक वर्षतक रहता है। उसके आरंभके निमित्त शरीरारंभके धर्म किये जाते हैं। पितृत्वप्राप्तिमें प्रतिबन्धक उस देहके भोग्यदुःख भोगनाश और उस अधर्मके नाश निमित्त दुःख भोग होता है, इसके निमित्त प्रेतदेहकी आवश्यकता है। और उसकी उत्पत्तिके निमित्त पिण्डदान किया जाता है, इससे अवश्य प्रेतदेहकी उत्पत्ति होती है। एकादशाहादि श्राद्धकी पूर्ति होनेसे प्रेतका देह पूर्ण हो जाता है। यम कहते हैं कि जिसको सोलह श्राद्ध न दिये गये हों उसका पिशाचत्व सौ श्राद्धोंसे भी नहीं जाता। एकादशादिश्राद्धोंसे मृतककी तृप्ति होती है, वर्षकी पूर्तिमें वह पितरोंके स्थानको प्राप्त होता है। इसप्रकार देवलके कथनसे आप्यायन और प्रेतत्वका परिहार है, सर्वथा पिण्डदानसे विलंब और क्लेशसे कार्य सिद्ध है, यह सिद्ध हुआ। दशम पिण्डदानसे पहले प्रेतदेहकी अनिष्पत्ति होनेसे उसकी निवृत्तिके निमित्त एकादशाहादिश्राद्धोंका अशौचमें किस प्रकार कारण होगा ?

तत्रैव लघुहारीतः–"एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पाकेनैव सदा स्वयम् । अभावे पाकपात्राणां तदहः समुपोषणम् ॥"गोभिलः–"ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथवा । पुनश्च भोजयेदेकं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥" एतदाद्यमासिकाद्याब्दिकयोः सिद्ध्यर्थमिति भट्टाः । तेन महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धाद्भिन्नमेव । अत एवाद्यं सर्वैकोद्दिष्टप्रकृतिभूत-मेकादश इति विज्ञानेश्वरः । अन्ये त्वाद्यमासिकाब्दिकयोः । 'आद्यमेकादशेऽहनि इति नियमादभेदमाहुः । द्वयोस्तन्त्रत्वबाधार्थं गालवीयमित्यन्ये । युद्धहतादौ तु हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये पैठीनसिः । "सद्यःशौचेऽपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेऽहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिषु ॥" एवमेकादशाहादौ । अतोऽत्र द्वितीये ह्येकादशाहं वदन् ढौण्डुः शूलपाणिः स्मार्तगौडश्च परास्तः । एतेन 'आद्यमेकादशेऽहनि ' इत्याशौचानन्तरदिनपरमिति विष्णूक्तेः । प्रागुक्तशंखादिवचनानां चानाकर-त्वादिति वदन्तः कल्पतरुवाचस्पतिप्रमुखाः सर्वमहानिबन्धविरोधादुपेक्ष्याः । उशनाः–"त्र्यहाशौचेऽपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेऽहनि । अतीतविषये सद्यस्त्र्यहोर्ध्वं वा तदिष्यते ॥" याज्ञवल्क्यः–"एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौक-रणरहितं त्वपसव्यवत् ॥ उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने । अभिरम्यता-

---

वहां ही लघुहारीतका वचन है कि एकोद्दिष्ट श्राद्ध सदा पाक बनाकर स्वयं करे, पाकके पात्र न मिलें तो उस दिन व्रत करे । गोभिलने कहा है कि आद्य श्राद्धमें ब्राह्मणभोजन करावे वा अग्निमें होम करे, फिर एक ब्राह्मण जिमावे, इस प्रकार दो आवृत्ति होती हैं । यह प्रथम मासिक और वार्षिक श्राद्धोंकी सिद्धिके निमित्त है, यह भट्ट लिखते हैं । इससे यह एकोद्दिष्ट षोडश श्राद्धसे भिन्न है, इसीसे आद्यश्राद्ध एकोद्दिष्ट प्रकृतिभूत एकादश जानना, यह विज्ञानेश्वर कहते हैं, और तो आद्यमासिक और आब्दिकको कहते हैं । 'आद्यमेकाद-शेऽहनि' इस नियमसे अभेद कहते हैं । कोई तो गालवीयमें दोनोंके तन्त्रत्वबाधके निमित्त कहते हैं । युद्धमें मृतक हुए आदिके निमित्त तो हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें पैठीनसिका वचन है कि सद्यःशौचमें भी प्रेतको एकादशाह दिनमें श्राद्ध आदि दे; कारण कि श्राद्ध शय्या आसन आदि देनेके निमित्त उसका वही दिन है और इसी प्रकारका एकादशाह आदिमें जानना । इससे यहाँ दूसरे दिन एकादशाहको लिखते हुए ढौंडु, शूलपाणि और स्मार्त गौड परास्त हुए, इससे प्रथमश्राद्ध ग्यारहवें दिन होता है, यह वाक्य अशौचके उपरान्त दिनका बोधक है इस विष्णुके कथनसे पूर्वोक्त शंखादिकके वचनोंको तिरस्कार करते हुए कल्पतरु वाचस्पति आदि सब बड़े बड़े ग्रन्थोंके विरोध होनेसे ये वाक्य उपेक्षा करनेके योग्य हैं । उशनाने लिखा है कि तीन दिनके अशौचमें भी आद्यश्राद्ध ग्यारहवें दिनमें करना और बीते हुए अशौचमें सद्यः वा तीन दिनके उपरान्त आद्यश्राद्ध कहा है । याज्ञवल्क्यने लिखा है कि एकोद्दिष्ट देवसे हीन और एक अर्घ, एक पवित्रक, आवाहन और अग्नौकरणसे हीन और अपसव्यसे होता है । अक्षय्यके स्थानमें "उपतिष्ठताम्" कहे और ब्राह्मणोंके विसर्जनमें

मिति वदेयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥" इति । अग्नौकरणनिषेधोऽन्यपरः बह्वृचानां सर्वैकोद्दिष्टेषु तद्भवत्येवेत्युक्तं प्राक् । स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति कात्यायनः । प्रथमे पात्रे संस्रवानित्यस्य तृतीयेनापिधानस्य च बाधान्न पात्रन्युब्जतेति शूलपाणिः । प्रचेताः-'नात्र पात्रालम्भो नाशिषः प्रार्थयेत् । 'अत्र विशेषो हेमाद्रौ वाराहे-"श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखच्छेदं तथैव च । स्नपनाभ्यञ्जनं दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम् ।" तथा-"उपवेश्यासने भद्रे छत्रं तत्र प्रकल्पयेत् । पश्चादुपानहौ दद्यात्सर्वाण्याभरणानि च ॥" विष्णुः-'दक्षिणान्तं श्राद्धमुक्त्वा दत्ताक्षय्योदकेषु चतुरंगुलपृथ्वीस्तावदन्तरालास्तावदधःखाता वितस्त्यायतास्तिस्रः कर्षूः कुर्यात् । कर्षूणां समीपेऽग्निमाधाय परिस्तीर्यैकैकस्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय यमायाङ्गिरस्वते । '.इति स्थानत्रये प्राग्वत्पिण्डनिर्वपणं दधिमधुघृतमांसैः कर्षूत्रयं पूरयित्वैतत्ते इति जपेत् । शेषं नवश्राद्धवत् । अत्र साग्नेरप्यन्ते वैश्वदेव इत्युक्तं प्राक् । इदं दशाहकर्त्रा पुत्रेण वा कार्यमित्युक्तं क्रियानिबन्धे । गृह्यकारिकायाम्-"तिलोऽसि प्रेतदेवत्यः प्रेतं लोकान्हि नोऽन्तकम् । मन्त्रमुक्त्वा तिलानेवं प्रक्षिपेदर्घ्यपात्रतः ॥ दक्षिणामुदकुम्भं च सान्नं दत्त्वा तथैव गाम् । तस्मै दद्या-

---

"अभिरम्यताम्" कहना चाहिये और ब्राह्मण"अभिरताः स्मः"ऐसा कहें और तृप्तिके पूछनेमें (स्वदित) कहे, यह कात्यायनने लिखा है । अग्नौकरणका निषेध औरोंके निमित्त है, बह्वृचोंके यहां तो सब एकोद्दिष्टोंमें अग्नौकरण होता है, यह पहले कथन कर आये । पहले पात्रमें संस्रव रक्खे, इसका तीसरेसे बाध हो तो पात्रोंको औंधा न करे, यह शूलपाणि लिखते हैं । प्रचेताने कहा है कि एकोद्दिष्टमें पात्रोंका स्पर्श और आशीर्वादकी प्रार्थना नहीं होती । इसमें विशेष हेमाद्रिमें वाराहपुराणके वाक्यसे लिखा है कि श्मश्रुकर्म (क्षौर) तथा नखोंका छेदन करे, और स्नान और अभ्यंग ब्राह्मणको विधिसे दे । इस प्रकारके ही वाक्य हैं कि उत्तम आसनपर बैठाकर छत्री दे और पीछेसे जूता और सब भूषण दे । विष्णुने कहा है कि दक्षिणापर्यंत श्राद्धको करके जहां अक्षय दिया वहां चार अंगुल पृथ्वीके अन्तरसे और उतनी ही नीचे खोदकर वितस्तिभर चौड़ा तीन कर्षू करे और कर्षूके निकट तीनि अग्नि स्थापन करके कुशा फैलाय एक एकमें तीन आहुति दे कि-सोमाय पितृमते स्वधा १, नमोऽग्नये कव्यवाहनाय २, यमायांगिरस्वते ३ । तीनों स्थानोंमें पूर्वके समान पिंड दे, दधि,मधु, घृत और मांसोंसे तीनों कर्षूओंको पूर्ण कर ' यह तुम्हारा है' ऐसा उच्चारण करे । शेष कर्म नवश्राद्धके तुल्य करे । यहां साग्निको भी अन्तमें वैश्वदेव है, यह पहले लिख आये हैं, वा इसको दशाहका कर्ता पुत्र करे, यह क्रियानिबन्धमें लिखा है । गृह्यकारिकामें कहा है कि 'तिलोऽसि प्रेतदेवत्यः प्रेतं लोकान् हि नोऽन्तकम्' यह मन्त्र पढ़कर अर्घपात्रसे दक्षिणकी ओर तिल डाले और अन्नसहित जलका घड़ा, दक्षिणा और गौ

भुक्तशेषं तद्भाण्डान्यपि भाजनम् ॥" विप्राभावेऽग्नावेकोद्दिष्टम् । 'अग्नौ पायसं श्रप-यित्वाज्यभागान्ते तदग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाग्नौ प्रेतमावाह्य गन्धाद्यैः संपूज्य पृथिवी ते पात्रमित्यादिनान्नं संकल्प्योदीरतामवर इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्तीभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिण्डदानादिश्राद्धं समापयेत्' इति । याज्ञवल्क्यः-'एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ।' अथ वृषोत्सर्गनिर्णयः । स च नित्यः काम्यः । " न करोति वृषो-त्सर्गं सुतीर्थे वा जलाञ्जलिम् । न ददाति सुतो यस्तु मातुरुच्चार एव सः ॥" उच्चारः पुरीषम् । " एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥" इति मत्स्यकौर्मोक्तेः । "एकादशेऽह्नि प्रेतस्य य-स्य नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥" इति षट्त्रिंशन्मते निन्दाश्रुतेः । " एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् । यमुद्दिश्योत्सृजे-न्नीलं स लभेत परां गतिम् ॥ वृषोत्सृष्टः पुनात्येव दशातीतान्दशापरान् ॥" इति देवीपुराणे भविष्यादौ फलश्रुतेश्च । अयं द्वादशाहे उक्तो भविष्ये–'चैत्र्यां वापि तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेऽह्नि वा ।' इति । विष्णुधर्मे तु मृताहेऽप्युक्तः–'विषुव-द्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च ।' इति । अयं गृहे न कार्य्यः । 'न गृहे मोचयेन्नीलं

देकर प्रेतके श्राद्धका शेष, भांड और भाजन उस ब्राह्मणको दे । यदि ब्राह्मण न हो तो अग्निमें एकोद्दिष्ट इस प्रकार करे कि अग्निमें खीर पकाकर आज्यभागके उपरान्त उसके आगे श्राद्धका प्रयोग करके अग्निमें प्रेतको आवाहन और गन्ध आदिसे पूजा करके 'पृथिवीते पात्रम्' इत्यादिमन्त्रोंसे अन्नका संकल्प कर और 'उदीरतामवर०' इन आठ ऋचाओंकी चार २ आवृ-त्तिसे बत्तीस आहुति देकर पिंडदान आदि श्राद्धपूर्ति करे । याज्ञवल्क्यने कहा है कि सपिं-डी और एकोद्दिष्ट स्त्रीके भी होते हैं । अब वृषोत्सर्ग लिखते हैं–वह नित्य और काम्य है, कारण कि मात्स्य और कौर्ममें कथन है कि सुतीर्थमें जो पुत्र जलकी अंजली और वृषो-त्सर्गको नहीं करता वह माताका उच्चार (विष्ठा) है । बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे एक भी गयामें जाय वा अश्वमेध करे वा नील वृषको छोड़े, वही पुत्र है । षट्त्रिंशत्के मतमें यह निन्दा सुनी है कि एकादशाहमें जिस प्रेतके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं होता उसको चाहे सौ श्राद्ध करो तो भी प्रेतत्व नहीं छूटता है । और देवीपुराण भविष्यआदिमें यह फल लिखा है कि जिसके निमित्त नील वृष छोड़े उसकी परमगति होती है, वृषका छोड़ना दश पिछले और दश अगलोंको पवित्र करता है । यह भविष्यपुराणमें द्वादशवें दिनमें भी कहा है कि चैत्र वा वैशाखकी तृतीयाको वा द्वादशाहको वृषोत्सर्ग करे । विष्णुधर्ममें मरनेके दिन भी लिखा है कि दोनों विषुवत् (तुलामेषसंक्रांतियों) में और बांध-वके मरणदिनमें वृषोत्सर्ग करे । इसको घरमें न करे, कारण कि कालिकापुराणमें लिखा है कि अधिक फलकी इच्छा करे तो घरमें वृषोत्सर्ग न करे । कामधेनुमें कहा है कि वर्षके भीतर

कामयन्पुष्कलं फलम् ।' इति कालिकापुराणात् । कामधेनौ—"वत्सराभ्यन्तरे पित्रो-र्वृषस्योत्सर्गकर्मणि । वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेद् ॥" तल्लक्षणं तु ब्राह्मे—"लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥" श्वेतवर्णस्य मुखादीनि श्यामानि श्यामस्य वा श्वेतानि यस्य सोऽपि नील उक्तो मात्स्यादौ । देवीपुराणे—'चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वे वा संभवतोऽपि वा।' यत्तु पठन्ति—"वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावः कथंचन । मृद्भिः पिष्टैश्च दर्भैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत् । न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं वा तत्र कारयेत् ॥" इति, तन्निर्मूलम् । तद्विधिर्हेमाद्रौ भट्टकृतौ च ज्ञेयः । अत्र देवयाज्ञिकेन वृषोत्सर्गात्पूर्वं पुरुषसूक्तेन विष्णुरूपिप्रेतोद्देशेन विष्णुतर्पणमुक्तम् । तत्र मूलं चिन्त्यम् । पारस्करः—"सव्येन पाणिना पुच्छं समालम्ब्य वृषस्य तु । दक्षिणेनाप आदाय सतिलाः सकुशास्ततः ॥ प्रेतगोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मै इति ब्रुवन् । वृष एष मया दत्तस्तं तारयतु सर्वदा ॥ सहेम सतिलं भूमावित्युच्चार्य विनिःक्षिपेत् ॥" तथा—"विधारयेन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् । न दोहयेच्च ता धेनूर्न च कश्चन बन्धयेत् ॥" स्त्रीषु विशेषः संग्रहे-"पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि । वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच्च पयस्विनीम्॥" पतिपुत्रयोः साहित्यं विवक्षितम् । अन्वारोहणेऽपि गोदानमेवेत्युक्तं प्राक् । आशौचा-

---

मातापिताके वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध न करे, किन्तु उसको अन्यत्र करे । उसके लक्षण तो ब्रह्मपुराणमें ये लिखे हैं कि जिसका रंग लाल, मुख और पूंछ पीली, खुर और सींग सफेद हों वह नीलवृष है, और जिस श्वेतके मुख आदि श्याम हों और जिस श्यामके मुख आदि श्वेत हों वह भी मात्स्य आदिमें नील वृष लिखा है । देवीपुराणमें लिखा है कि चार वा दो वा जो हो सके उतनी सुंदरी वत्सी (बछिया) हों । और जो यह लिखते हैं कि यदि वृषो-त्सर्गके समय वृषका अभाव हो तो मृत्तिका, चून वा कुशाका वृष बनाकर छोड़ दे, अथवा वृषोत्सर्ग न कर सके तो वहाँ होम करा दे; सो ठीक नहीं है, क्योंकि उसकी विधि हेमाद्रि और भट्टकृतिमें जाननी । यहाँ देवयाज्ञिकने वृषोत्सर्गसे प्रथम पुरुषसूक्तसे विष्णुका तर्पण लिखा है, उसमें मूल नहीं है । पारस्करने लिखा है कि बांये हाथसे बैलकी पूंछ पकड़े और दक्षिणसे तिल जल कुशा लेकर फिर प्रेतका गोत्र उच्चारण करके 'अमुकस्मै' (इसको) यह कहता हुआ वह वृष मैंने प्रदान किया है, यह उसको सदा तारे, यह कहकर सोने और तिलसहित जलको भूमिमें गेर दे । ऐसे ही वाक्य है कि उसको कोई बाँधे नहीं और न जोते और गौको भी कोई न दुहे और न बाँधे । और स्त्रियोंके निमित्त विशेष संग्रहमें लिखा है कि पति पुत्र जिसके दोनों विद्यमान हों वह पतिसे प्रथम मर जाय तो वृषोत्सर्ग न करे, किन्तु दूध देती गौ दे । यहाँ पति पुत्रका साहित्य (दोनों) विवक्षित है । सती होनेमें भी गोदान ही होता है, यह पहले लिख आये हैं । अशौचके मध्यमें भी वृषोत्सर्ग, आद्यमासिक शय्यादान आदिको देना, यह लिख

न्तरेऽपि वृषोत्सर्गाद्यमासिकशय्यादि दद्यादेवेत्युक्तम् । क्रियानिबन्धे स्मृत्यन्तरे– "सूतके मृतके चैव द्वितीयं मृतकं यदि । पिण्डदानं प्रकुर्वीत वृषोत्सर्गं तथैव च ॥ न हन्यात्सूतके कर्म द्वादशैकादशाहिकम् । शुद्धो वा यदि वाशुद्धः कुर्यादेवाविचारयन् ॥" इति। अथ पददाननिर्णयः । अत्र पददानमुक्तं देवजानीये गरुडे– एकादशाहं प्रक्रम्य–" तदह्नि दीयते सर्वैर्द्वादशाहे विशेषतः । पदानि सर्ववस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवतोऽप्यात्महेतवे । सुखी भूत्वा महामार्गे वैनतेय स गच्छति ॥" तथा–"आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः । भोजनं भोजनाधारो वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥"तथा–"भाजनासनदानेन मुद्रिकाभोजनेन च । आज्ययज्ञोपवीतेन पदं संपूर्णतां व्रजेत् ॥ महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् । सर्वोपस्करयुक्तानि पदान्यत्र त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे । स गच्छति परं स्थानं महाकष्टविवर्जितः ॥ त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतायैकादशेऽहनि । दातव्यानि यथाशक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत् ॥ अन्नं चैवोदकं चैवोपानहौ च कमण्डलुः । छत्रं वस्त्रं तथा यष्टिं लोहदण्डं तथाष्टमम् ॥ अग्नीष्टिकां च दीपं च तिलांस्ताम्बूलमेव च । चन्दनं पुष्पदानं चोपदानानि चतुर्दश ॥ योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् । स्वमहिम्नोऽनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात् ॥" इति।

आये हैं । क्रियानिबंधमें स्मृत्यंतरका वाक्य है कि सूतक और मृतकमें दूसरा मर जाय तो पिण्डदान और वृषोत्सर्ग करे । और सूतकमें द्वादशाहिक और एकादशाहिक कर्मको शुद्ध हो वा अशुद्ध हो; परन्तु विचारको त्यागकर अवश्य ही करना चाहिये । अब पददान लिखते हैं–देवजानीय और गरुडपुराणमें एकादशाहके प्रकरणमें लिखा है कि उस दिन और विशेष कर द्वादशाहके दिन सब वस्तु और सुन्दर तेरह पद दिये जाते हैं । जो मनुष्य मृतकके निमित्त,जीवता हुआ अपने निमित्त देता है, हे गरुड!वह महामार्गमें आंनद होकर जाता है।ऐसे ही वाक्य हैं कि आसन, उपानह, छत्री, मुद्रिका, कमंडलु, भोजन, भोजनका आधार (पात्र), वस्त्र यह आठ प्रकारकी पद लिखा है । ऐसे ही और वाक्य हैं कि भाजन, आसन, मुद्रिका, भोजन, आज्य तथा यज्ञोपवीतसे पद संपूर्ण होता है । भैंस, रथ तथा गौके दानसे निश्चय सुखी होता है । सब सामग्रियोंसे युक्त तेरह पद यहां होते हैं, जो इनको मृतकके और जीवता हुआ अपने निमित्त देता है, वह श्रेष्ठस्थानमें महाकष्टसे छूटकर गमन करता है। तेरह पद इस प्रकार प्रेतके निमित्त दशवें दिन यथाशक्ति देने, क्योंकि उससे वह प्रेत सुखी होता है । अन्न, जल, उपानह, कमण्डलु, छत्र, वस्त्र, लाठी, आठवाँ लोहदण्ड, अग्नि, ईंट, दीप, तिल, पान, चन्दन, पुष्पदान ये चौदह उपदान हैं । जो मनुष्य घोड़ा, रथ, हाथी ब्राह्मणोंको देता है वह अपनी महिमाके अनुसार उस सुखको प्राप्त होता है। इसमें मूल चिन्त्य है, अर्थात् नहीं है। अब शय्यादानकी विधि लिखते हैं–हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि इससे सालके काठकी दृढ शय्या दन्तपत्रों (कुन्दपुष्पों)से चुनी अर्थात्

अत्र मूलं चिन्त्यम् । अथ शय्यादाननिर्णयः। हेमाद्रौ भविष्ये-"तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानिकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपादिवासिताम् । तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ॥ "अत्र हरिस्थाने प्रेतम् । "उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् । ताम्बूलं कुंकुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥ दीपिकोपानहौ छत्रं चाधरासनभाजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ॥ शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकरकाद्यं तु पञ्चवर्णवितानकम् ॥" मन्त्रस्तु-"यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया ॥ शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥ यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च ॥" अर्धं तदेव । "दत्त्वैवं तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेऽपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥ विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निशामय । तेनोपभुक्तं यत्किंचिद्वस्त्रवाहनभाजनम् ॥ यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । तमेव पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा ॥ पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥" पाद्मे-"मृतकान्ते द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्यात्सलक्षणाम् । काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् ॥ संपूज्य द्विजदांपत्यं नानामणिविभूषितम् । उपवेश्य तु

बिछायी हुई और सुवर्णके पायोंसे शोभित तथा हंसके तुल्य श्वेतरुईसे ढकी और सुंदर तकियासे युक्त और आच्छादनके वस्त्रोंसे युक्त, गन्धधूपोंसे सुगन्धित शय्यापर, सुवर्णमय लक्ष्मी नारायणकी मूर्तिको स्थापित करे । यहाँ हरिके स्थानमें प्रेतको स्थापित करे, शिरकी ओर घीसे भरा कलश रक्खे और पान, कुंकुम, सहत, कपूर, अगुरु, चन्दन, दीपक, उपानह, छत्र, चँवर, आसन, भाजन इन्हें और सप्तधान्यको शय्याके पार्श्वोंमें स्थापित करे, सोते हुए मनुष्यका जो कुछ और उपकारक हो भृंगारकरक (लोटा) आदि और पांचवर्णका चंदोवा वह सब रख दे । मंत्र तो यह है कि जिस प्रकार कृष्णकी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं है वैसे ही जन्म जन्ममें मेरी शय्या अशून्य हो और जिस तरह विष्णु और शिवकी शय्या अशून्य है वैसे ही मेरी हो । इस प्रकार देकर और नमस्कार करके बिदा करे । एकादशाहमें भी यह विधि लिखी है, हे राजन् ! इसमें मेरे कहे विशेषको सुनो, प्रेतका भोगा हुआ जो वस्त्र, वाहन, भाजन हैं और जो जो उसको प्रिय था वह सब दे और उसकी ही सुवर्णकी मूर्ति शय्यापर स्थापित करे और पूजा करके यथोचित मृतशय्याका प्रदान करे । पद्मपुराणका वाक्य है कि मृतकके अन्तके दूसरे दिन सुलक्षण शय्या दे और वैसे ही फलवस्त्रसे युक्त काञ्चन पुरुषको दे, नानाभूषणोंसे शोभित ब्राह्मणी और ब्राह्मणको पूजकर और शय्यापर बैठाकर मधु

शय्यायां मधुपर्कं ततो ददेत् ॥ रजतस्य तु पात्रेण दधिदुग्धसमन्वितम् ॥ अस्थि लालाटिकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ॥ भोजयेद्द्विजदांपत्यं विधिरेष सनातनः । एष एव विधिर्दृष्टः पार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः ॥" एतत्प्रतिग्रहे तत्रैवोक्तम्–'गृहीतायां तु तस्यां वै पुनः संस्कारमर्हति ।' शय्यादानफलं भविष्ये– "स्वर्गे पुरंदरपुरे सूर्यपुत्रालये तथा ॥ सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ॥ आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ॥" इति । अथोदकुम्भदाननिर्णयः । हेमाद्रौ स्मृतिसमुच्चये–"एकादशाहात्प्रभृति घटस्तोयान्नसंयुतः । दिनेदिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ॥" लौगाक्षिः–"यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत् । मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥" उत्तरार्धे 'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ।' इति याज्ञवल्क्यपाठः । सपिण्डनापकर्षेऽस्यापकर्षे प्राप्ते बाधकमिति शूलपाणिः । तन्न । प्रकृतिविकाराभावेन तदन्तन्यायविषयत्वात् । मात्स्ये–"यावदब्दं च यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः । प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥" केचित्त्रयोदशाहमारभ्याहुस्तन्निर्मूलम् । देवयाज्ञिकः–"सपिण्डनापकर्षे संवत्सरं यावदुदकुम्भम् अर्वागेव

पर्क देना और वह मधुपर्क दही दूधसे युक्त चांदीके पात्रमें हो, शिरकी अस्थि लेकर और पीसकर खीरमें मिलाकर स्त्री पुरुषको जिमावे, यह सनातन विधि है। यही विधि पर्वतनिवासी ब्राह्मणोंमें देखी है इसके प्रतिग्रहमें वहां ही लिखा है कि ऐसी शय्याको ग्रहण करके फिर संस्कारके योग्य होता है। भविष्यपुराणमें शय्यादानका फल कहा है कि इन्द्रपुरी, स्वर्ग, यमराजकी पुरी इनमें यह जीव शय्यादानके प्रभावसे सुखपूर्वक निवास करता है और प्रलयपर्यन्त दुःखसे रहित होता है। अब जलघटके दानकी विधि लिखते हैं–हेमाद्रिमें स्मृतिसमुच्चयका लेख है कि एकादशाहसे लेकर जल और अन्नसे युक्त घटको वर्षदिनतक पुत्र प्रतिदिन दे। लौगाक्षिने कहा है कि जिसकी सपिंडी वर्षसे प्रथम होजाय उसको मासिक और जलका घट वर्षदिनतक देना, उत्तरार्द्धमें याज्ञवल्क्यका पाठ है कि उसको अन्न जलका घडा वर्षदिनतक ब्राह्मणको दे। शूलपाणि यह लिखते हैं कि सपिंडीके अपकर्षसे उसका जो अपकर्ष पाया उसका यह बाधक है, सो यथार्थ नहीं क्योंकि प्रकृतिके विकारके अभावसे तदंतन्यायका विषय नहीं है। मात्स्यका कथन है कि जो मनुष्य वर्षदिनतक क्रोधको त्यागकर अन्नसहित उदकुम्भदान प्रेतके निमित्त देता है वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है। कोई तो त्रयोदशाहसे लेकर कहते हैं, सो उचित नहीं, क्योंकि उसमें प्रमाण नहीं है। यहां देव-

दद्यात्', नोर्ध्वम् । 'प्रेतलोकगतस्यान्नं सोदकुम्भं प्रयच्छत' इति गोविन्द-राजधृतविष्णूक्तेः । "अन्नं चैव स्वशक्त्या तु संख्यां कृत्वाब्दिकावधि।दातव्यं ब्राह्मणे स्कन्धघटादौ निष्क्रयं तु वा ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना नराः । दरिद्रा दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे॥तेनापकृष्य दातव्यं प्रेतस्याप्युदकुम्भकम्॥" इति गोभिलभाष्ये स्कान्दाच्च सपिण्डनात्प्रागेव तस्य विधानादूर्ध्वं निषेधादित्याह । तन्न । उदकुम्भे पार्वणविधिनानुपपत्तेरेव व्याख्यायां मानाभावान्मिताक्षरादिविरोधाच्च । वचनं च यदि समूलं 'तदा वृद्धावपकर्षं विधत्ते । 'प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा ।' इति हेमाद्रौ शाट्यायनोक्तेः । 'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भम्' इति याज्ञवल्क्यविरोधाच्च । मदनरत्ने गौतमः-"अदैवं पार्वणं श्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् । कुर्यात्प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात्संकल्पविधिनान्वहम् ॥" अधर्मकं ब्रह्मचर्यादिनियमहीनम् । एतन्मासिकवदेकोद्दिष्टं पार्वणं कार्यम् । अपरार्कस्तु-"सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वेनोपपद्यते । पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कार्या सपिण्डना ॥" इति । लघुहारीतोक्तावपि-'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं देयं संवत्सरं द्विजे ।' इति । याज्ञवल्क्यीये तस्येत्येकत्वोक्तेः सपिण्डनोत्तरमप्येकोद्दिष्टमेवेत्याह । अत्र

याज्ञिक लिखते हैं कि सपिंडीके अपकर्षमें वर्षदिनके पहले ही उदकुम्भका दान करे, पीछे न दे क्योंकि प्रेतलोकमें गयेके निमित्त जलके घट सहित अन्न दे, यह गोविंदराजमें लिखा विष्णुका वाक्य है । अपनी शक्तिसे वर्षदिनतककी संख्या करके अन्न ब्राह्मणको दे, वा स्कन्ध घट आदिमें उसका निष्क्रय (मोल) हे मनुष्यो ! चाहे सौ श्राद्ध दो परन्तु जबतक घट-दान न हो तबतक दुःखित होकर संसाररूपी समुद्रमें भ्रमते हैं, इससे अपकर्ष करके भी प्रेतके निमित्त जलका कुंभ दे । यह गोभिलभाष्यमें स्कन्दका कथन है कि इससे सपिंडीसे प्रथम ही उसकी विधि है और पीछे निषेध है, सो उचित नहीं है कारण कि उदकुंभमें पार्वणकी विधि न होनेसे ऐसी व्याख्यामें कोई प्रमाण नहीं है और मिताक्षराआदिका विरोध भी है । यदि वाक्य प्रमाणयुक्त है तो वृद्धजन इसको अपकर्ष कहते हैं; कारण कि सम्पूर्ण प्रेतश्राद्ध और सपिंडीको करे, यह शाट्यायनने कथन किया है । उसको भी अन्न और जलघट दे, इस याज्ञवल्क्यके वाक्यका भी विरोध है । मदनरत्नमें गौतमने लिखा है कि, विना दैव पार्वण श्राद्ध और अधर्मक ब्रह्मचर्य आदि नियमसे हीन जलघट और प्रतिअब्द वर्षके श्राद्ध संकल्पविधिसे प्रतिदिन करने । यह मासिकके समान एकोद्दिष्ट वा पार्वणश्राद्ध करना चाहिये । अपरार्कमें तो यह लिखा है कि सपिंडीकरणके उपरान्त भिन्नता नहीं होती; यदि पृथक् श्राद्ध किया हो तो फिर सपिंडी करनी । इस लघुहारीतके वचन-से भी कहा है कि और उसके निमित्त भी जलके घट सहित अन्न ब्राह्मणको दे । इस याज्ञवल्क्यके वाक्यमें 'तस्य' यह एक वाक्य लिखा है इससे सपिं-डीके उपरान्त भी एकोद्दिष्ट ही होता है । इसमें पिण्डदान 'कृताऽकृतम्'

पिण्डदानं कृताकृतम्। 'अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात्पिण्डमप्येके निपृणन्ति' इति हेमाद्रौ पारस्करोक्तेः। श्राद्धाशक्तौ पिंडमात्रमिति गौडाः। तन्न। अपिशब्दबाधापत्तेः। हारीतः–"मृते पितरि वै पुत्रैः पिंडमब्दं समाचरेत्। अन्नं कुम्भं च विप्राय प्रेतनिर्देशधर्मतः॥" प्रेतशब्दोच्चारणेनेति हलायुधः। यद्वा प्रेतस्य निर्देशो यत्र तदेकोद्दिष्टं तद्धर्मकमित्यर्थः।अत्राशौचान्तदिनाद्यब्दान्तं यावद्वत्सरापूर्तेः शौचं नाधिकारिविशेषणम्। तेन मृतिदिनमारभ्यैतत्कार्यमिति केचित्[१]। तन्न। हेमाद्रिधृतवचोविरोधात्। मध्ये अशौचादिना बाधे तु लोप एव दार्शवत्। तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम्। देवजानीये गारुडे–"प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः। यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये। कुर्याद्याम्यमुखं पित्र्ये अद्भिः संकल्प्य सुस्थितम्॥" अथ मासिकनिर्णयः। तत्र मासिकानि कृत्वैव सपिंडनं कार्यम्। तथा गोभिललौगाक्षी– "श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डनम्। श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम्॥" तानि त्वाह जातूकर्ण्यः–"द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकं तथा। त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश॥" आद्यषाण्मासिकाब्दिक-शब्दा ऊनमासिकोनषष्ठोनाब्दिकपराः हेमाद्रौ तु–'सपिंडीकरणं चैव इत्येतत् श्राद्ध-

अर्थात् करे चाहे न करे; कारण कि हेमाद्रिमें पारस्करका कथन है कि प्रतिदिन प्रेतके निमित्त अन्न और जलका घड़ा ब्राह्मणको दे और कोई कहते हैं कि पिंड भी दे। श्राद्ध करनेका सामर्थ्य न हो तो पिंड ही दे, यह गौड़ोंका कथन है, सो यथार्थ नहीं; कारण कि अपिशब्दका बाध हो जायगा। हारीतने कहा है कि पिताके मरने उपरान्त पुत्र वर्षदिनतक पिंड दे और प्रेतके निमित्त धर्मसे अन्न और जलघट दे, प्रेतशब्दका उच्चारण करके दे, यह हलायुधका कथन है। अथवा प्रेतके उच्चारणवाले एकोद्दिष्टको धर्मपूर्वक करे यहाँ अशौचांत दिनसे वर्षकी पूर्तितक शौच अधिकारीका विशेषण नहीं है, इससे मरणके दिनसे लेकर यह करना यह कोई कहते हैं, सो उचित नहीं; कारण कि हेमाद्रिमें लिखे वाक्यका इसमें विरोध है। मध्यमें अशौच आदिसे बाध हो जाय तो लोप न करना, अमावस्याके तुल्य होता है। ऐसे ही प्रथम वर्षमें गरुडके कथनसे दीपदान लिखा है कि विषममार्गमें प्रतिदिन दीपक प्रेतके सुख निमित्त वर्षदिनतक दे। पूर्वाभिमुख वा उत्तरमुख दीपक देवमन्दिर वा ब्राह्मणके घरमें दे और पितरोंके निमित्त दक्षिणाभिमुख करके दीपक जलसे संकल्प करके देना। अब मासिकोंको वर्णन करते हैं–उन मासिकोंको करके ही सपिण्डी करनी चाहिये, क्योंकि गोभिल और लौगाक्षिने लिखा है कि षोडशश्राद्धके किये विना सपिंडन न करे, किन्तु षोडश श्राद्ध करके सपिंडीको करे। जातूकर्ण्यने षोडश श्राद्ध ये लिखे हैं कि द्वादशमहीनोंके बारह और आद्य, ऊनषाण्मासिक, त्रैपक्षिक (तीनपखवारे) और ऊनाब्दिक ये षोडश श्राद्ध हैं, यहाँ आद्यषाण्मासिक आब्दिक शब्द क्रमसे ऊनमासिक, ऊनषष्ठ तथा ऊनाब्दिकके बोधक हैं। हेमाद्रिमें तो 'सपिण्डीकरणं चैव' यह

१ जिसने नवश्राद्ध नहीं किया वह षाण्मासिक और मासिकका अधिकारी नहीं है।

षोडशम्।'इत्युत्तरार्द्धे पाठः-तदा आद्यमूनमासिकं द्वादशाहे षाण्मासिकम् ऊनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थः। कात्यायनस्त्वन्यथाह-"द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा। सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् ॥ एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः। न्यूनाः संवत्सराश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा ॥" द्विवचनादूनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थमाह पृथ्वीचन्द्रः। व्यासस्त्वन्यथाह-"द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिके। श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः ॥" द्वादशाहपदमूनमासिकपरं तस्य द्वादशाहेऽप्युक्तेरिति कालादर्शः। मदनरत्ने ब्राह्मे त्वन्यथोक्तम्-"नृणां तु त्यक्तदेहानां श्राद्धाः षोडश सर्वदा। चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ॥ ततो द्वादशभिर्मासैः श्राद्धा द्वादश संख्यया ॥" इति। चतुर्थादीनि दिनानि। भविष्ये त्वन्यथोक्तम्-"अस्थिसंचयनं श्राद्धं त्रिपक्षे मासिकानि तु। रिक्तयोश्च तथा तिथ्योः प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥" इति। रिक्तयोस्तिथ्योरित्यूनषष्ठोनाब्दिकपरमिति हेमाद्रिः। अत्र देशकुलशाखाभेदाद्व्यवस्थेति सर्वनिबन्धाः। गालवः-"ऊनषाण्मासिकं षष्ठे मासे वा प्यूनमासिकम्। त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा ॥" ऊनमासिके तु गोभिलः-"मरणाद्द्वादशाहे स्यान्मास्यूने चोनमासिकम् ॥"

उत्तरार्द्धमें पाठ लिखा है, तब आद्य, ऊनमासिक द्वादशाहमें होता है और षाण्मासिक, ऊनषष्ठ, आब्दिक और ऊनाब्दिक, यह अर्थ है। कात्यायनने तो अन्यप्रकार लिखा है कि द्वादश प्रतिमासके आद्य, षाण्मासिक ऊनषाण्मासिक और सपिंडी ये षोडश १६ श्राद्ध हैं। एक दिनमें वा तीन दिनमें जब षण्मास होते हैं वा जब कम तीन वर्ष हो तब षाण्मासिकमें होते हैं। पृथ्वीचन्द्रने यह लिखा है कि पूर्व कहे कात्यायनके वाक्यमें 'षाण्मासिके' के इस द्विवचनसे ऊनषष्ठ और ऊनाब्दिक लेने। व्यासने तो और भाँति कहा है कि बारह दिन, तीन पक्ष, छः मास, मासिक और वार्षिकमें ये षोडश श्राद्ध बुद्धिमानोंने लिखे हैं, द्वादशदिन पद ऊनमासिकका ज्ञापक है, क्योंकि वह द्वादशाहमें भी लिखा है, यह कालादर्श लिखते हैं। मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे तो अन्यथा लिखा है कि मृतक मनुष्योंके लिये सदा षोडशश्राद्ध होते हैं, चौथे पांचवें, नौवें, ग्यारहवें दिनमें और फिर बारह महीनोंमें जो श्राद्ध हैं वे षोडश श्राद्ध हैं। भविष्यमें तो और भाँति कहा है कि अस्थिसंचयन श्राद्ध, त्रिपक्ष और द्वादशमासिक ये रिक्तातिथियोंमें होते हैं। रिक्तातिथियोंके ऊनषष्ठ ऊनाब्दिक पर हैं, यह हेमाद्रिका कथन है। इनकी देश कुल शाखाभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये, यह सब निबन्धोंका मत है। गालवने लिखा है कि ऊनषाण्मासिक छठे मासमें और ऊनमासिक मासमें, त्रैपाक्षिक त्रिपक्षमें ऊनाब्दिक बारहवें मासमें होते हैं। ऊनमासिकके विषयमें तो गोभिलने लिखा है कि मरणसे द्वादशाहमें वा ऊनमासमें

मदनरत्ने कालादर्शे च श्लोकगौतमः-"एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा । श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः ॥" क्रियानिबन्धे ऋतुस्तु-"सार्धे एकादशे मासे सार्द्धे वै पञ्चमे तथा। ऊनाब्दमूनषण्मासं भवेतां श्राद्धकर्मणि ॥" इत्युक्तं तत्र मूलं चिन्त्यम् । ऊनेषु वर्ज्यान्याह मरीचिः-"द्विपुष्करे च नन्दासु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने । चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे ॥" ज्योतिषे-"त्रिपादर्क्षे तिथिर्भद्रा भौमेज्यरविभिः सह । तदा त्रिपुष्करो योगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः ॥" गालवः-त्रिभिर्वा दिवसैरूने त्वेकेन द्वितयेन वा । आद्यादिषु च मासेषु कुर्यादूनाब्दिकादिकम्॥" एकन्यूनपक्षे पञ्चम्यां मृतस्य तृतीयायां त्रिभिर्न्यूने प्रतिपदि द्व्यूने द्वितीयायामिति केचित् । माधवस्तु-"षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वेद्युरेव ते । मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेऽपि च ॥" इति पैठीनसिवाक्ये ऊनषाण्मासिकं सप्तममासगतमृताहात्पूर्वेद्युः कार्यम्, ऊनाब्दिकं तु द्वितीयाब्दे मृताहदिनात्पूर्वेद्युः कार्यमित्यर्थमाह । 'मासिकानि स्वकीये तु दिवसे' इत्युक्तेः । इदमेव युक्तम्, मदनरत्नेऽप्येवम् । याज्ञवल्क्यः-"मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ॥" अत्राद्यमासिकमाब्दिकं चैकादशेऽह्नीति निर्णयामृतादयः । "ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथवा । पुनश्च भोजये-

---

ऊनमासिक होता है । मदनरत्न और कालादर्शमें श्लोक गौतमका कथन है कि एक दो तीनसे ऊन वा त्रिभागसे ऊनमें ऊनाब्दिक आदि श्राद्ध होते हैं । क्रियानिबंधमें ऋतुने तो यह लिखा है कि साढे ग्यारहमें और साढे पांचमें ऊनाब्द और ऊनषण्मास श्राद्ध होते हैं, परन्तु इसमें मूल नहीं है । ऊन श्राद्धोंमें निषेध मरीचिने लिखा है कि द्विपुष्करयोग, नन्दा तिथि सिनीवाली, शुक्रवार, चतुर्दशी, कृत्तिका, त्रिपुष्कर इनमें ऊन श्राद्ध नहीं होते । ज्योतिषमें लिखा है कि त्रिपाद नक्षत्र, भद्रा तिथि, मंगल, बृहस्पति, रविवार तीनों हों तो त्रिपुष्करयोग और दोका योग हो तो द्विपुष्कर योग होता है । गालवने लिखा है कि तीन दिन वा दो दिन कममें पहले आदि मासोंमें ऊनाब्दिक आदि श्राद्ध करे । एक न्यून पक्षमें पञ्चमीमें मृतककी तृतीया, तीनसे न्यूनमें मरेकी प्रतिपदा, दोसे न्यूनमें मृतककी द्वितीयामें होता है, यह कोई लिखते हैं । माधवने तो यह लिखा है कि षाण्मासिक आदि श्राद्ध पूर्वदिनमें ही होते हैं, मासिक आदि श्राद्ध अपने दिनमें वा बारह दिनमें होते हैं, इस पैठीनसिके कथनमें ऊनषाण्मासिक सप्तममासगत मृताहसे प्रथमदिनमें करे और ऊनाब्दिक तो द्वितीय वर्षमें मरणदिनसे प्रथमदिन करने; कारण कि यह लिखा है कि मासिक अपने दिनमें होते हैं, यही युक्त है और मदनरत्नमें भी ऐसा ही लिखा है । याज्ञवल्क्यने लिखा है कि वर्षके मध्य मासिक और प्रतिवर्ष वार्षिकश्राद्ध मृत्युके दिन और आद्यश्राद्ध ग्यारह दिनमें करने।यहां निर्णयामृत आदि यह लिखते हैं कि आद्यमासिक और आद्यऊनाब्दिक ग्यारह दिनमें करने । आद्य श्राद्धमें ब्राह्मणको जिमावे वा अग्निमें हवन करे और फिर ब्राह्मणको

द्विमं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥" इति गोभिलीयं च तद्विषयमाहुः। अन्ये तु 'मासपक्षतिथिस्पष्टे' इत्यादिविरोधादाब्दिकं वर्षान्ते एव। मासिकं तु मासादौ। द्विरावृत्तिस्तु एकादशाहिकाद्यमासिकपरा। देवयाज्ञिकोऽप्येवमाह। लौगाक्षिरपि—"मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते। आद्यमेकादशे कार्यमधिके त्वधिकं भवेत् ॥" दीपिकायां तु—'आद्यं रुद्रामितेऽर्कसंमितदिने वा स्यात्' इत्युक्तम्। गौडास्तु मृततिथ्यवधिके एकादिनाधिके मासंसवत्सरपदं गौणम्। पूर्णेऽब्दे इति ईषदसमाप्तपरत्वमिति शूलपाणिः। तेन द्वितीयमासादावाद्यमासिकादीनि तन्मौर्ख्यकृतम्। अशक्तौ तु हारीतः—"मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति। द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा" ऋतुं प्रति द्वेद्वे इत्यर्थः। यदा पितुर्मरणात्त्रयोविंशतितमे दिने दर्शो वृद्धिर्वा स्यात्तदा द्वादशदिनेषु द्वादशमासिकानि कार्याणीत्यर्थः। त्रैपक्षिकं तु त्रिपक्षेऽतीते मृताहे कार्यम्। 'त्रैपक्षिकं भवेद्वृत्ते त्रिपक्षे तदनन्तरम्।' इति भविष्योक्तेरिति मदनरत्ने उक्तम्। पृथ्वीचन्द्रकालादर्शनिर्णयामृतादयस्तु—"ऊनान्यूनेषु मासेषु विषमाहे समेऽपि वा। त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहे त्वितराणि तु ॥" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः पूर्वत्र वृत्ते

जिमावे। उस प्रकार द्विरावृत्ति होती है, इस गोभिलके कथनको भी उसी विषयमें लिखते हैं। और तो यह लिखते हैं कि मासपक्षतिथिसे स्पष्ट (युक्त) इत्यादि वाक्यके विरोधसे वार्षिक श्राद्ध वर्षके अन्तरमें ही होता है, मासिक तो मासके आदिमें होता है। द्विरावृत्ति तो एकादशाहके और आद्यमासिकके विषयमें वर्णन की गयी है और देवयाज्ञिकने भी इसी प्रकार लिखा है। यही लौगाक्षिने भी लिखा है कि महीनेकी आदिमें मासिक और वर्षके बीतने पर वार्षिक और ग्यारहवें दिन आद्य और अधिकमासमें अधिकश्राद्ध होता है। दीपिकामें तो यह लिखा है कि आद्यश्राद्ध ग्यारहवें वा बारहवें दिन होता है। गौडोंने तो यह लिखा है कि मृत्युकी तिथिसे एक दिन अधिक मासमें संवत्सरपद गौण है। पूर्ण वर्षमें यह कुछके असमाप्तपर है, यह शूलपाणिका कथन है, इससे दूसरे महीने आदिमें आद्यमासिक आदि होते हैं, यह मूढकृत है। अशक्तिमें तो हारीतने कहा है कि मास मासमें तो श्राद्ध मुख्य होता है, पूर्ण न हो सके तो ऋतु ऋतुमें दो दो होते हैं। बारह दिनमें वा ग्यारह दिनमें बारह ब्राह्मण जिमावे। जब पिताके मरनेसे तेईसवें दिन अमावस वा वृद्धि हो जाय तब बारह दिनोंमें बारह श्राद्ध मासिक करने, त्रैपक्षिक तो तीन पक्ष बीतनेपर मृत्युके दिनमें करना; कारण कि त्रिपक्ष बीतनेपर त्रैपक्षिक होता है, यह भविष्यपुराणका वाक्य है, ऐसा मदनरत्नमें लिखा है। पृथ्वीचन्द्र निर्णयामृत और कालादर्शआदिका तो यह कथन है कि कमती वा तुल्यमासमें, विषमदिन वा समदिनमें ऊनश्राद्ध और तीनपक्षमें त्रैपक्षिक और इतर श्राद्ध मरणादिनमें होते हैं, इस कार्ष्णाजिनकी स्मृतिसे पूर्वके 'वृत्त'

प्रवृत्ते इत्यर्थमाहुः–ते तदनन्तरशब्दविरोधात् त्रैपक्षिकद्वितीयमासिकयोः संकरापत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावाच्चोपेक्ष्याः। त्रिपक्षसपिण्डने त्वेवंशब्दाभावादधिकरणत्वमेव ज्ञेयम्। यत्तु–क्रियानिबन्धे गारुडे "त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे तु प्रवृत्ते विषमे दिने। मासिकान्यपि चोनानि अष्टाविंशतिमे दिने॥" इति, तन्निर्मूलम्। स्मृतिरत्नावल्याम्–"द्वादशाहे यदा कुर्यात्पितुः पुत्रः सपिण्डनम्। एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतश्राद्धानि षोडश॥" पैठीनसिः–"सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्वञ्छ्राद्धानि षोडश। एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः। प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि॥" मदनरत्ने कात्यायनः–"श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि। ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा॥" ध्रुवाणि त्रैपक्षिकादूर्ध्वानि। क्रियानिबन्धे गारुडे–"त्रिपक्षात्पूर्वतः साग्नेर्भवेत्संस्कारवासरे। ऊर्ध्वं मृतदिनेऽनग्नेःसर्वाण्येव मृताहतः॥" एतानि च यदा सपिंडनात्पूर्वं युगपत्कुर्यात्तदा देशकालकर्त्रैक्यतन्त्रत्वादेकः पाक इति केचित्। पाकभेद इति भट्टचरणाः। अत्र केचिदाहुः–देशकालदैवतैक्ये तन्त्रत्वात् श्राद्धकालातिक्रमापत्तेः–'द्वादशाहेऽथ सर्वाणि संक्षेपेण समापयेत्। तान्येव तु पुनः कुर्यात्प्रेतशब्दं न कारयेत्॥" इति कात्यायनोक्तेः। 'नैव श्राद्धद्वयं

इस पदका प्रवृत्त अर्थ करते हैं परन्तु वे इससे छोड़ने योग्य हैं कि उसके अनन्तर शब्दका विरोध त्रैपक्षिक और द्वितीय मासिक पदके एकत्र होनेसे हो जायगा, त्रिपाक्षिकी सपिण्डीमें तो एवं शब्दके न होनेसे अधिकरणताकी ही प्राप्ति जाननी। जो क्रियानिबन्धमें गरुडपुराणका वाक्य है कि त्रैपक्षिक तीसरे पक्षकी प्रवृत्ति होनेपर विषमदिनमें होता है और ऊनमासिक श्राद्ध अट्टाईसवे दिन होते हैं, वह निष्प्रमाण है। स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है कि जब पुत्र पिताकी सपिण्डी द्वादशाहमें करे तब एकादशाहके दिन षोडश प्रेतश्राद्ध करे। पैठीनसिने कहा है कि सपिण्डीके प्रथम षोडश श्राद्धको करे तो एकोद्दिष्टकी विधिसे उन सबको कर ले,जब सपिण्डीके उपरान्त करे तो फिर प्रतिवर्षका श्राद्ध जैसा किया है वैसे ही उनको भी करे। मदनरत्नमें कात्यायनका वचन है कि अग्निहोत्रीका श्राद्ध दाहसे ग्यारहवें दिन करे और ध्रुव (त्रिपक्षसे अगले) श्राद्धोंको तो मरनेके दिन सर्वदा करे। क्रियानिबन्धमें गरुडपुराणका वाक्य है कि अग्निहोत्रीके त्रिपक्षसे प्रथम श्राद्धसंस्कार (दाह) के दिनमें और त्रिपक्षके पीछे मरणादिनमें होते हैं और अनग्निके सब मरणदिनमें ही होते हैं। और इनको जब सपिण्डीसे प्रथम एकत्र करे तब देश काल कर्ता एक हैं, इससे तन्त्रसे एकपाक होता है। यहां कोई यह लिखते हैं कि। भट्टचरण तो यह वर्णन करते हैं कि भिन्न भिन्न पाक होता है। यहां कोई यह लिखते हैं कि देशकालदेवता ये एक हैं, तन्त्रसे श्राद्धकालका अतिक्रम होजायगा, इससे द्वादशाहमें सबकी संक्षेपसे पूर्ति करे और उनको ही फिर करे परन्तु प्रेतशब्द न कहे, इस कात्यायनके

कुर्यात् समानेऽहनि कुत्रचित् ।' इत्यस्य दैवतैक्यपरत्वेऽप्यत्र तत्सत्त्वात् । 'श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न कारयेत् ।' इति जाबाल्युक्तेः षोडशसंख्यायाश्च वाजपेये प्राजापत्ययागसप्तदशत्ववत्सान्नाय्ययागद्वित्ववच्च दर्शपातसंक्रान्तिश्राद्धवद्युगपदनुष्ठानेऽप्युपपत्तेः–'आद्यमासिकाद्यूनाब्दिकान्तेषु षोडशश्राद्धेषु च क्षणः क्रियताम्' इत्येवं प्रयोगेणैको विप्रः पिंडोऽर्घश्चेति । विरुद्धविधिविध्वंसेऽप्येवं तन्मन्दम् ।'द्वादशाहेन वा भोज्याः एकाहे द्वादशापि वा ।' इति हेमाद्रौ हारीतवचोविरोधात्तेन विप्रभेदात् पिंडार्घ्याद्यपि भिन्नमिति सिद्धम् । एतानि द्वादशाहादौ सपिंडनात्पूर्वं कृतान्यपि वृद्धिं विनापकर्षे पुनः स्वकाले कार्याणि । 'यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिंडीकरणं कृतम् । मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥" इति मदनरत्ने आङ्गिरसोक्तेः । नचेदं मासिकानामपकर्षं किंतु सपिंडनोर्ध्वं स्वकालेऽनुष्ठानमेवेति, वाच्यम् । 'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नतु कुर्यात्सपिंडताम् ।' इति विरोधात् । "यस्य संवत्सरादर्वाग्विहिता तु सपिंडता । विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश ॥" इति माधवीये गोभिलोक्तेश्च । "अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिंडीकरणं कृतम् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः ॥" इति तत्रैव गालवोक्तेः । षोडशत्वं चैकादशाहसपिंडनपक्षे तत्राद्यमासिकस्य

कथनसे और एक मनुष्य एक दिनमें कभी भी दो श्राद्ध न करे यह वाक्य चाहे देवताके एक होनेमें भी हो यहां एक देवता है । और श्राद्धकरके फिर उसका श्राद्ध न करे, इस जाबालिके कथनसे, और षोडशसंख्याकी (सिद्धि) वाजपेयमें प्राजापत्ययज्ञकी सप्तदश १७, संख्याके समान और सान्नाय्यकी द्वित्वसंख्याके समान और दर्शपात संक्रान्तिके तुल्य एकबार करनेमें भी हो जायगी, इससे प्रथममासिकआदि ऊनाब्दिकपर्यन्त षोडशश्राद्धोंमें "क्षण (समय) करो; इस प्रकार एक ही ब्राह्मण और एक ही पिण्ड और अर्घ होते हैं । विरुद्धविधिके नाशमें भी इसी प्रकार होता है; सो मन्द है; कारण कि हेमाद्रिमें इस हारीतके वाक्यका विरोध किया है कि बारह दिनमें वा ग्यारह दिन बारह ब्राह्मण जिमावें," जिससे ब्राह्मणका भेद है इससे पिण्डअर्घआदि भी पृथक् होते हैं, यह सिद्ध हुआ । ये द्वादशदिन आदिमें सपिण्डीसे प्रथम किये भी वृद्धिके विना अपकर्ष होजायँ तो फिर अपने समयमें करने, कारण कि मदनरत्नमें आंगिरसने लिखा है कि जिसकी सपिण्डी वर्षदिनसे प्रथम होजाय उसको भी मासिक और जलका घडा वर्षदिन तक दे यदि कहो कि यह वाक्य कुछ मासिकश्राद्धोंके अपकर्षको नहीं कहता, किन्तु सपिंडके उपरान्त अपने समयमें करनेको कहता है, यह शंका उचित नहीं, कारण कि इस वाक्यका विरोध है कि षोडशश्राद्ध विना किये सपिंडी न करे। और माधवीयमें गोभिलका भी वचन है कि जिसकी वर्षदिनसे प्रथम सपिंडी होगयी हो उसकी फिर भी विधिपूर्वक षोडशश्राद्ध करे । वर्षदिनसे प्रथम जिसकी सपिंडी होजाय तो षोडशश्राद्धोंकी दूसरी आवृत्ति करे, यह गौतमने कहा है, ऐसा वहां ही गालवने लिखा है षोडशत्व एकादशाहमें सपिंडी करनेके पक्षमें है, वहां आद्यमासिकका समय है, इससे और पक्षोंमें

कालसत्त्वादन्यपक्षेषु यथासंभवं ज्ञेयम्। यत्तु दीपिकायाम्–'अनुमासिकानि तु चरेत्तान्येव सापिंडचतः पश्चात् द्वादश' इत्युक्तेरूनानां न पुनः कृतिरित्युक्तं तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम्। यत्तु गौडाः–'सपिंडीकरणान्ता तु ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः' इति शातातपोक्तेर्मासिकानां प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात्सपिंडनापकर्षे तद्न्तन्यायेन तेषामपकर्षान्मासिकानां न पुनः कृतिः।यत्तु-'मासिकं चोदकुम्भं च' इति लौगाक्ष्यादिवचनं, तन्निर्मूलम्। समूलत्वेऽपि दार्शपरं चेत्याहुः। ते-उक्तवक्ष्यमाणवचोनिबन्धविरोधान्मूर्खा इत्युपेक्ष्याः। यत्तु मिताक्षरायां सपिण्डनोर्ध्वं स्वकाले एव कार्याणि अपकर्षस्त्वनुकल्प इत्युक्तम्, तदपि पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम्। तेन वृद्धिं विनापकर्षे पुनः कृतिः। "अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत्। प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सरं नृप" इत्यग्निपुराणात्। वृद्धिनिमित्तापकर्षे त्वस्त्येव तन्निवृत्तिः। अन्यथा वृद्धावसंभवादिति शूलपाणिः। कार्ष्णाजिनिः–"सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि। पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात्॥" निषेधं चाह कात्यायनः "निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत्। अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु॥" ति। द्विरनुष्ठानं चोत्तरेषामेव, न पूर्वेषां

यथासम्भव (जैसा होसके) जानना। जो दीपिकामें कहा है कि अनुमासिक तो सपिंडीसे पश्चात् करे, इससे पीछे द्वादश कहनेसे ऊन श्राद्धोंको फिर न करे, सो इसके विरोधसे वह चिन्त्य अर्थात् प्रमाण रहित है। जो गौड लिखते हैं कि बुद्धिमानोंको सपिंडीकर्मपर्यन्त प्रेतक्रिया जाननी चाहिये, इस शातातपके कथनसे मासिकश्राद्ध प्रेतत्व दूर करनेके निमित्त है, इससे सपिंडीके अपकर्षमें तदंतन्यायसे मासिकोंका भी अपकर्ष होनेसे मासिक श्राद्धोंका फिर करना नहीं होता। और जो लौगाक्षि आदिने लिखा है कि मासिक और जलघट (वर्षदिन तक दे) वह निर्मूल है, और समूल भी हो तो दर्शके विषयमें है, वे गौड उक्त और आगे कहे वाक्यवाले ग्रन्थोंके विरोधसे मूर्ख होनेसे त्यागने योग्य है। जो मिताक्षरामें लिखा है कि सपिंडीके उपरान्त अपने समयमें करने, अपकर्ष तो अनुकल्प है वह भी पूर्वके विरोधसे चिन्तनीय है, इससे वृद्धिके विना अपकर्ष हो जाय तो फिर करना होता है और हे राजन्! वर्षदिनके प्रथम जिसकी सपिंडी हो जाय उसको भी वर्षदिनतक प्रेतत्व जानना। इस अग्निपुराणके कथनसे वृद्धिके निमित्त अपकर्ष होनेपर उसकी भी निवृत्ति हो जाती है, अन्यथा (नहीं तो) वृद्धिकी संभावना नहीं है, शूलपाणि कहते हैं। कार्ष्णाजिनिने लिखा है कि सपिंडीसे प्रथम अपकर्षसे किये भी श्राद्ध पुनः भी (संक्षेपसे) किये जाते हैं; कारण कि वृद्धिके पीछे निषेध है। वह निषेध कात्यायनने लिखा है कि वृद्धिके तन्त्रोंको करके मासिक श्राद्धोंको तन्त्रसे न करे, क्योंकि जिससे

स्वस्वकालकृतानाम् । तदाह माधवीये कार्ष्णाजिनिः-"अर्वागब्दाद्यत्र यत्र सपिण्डीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वंमासिकानां स्याद्यथाकालमनुष्ठितिः ॥" हेमाद्रौ शाट्यायनिः-प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुं नान्दीमुखं द्विजः ॥" वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाहोशना-"वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥" इति आधानेऽपकर्षमाह हेमाद्रावुशना-"पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतिवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावितत्प्रागपि वत्सरात् ॥" विशेषस्तूक्तो विवाहनिर्णये ॥ कण्वः-"नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ॥ तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥" गारुडेऽपि-'आपादाद्यकृतं यत्तु कुर्यादूर्ध्वं मृताहनि ।
अथ सपिण्डीकरणनिर्णयः । माधवीये हारीतः-"या तु पूर्वममावास्या मृताहाद्दशमी भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्यां कुर्यादेव सुतोऽग्निमान् ॥" मृताहादूर्ध्वं दशमी एकादशीत्यर्थः । सपिण्डीकरणं कुर्यात्पूर्वंवच्चाग्निमान्सुतः । परतो दशरात्राच्चेत्कुर्यादब्दे परेतरः॥" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ आहिताग्नेस्तेन विना श्रौतपिण्डपितृयज्ञासिद्धेः ॥ तदाह गालवः-" सपिण्डीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते ।

उस प्रेतका (कुत्सित) मरण न हो, दूसरी बार करना भी पिछलोंका है, अपने अपने समयमें किये पहिलोंका नहीं । सोई माधवीयमें कार्ष्णाजिनिने कहा है कि वर्षदिनसे प्रथम जहाँ जहाँ सपिंडी की है वहाँ वहाँ उसके उपरान्त मासिकश्राद्धोंको अपने अपने समयमें करे । हेमाद्रिमें शाट्यायनिका वाक्य है कि प्रेतश्राद्ध और सपिंडीको संक्षेपसे भी वह ब्राह्मण करे, जो नांदीमुखकी इच्छा करे । वृद्धिके विना अपकर्षमें उशनाने दोष लिखा है कि वृद्धिश्राद्धके विना जो मनुष्य प्रेतश्राद्ध करता है वह पितरोंसहित घोर नरकमें जाता है । आधानमें अपकर्ष उशनाने हेमाद्रिमें लिखा है कि पिताकी सपिंडी वार्षिक मरनेके दिन होती है और आधान आदि आजाय तो वर्षसे प्रथम भी होती है, विशेष तो विवाहनिर्णयमें लिखा है । कण्वने कहा है कि नवश्राद्ध और मासिक जो अन्तमें पड़े वह उत्तरतन्त्रमें अनुष्ठान करना चाहिये । गरुडमें लिखा है कि मृत्युके दिन आपत्ति आदिसे यदि न किया हो तो वह उससे आगे करना चाहिये । अब सपिंडीकरणको लिखते हैं-माधवीयमें हारीतका वचन है कि जो अमावस्या मृत्युके दिनसे दशदिनमें हो तो अग्निहोत्री पुत्रको उसमें सपिंडी करनी चाहिये, मरनेके दिनसे दशमी नाम एकादशी हो यह अर्थ है; कारण कि कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखा है कि अग्निहोत्री पुत्र प्रथम अमावस्में सपिंडी करे, दशरात्रसे पीछे पूर्व हो तो पूर्ण वर्षमें करे; कारण कि आहिताग्निके उसके विना वेदोक्त कर्म और पिंडपितृयज्ञकी सिद्धि नहीं हो सकती। यहाँ गालवने लिखा है कि सपिंडी करनेसे जब प्रेत पितरपदवीको प्राप्त होते हैं, तब अग्नि

आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते ॥" मदनरत्ने प्रजापतिः-"नासपिण्डयाग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत्। अपरार्के कात्यायनः-"एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डताम् ॥" आशौचान्तप्रथमदर्शयोर्मध्ये कस्मिंश्चिदह्नीत्यर्थः। पित्रादीनां सपत्नीकानां देवतात्वेन मातुरपि प्राग्दर्शात्सपिण्डनं युक्तमित्यपरार्कः। एवं पितामहादेरपि सपिण्डनं प्राग्दर्शात्कार्यम्। तेन विना पार्वणायोगाद् द्वादशाहे वा कार्यम् ।"साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् । द्वादशाहे भवेत्कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः ॥" इति गोभिलोक्तेः। साग्नेः प्रेतस्य तु त्रिपक्षे-"प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात् कर्तानग्निर्यदा भवेत् । संपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके ॥" इति सुमन्तूक्तेः। मदनरत्ने लघुहारीतोऽपि-"अनग्निस्तु यदा वीर भवेत्कुर्यात्तदा गृही। प्रेतश्चेदग्निमांस्तु स्यात् त्रिपक्षे वै सपिण्डनम् ॥" द्वयोः साग्नित्वे द्वादशाह एव। 'साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतो वाप्यग्निमान्भवेत् । द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं पितुः ॥" इति तेनैवोक्तेः । द्वयोरनग्नित्वे तु भविष्ये-" सपिण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् । अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्दे भरतर्षभ ॥ द्वादशाहानि

होत्रीका यज्ञ अमावसमें होता है । मदनरत्नमें प्रजापतिने लिखा है कि विना सपिंडी किये अग्निहोत्री पुत्र पिंडपितृयज्ञ न करे। अपरार्कमें कात्यायनका कथन है कि दर्शसे प्रथम विधिपूर्वक एकादशाहकी विधि करके अग्निहोत्री पुत्र माता पिताकी सपिण्डी करे, अर्थात् अशौचांत और प्रथम दर्शके बीचमें जिस किसी दिन करे। जब सपत्नीक पिता आदि देवता हों तो माताका भी उनमें प्रवेश है, इससे माताकी भी सपिण्डी दर्शसे प्रथम युक्त है, यह अपरार्क लिखते हैं। इसी प्रकार पितामह आदिकी भी सपिंडी दर्शसे प्रथम करनी; कारण कि उसके बिना पार्वण नहीं हो सकता। अथवा द्वादशाहको करनी,कारण कि गोभिलने लिखा है कि जब कर्ता अग्निहोत्री हो और प्रेत अग्निहोत्री न हो तब पुत्र द्वादशाहमें सपिंडी करे। और अग्निहोत्री प्रेतकी तो तीन पक्षमें करे; कारण कि सुमंतुका वाक्य है कि यदि प्रेत आहिताग्नि हो और कर्त्ता अनग्नि हो तो तीसरे पक्षमें सपिंडी करे। मदनरत्नमें साग्निके निमित्त लघुहारीतका भी वाक्य है कि हे वीर गृहस्थ अग्निहोत्री न हो और प्रेत अग्निहोत्री हो तो तीनपक्षमें सपिंडी करे और दोनों अग्निहोत्री हों तो द्वादशाहमें करे; कारण कि उसका ही कथन है कि कर्ता और प्रेत दोनों अग्निहोत्री हों तो पिताकी सपिंडी दशाहमें करे, दोनों अग्निहोत्री न हों तो भविष्यपुराणमें यह लिखा है कि हे भरतश्रेष्ठ ! अनग्नि प्रेतकी सपिंडी पूर्ण

षण्मासे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा । एकादशेऽपि वा मासि मङ्गलस्याप्युपस्थितौ॥ कात्यायनगोभिलौ–'यदहर्वा वृद्धिरापद्येत' इति । तच्च वृद्धिदिन एवेति वाचस्पतिः । तन्न । 'प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति नियमात्सपिण्डनस्य चापराह्णकालिकत्वेन पूर्वत्वबाधापत्तेः।वृद्धिदिने तत्पूर्वदिने चेति श्रीदत्तः।स्मार्तगौडस्तु–'वृद्धिपूर्वो वर्षान्त्यश्च क्षणः सपिण्डनस्य प्रेतत्वनाशे सहकारी।तेन परेद्युर्विघ्नाद्वृद्ध्यभावेऽपि तत्कर्तव्यतानिश्चयसहितमेव कालान्तरक्रियमाणवृद्धिपूर्वक्षणसहकृतं प्रेतत्वनाशकम्' इत्याह, तन्न अकाले कृतस्य फलाजनकत्वात्।एतेन निमित्तनिश्चयवत एवाधिकाराद्वृद्ध्यभावेऽपि न क्षतिरिति मिश्रोक्तिः परास्ता। वृद्धिपूर्वदिनस्य च कालस्याङ्गत्वेन निमित्तत्वाभावात्तेन पुनः कार्यमित्यन्ये । मदनरत्ने पुलस्त्यः–"निरग्निकः सपिण्डत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः। पूर्णे संवत्सरे कुर्याद्वृद्धिर्वा यदहर्भवेत् ॥" चतुर्विंशतिमते–"सपिण्डीकरणं चाब्दे संपूर्णेऽभ्युदयेऽपि वा । द्वादशाहे तु केषांचिन्मतं चैकादशे तथा ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः–अथ सपिण्डीकरणं'त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि षष्ठे चैकादशे वा द्वादशे वा द्वादशाहे वा' इति । एतत्प्रक्रमे विष्णुः–" मासिकार्थे द्वादशाहं

वर्षमें अनग्नियजमान करे, वा बारह दिन, पण्मास, त्रिपक्ष, तीन महीने और ग्यारह मास में तब करे; जब कोई मंगलकार्य उपस्थित हो । कात्यायन और गोभिलका वाक्य है कि जिस दिन वृद्धि हो, उस वृद्धिदिनमें ही सपिंडी करे, यह वाचस्पति कहते हैं, सो ठीक नहीं; कारण कि वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध प्रातःसमय होता है, इस नियमसे सपिंडीका अपराह्ण काल होनेसे पूर्वत्व (पहले होनेका) बाध होजायगा । श्रीदत्त तो यह कथन करते हैं कि वृद्धि दिनमें वा उसके पूर्वदिनमें करे । स्मार्त्त गौडने तो यह लिखा है कि वृद्धिसे पूर्व और वर्षाके अन्तका समय सपिंडीसे प्रेतत्वके नाशमें सहायक है, इससे पर दिनमें विघ्नसे वृद्धिके अभाव होनेपर भी उसके करनेका निश्चय सहित कालान्तरमें (क्रियमाण) करने योग्य वृद्धिसे पूर्व समयमें किया प्रेतत्वका नाशक है, सो ठीक नहीं; कारण कि असमयमें किये फलका जनक नहीं होता, इससे यह मिश्रका कथन परास्त हुआ कि निमित्तके निश्चयवालेका ही कर्ममें अधिकार है, इससे वृद्धिके अभावमें भी सपिंडी करनेमें कुछ क्षति नहीं है । वृद्धिसे पूर्वका दिन अन्य कालका अंग है, इससे निमित्त नहीं हो सकता, इससे फिर करना यह कथन करते हैं । मदनरत्नमें पुलस्त्यका वाक्य है कि निरग्निपुत्र पिता माताकी सपिंडी पूरे वर्षमें वा वृद्धिके दिन करे । चतुर्विंशतिमतमें लिखा है कि पूर्ण वर्षमें वा वृद्धिके दिन द्वादश वा एकादश दिनमें सपिंडी करे । अब सपिंडीको लिखते हैं–पृथ्वीचन्द्रोदयमें बौधायनका वाक्य है कि तीन पक्ष, तीसरे महीने छठे महीनेमें वा ग्यारहवें वा बारहवें दिनमें सपिंडी होती है इसी प्रकरणमें विष्णुने कहा है है कि मासिकके निमित्त बारह दिनमें श्राद्ध करके तेरहवें दिन

श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा कुर्यान्मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणाम् द्वादशेऽह्नि संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासो भवेत्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्धयेत्" इति । आशौचोत्तरं द्वादशस्वहस्सु मासिकानि । तेष्वेवाद्यषष्ठद्वादशदिनेषु मासिकादीनि कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डनं कुर्यात् । अधिमासे तु चतुर्दशेऽह्नि कुर्यात् । शूद्रस्त्रयोदशे द्वादशेऽह्नीत्यस्य मासिकान्त्यदिनपरत्वादिति पृथ्वीचन्द्रः । पैठीनसिः-'संवत्सरान्ते संसर्जनं नवमे मासीत्येके । अत्र साग्नेरनग्नेर्वोक्तकालाभावे त्रिपक्षादिसंवत्सरान्तानामनुकल्पा ज्ञेयाः । कल्पतरुस्त्वग्रे वृद्धिनिश्चय एव सर्वेऽपकर्षप्रकारा इत्याह । तन्न ' यदहर्वा' इति स्वातन्त्र्यश्रुतेः । यद्यपि वृद्धिनिमित्तोऽपकर्षो निरग्नेरेवोक्तस्तथापि साग्नावपि ज्ञेयः । उक्तकालासंभवे वर्षान्तादिगौणकालवद्वृद्धेरपि प्राप्तेः । वक्ष्यमाणागोभिलवचनात् । 'अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु ।' इति दोषश्रुत्यविशेषाच्च । अपरार्कपृथ्वीचन्द्रादिस्वरसोऽप्येवम् । अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम् । सीमन्तादौ तु वृद्धिश्राद्धलोप एवेत्याचार्यचूडामणिः । पुंसवनाद्यन्नप्राशनान्तेष्वावश्यकेष्वपकर्ष इति श्राद्धविवेकः । श्रुतिसागरेऽपि बृहस्पतिः-"प्रत्यवायो भवेद्यस्मिन्न कृते वृद्धिकर्मणि । तन्निमित्तं समाकृष्य पित्रोः कुर्यात्सपिण्डनम् ॥ " गर्भाधानस्य त्वन्तरेऽपि संभवात् । 'अन्य-

---

(सपिंडी) करे, शूद्रोंकी सपिंडी मंत्रोंके विना होती है और यदि बारह दिनमें वर्षके भीतर अधिकमास हो उस महीनेमें मासिकके निमित्त एक दिन बढा ले । अशौचके पीछे बारह दिनोंमें मासिक करे, उन्हीं दिनोंमें प्रथम आठ द्वादशदिनोंमें ऊनमासिक आदि करके तेरह दिनमें सपिंडी करे, अधिमासमें तो चौदहवें दिन करे, शूद्र तेरह वा बारह दिनमें करे, यह मासिकके अन्त्यदिनका ज्ञापक है, यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं । पैठीनसिने कहा है कि संवत्सरके अंतमें और किसीके मतसे नौवें महीनेमें सपिंडी होती है । यहां साग्नि वा निरग्नि पूर्वोक्तकालमें न कर सके तो तीन पक्षसे वर्षके अन्ततक इसका अनुकल्प जानना । कल्पतरुने तो यह लिखा है कि सब अपकर्षके प्रकार वृद्धिके निश्चय होनेपर ही होते हैं, सो योग्य नहीं; कारण कि जिस दिन वृद्धि हो उस दिन करे, यह स्वतंत्र वाक्य है । यद्यपि वृद्धिनिमित्तक अपकर्ष निरग्निको लिखा है तथापि साग्निको भी जानना; कारण कि उक्तकालके असम्भवतामें वर्षका अन्त आदि गौणकालके समान वृद्धि भी प्राप्त है क्योंकि आगे कहे गोभिलके वाक्यसे और पिछलेका 'अयातयाम' (बुरा) मरण न हो इस दोषके सुननेके अविशेषसे अपरार्कमें पृथ्वीचन्द्रोदयका आशय भी यही है । यहां वृद्धिपद मुंडन, यज्ञोपवीत और विवाहमात्रका ज्ञापक है, सीमंतोन्नयनादिमें तो वृद्धिश्राद्धका लोप ही होता है, यह आचार्य्यचूडामणि लिखते हैं । पुंसवन अन्नप्राशनपर्यन्तोंमें आवश्यकता होनेसे अपकर्ष होता है, यह श्राद्धविवेक लिखते हैं । श्रुतिसागरमें भी बृहस्पतिका वाक्य है कि जिस कर्ममें वृद्धिकर्मके न करनेसे पाप हो उसके निमित्त अपकर्षसे मातापिताकी सपिंडी करे । गर्भाधान तो अन्य समयमें

श्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम्।' इति देवलेन प्रथमाब्दे मैथुननिषेधाच्च न तत्रापकर्ष इति श्राद्धकौमुद्यादयस्तन्न।'ऋतुस्नातां तु यो भार्याम्०' इति निषेधात्। 'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च विवर्जयेत्' इति मैथुने दोषाभावाच्च। पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ नापकर्षः। तस्य महागुरुत्वाभावात्। तत्र तदूर्ध्वेभ्यो वृद्धिश्राद्धमिति श्राद्धचन्द्रिका। तन्न। 'भ्राता च' इत्यादौ तदभावेऽप्यपकर्षोक्तेः। तेन निर्देशोऽप्युपलक्षणम्। व्याघ्रः—'आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्। अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते॥" एतदाशौचान्तोपलक्षणम्। 'सर्वेषामेव वर्णानामशौचान्ते सपिण्डनम्।' इति निर्णयामृते कात्यायनोक्तेः। सर्वेषामिति त्रैवर्णिकपरम्। शूद्राणां त्वाशौचमध्ये। "मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणां द्वादशेऽहनि कीर्तितम्।' इति विष्णूक्तेः। एतद्दर्शश्राद्धकारिशूद्रविषयमित्यपरार्के कल्पतरौ च। वृद्धमनुः—"द्वादशेऽहनि विप्राणामशौचान्ते तु भूभुजाम्। वैश्यानां तु त्रिपक्षादावथवा स्यात्सपिंडनम्॥"निर्णयामृते गोभिलः—"द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम्। सपिंडीकरणं कुर्यात्कालेषूत्तरभाविषु॥" इदं साग्नेरुक्तकालासंभवे गौणकालविधानार्थमिति मदनपारिजातः। मदनरत्नेऽप्येवम्। ऋष्यशृङ्गः—सपिंडीकरणं

भी हो सकता है। अन्य श्राद्ध, परान्न, गंध, माल्य, मैथुन इनका पहले वर्षमें न करे, इस देवलके कथनसे मैथुनका निषेध है, इससे गर्भाधानमें अपकर्ष न करना, यह श्राद्धकौमुदी आदि लिखते हैं, सो ठीक नहीं; क्योंकि गर्भाधानमें इस वाक्यसे मैथुन करनेका दोष नहीं कि ऋतुस्नाता भार्याके निकट जो गमन नहीं करता उसको भ्रूणहत्या प्राप्त होती है और पर्व तथा आदिकी चार रात्रिको जो ऋतुकालमें त्यागता है वह ब्रह्मचारी ही कहाता है। पितामहकी मृत्युमें पौत्र वृद्धिमें अपकर्ष न करे; कारण कि वह महागुरु नहीं है, उसमें उससे ऊर्ध्वोंके निमित्त वृद्धिश्राद्ध होता है, यह श्राद्धचंद्रिकामें लिखा है, सो यथार्थ नहीं है; कारण कि 'भ्राता च' इत्यादिमें गुरुके अभावमें भी अपकर्ष लिखा है, इससे निर्देश उपलक्षण है। व्याघ्रने लिखा है कि कुलके धर्म असंख्य हैं और पुरुषोंकी अवस्थाका क्षय है और शरीर अनित्य है, इससे बारहवां दिन श्रेष्ठ है। यह अशौचांतदिनका उपलक्षण है, कारण कि निर्णयामृतमें कात्यायनका वाक्य है कि सब वर्णोंमें अशौचके पीछे सपिंडी करे। 'सब वर्णोंके' यह वाक्य त्रैवर्णिकके विषयमें लिखे हैं और शूद्रोंके तो अशौचके मध्यमें होता है; कारण कि विष्णुने कहा है कि शूद्रोंकी सपिंडी मंत्रोंसे रहित बारह दिनमें लिखी है, यह भी दर्शश्राद्धके अधिकारी शूद्रके विषयमें है, यह अपरार्क और कल्पतरुमें कहा है। वृद्धमनुने लिखा है कि ब्राह्मणोंके बारह दिनमें, राजाओंके अशौचके अन्तमें, वैश्योंके त्रिपक्षआदिमें सपिंडीकरण होता है। निर्णयामृतमें गोभिलका वाक्य है कि बारह दिन आदि कालमें यदि प्रमादसे न किया हो वह आगेके कालोंमें सपिंडी करे, यह साग्निके कहे समयमें असम्भव होनेपर गौणकालमें करनेके निमित्त है, यह मदनपारिजातमें लिखे हैं। मदनरत्नमें भी इसी

श्राद्धमुक्तकाले न चेत्कृतम्। रौद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रभे वा समाचरेत् ॥ कालादर्शेऽपि-"एकादशे द्वादशेऽह्नि त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा। षष्ठे चैकादशे वाब्दे संपूर्णे वा शुभागमे ॥ सपिंडीकरणस्येत्थमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः। साग्नौ कर्तर्युभावाद्यौ प्रेते साग्नौ तृतीयकः ॥ अनग्नेस्तु द्वितीयाद्याः सप्त काला मुनीरिताः। रोहिणीरौद्रहस्तेषु मैत्रभे वापि तच्चरेत् ॥" नारदसंहितायां तु-"सपिंडीकरणं कार्यं वत्सरे वार्धवत्सरे। त्रिमासे वा त्रिपक्षे वा मासि वा द्वादशेऽह्नि वा ॥" इत्युक्तम्। वत्सरेऽतीतेऽपि ज्ञेयम्। 'ततः सपिंडीकरणं वत्सरात्परतः स्थितम्।' इति भविष्योक्तेः। 'पितुः सपिंडीकरणं वत्सरादूर्ध्वतः स्थितम्।' इति नागरखण्डोक्तेः। 'पितुः सपिंडीकरणं वार्षिके मृतवासरे।' इत्युशनसोक्तेश्च।"पूर्णे संवत्सरे पिंडः षोडशः परिकीर्तितः। तेनैव च सापिंड्यं तेनैवाब्दिकमिष्यते।" इति हेमाद्रौ वचनाच्च। अस्यानाकरत्वोक्तिर्मूर्खोक्तिरेव। यत्तु-"पूर्णे संवत्सरे कुर्यात् सपिंडीकरणं सुतः। एकोद्दिष्टं च तत्रैव मृताहनि समापयेत् ॥" इति धवलनिबन्धे जाबाल्युक्तेः। "पुत्रः सपिंडनं कृत्वा कुर्यात्स्नानं सचैलकम्।"एकोद्दिष्टं ततः कुर्यात् कुतपं न विचारयेत् ॥" इति स्वल्पमात्स्योक्तेश्चाब्दिकं तद्दिने पुनः कार्यमिति केचित्। ते निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिविरोधाच्चोपेक्ष्याः ॥

प्रकार लिखा है। ऋष्यशृंगने लिखा है कि यदि सपिंडीश्राद्ध पूर्वोक्त समयमें न किया हो तो आर्द्रा, हस्त, रोहिणी, अनुराधा नक्षत्रमें करना चाहिये। कालादर्शमें भी कहा है कि ग्यारह वा बारह दिनमें, तीन पक्ष वा तीसरे, छठे वा ग्यारहवें महीनेमें, पूर्णवर्षमें वा श्रेष्ठमुहूर्त्तमें इस भांति सपिंडीके आठ समय लिखे हैं। अग्निहोत्री कर्ता हो तो प्रथम समय और प्रेत, कर्ता दोनों हों तो तीसरे समय होता है और अनग्निको तो दूसरे, आदि सात समय मुनियोंने लिखे हैं, अथवा रोहिणी, आर्द्रा, हस्त, अनुराधामें उस सपिंडीको करे। नारदसंहितामें तो वर्ष वा अर्धवर्षमें, तीन महीने वा त्रिपक्षमें वा बारह दिनमें सपिंडी करे, यह लिखा है। वह वर्ष समाप्त होनेपर भी जानना; कारण कि भविष्यपुराणमें लिखा है कि सपिंडीकरण वर्षसे आगे स्थित जानना। और नागरखंडमें भी लिखा है कि पिताकी सपिंडी वर्षके आगे करे। और उशनाने भी लिखा है कि पिताकी सपिंडी संवत्सर पूर्ण होने पर मरणादिनमें करे और हेमाद्रिमें भी लिखा है कि पूर्णवर्षमें सोलहवां पिंड होता है, उससे ही सपिंडी और वार्षिक दोनों होते हैं यह आकर ग्रन्थोंमें नहीं है; ऐसा कहना मूर्खता ही है। जो किसीने यह लिखा है कि बेटा पूरे वर्षमें सपिंडी और उसी मरणादिनमें एकोद्दिष्ट पूर्ण करे, इस धवलनिबंधमें जाबालिके कथनसे और पुत्रको सपिंडी करके सचैल स्नान करना चाहिये, फिर कुतपका विचार न करे, इस स्वल्प मात्स्योक्तके कथनसे उसी दिन फिर वार्षिक करे, यह कोई लिखते हैं, वे निर्मूल होनेसे तथा हेमाद्रिके विरोधसे त्याग

षोडशत्वं च सपिण्डनस्य षोडशश्राद्धान्तर्भावपक्षे । स्मृत्यर्थसारे तु वर्षान्त्यदिने संवत्सरविमोक्षश्राद्धं सपिण्डनं च कृत्वा परेद्युर्मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम् । गौडा अप्येवमाहुः । तत्पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् । तच्च पुत्रे सति नान्यः कुर्यात् । "श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नतु कुर्यात्सपिंडताम् । प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि ॥" इति वायवीयोक्तेः षोडशश्राद्धानां वर्षादूर्ध्वं कालाभावेऽपि तान्यदत्त्वा न कुर्यात् । किं तु दत्त्वैव । तानि यदि कनिष्ठभ्रात्रादिना कृतानि तदा सपिंडनमेव कुर्यादित्यपरार्कः । सपिंडने तु कनिष्ठानां नैवाधिकार इत्यर्थः । तत्रैव-"अज्ञानादथवा मोहान्न कृता चेत्सपिण्डता । तत्रापि विधिवत्कार्या कालादपि चिरादपि ॥" तेष्वपि ज्येष्ठस्यैवाधिकारः । 'ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्रीभवति मानवः' । इति मनूक्तेः । अपरार्के प्रचेता अपि-"एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्तु विधिवत्क्रियाः । कुर्यान्नैकैकशः श्राद्धमाब्दिकं तु पृथक्पृथक् ॥" मरीचिः-"सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण वाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥" यत्तु वाचस्पतिशूलपाणिभ्यामुक्तं द्रव्यदानानुमत्यभावे कनिष्ठैः पृथक्कार्यमिति।तन्न।एवकारस्य तदभावेऽपि पृथक्करणाभावार्थत्वात् । अन्धादेरिव ज्येष्ठे सति कनिष्ठानामनधिकाराच्च । अतस्तेषां प्रत्यवाय-

---

करने योग्य हैं । सोलह कहना तो उस पक्षमें है, जब सपिंडीको षोडशश्राद्धके अन्तर्गत मानते हैं । स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि वर्षके अन्त्यदिनमें संवत्सरविमोक्ष श्राद्ध और सपिण्डन करके अगले मरणादिनमें वार्षिक श्राद्ध करे । गौड भी ऐसे ही लिखते हैं, परन्तु वह पूर्वविरोध होनेसे त्यागने योग्य है और वह सपिण्डी पुत्रके होतें हुए अन्यको न करनी चाहिये, कारण कि वायवीयमें यह लिखा है कि विना किये परदेशसे आया पुत्र बहुतकाल बीतजाने पर भी सपिंडीका संपादन न करे । वर्षके उपरान्त षोडशश्राद्धोंको विना दिये वर्षके ऊपर समयके अभावमें भी सपिंडी न करे, किन्तु देकर ही करे, यदि छोटे भाई आदिने कर दिये हो तो केवल सपिंडी ही न करे, यह अपरार्कका कथन है । सपिंडीमें तो कनिष्ठोंका अधिकार नहीं क्योंकि वहां ही लिखा है कि अज्ञान वा मोहसे सपिण्डी न की हो तो बहुत कालमें भी विधिसे करनी, उनमें भी ज्येष्ठका ही अधिकार है, कारण कि ज्येष्ठके उत्पन्न होते ही मनुष्य पुत्रवान् होता है, यह मनुजी कहते हैं । अपरार्कमें प्रचेताने भी कहा है कि एकादशाहसे लेकर सम्पूर्ण कर्म ज्येष्ठको क्रमसे करने उचित हैं और उन पुत्रोंमें एक ही करे और वार्षिकको तो भिन्न भिन्नको करना चाहिये । मरीचिने तो यह लिखा है कि सबकी सम्मतिपूर्वक इकट्ठे द्रव्यसे बडेने जो कृत्य किया वह सबका किया होजाता है । वाचस्पति और शूलपाणिने जो यह लिखा है कि द्रव्य देनेकी सम्मति न हो तो छोटा भ्राता पृथक् करे, सो उचित नहीं कारण कि एवपद संमातेके अभावमें भी पृथक् न करे ऐसा अर्थ है, और अन्धोंकी तरह कनिष्ठोंको ज्येष्ठके होते हुए अधिकार नहीं हैं, इससे

---

१ सोलह श्राद्ध करने उपरान्त ही सपिण्डी करे, सोलह श्राद्ध न देकर सपिण्डी नहीं कर सकता ।

मात्रम् । आहिताग्निः कनिष्ठस्तु कुर्यादेव । अन्यथा पितृयज्ञासिद्धेः । एवमावश्यकवृद्धावपि कनिष्ठोऽन्यः सपिण्डो वा कुर्यात् । "भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः ॥ तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते ॥" इति मदनरत्ने लघुहारीतवचनात् । वृद्ध्यनन्तरं प्रथमाब्दमध्येऽपि काम्यं कुर्यात् । वृद्ध्यभावे तु प्रथमाब्दादूर्ध्वमेवेत्यर्थः । काम्योक्तेरनावश्यके इष्टापूर्तादौ नापकर्षः । एतद्भ्रातृपुत्रादिसंस्कारे प्राप्ताधिकारस्य नान्दीश्राद्धेऽधिकारार्थम् । अभ्युदयपदं च नान्दीश्राद्धनिमित्तकर्ममात्रपरमिति हेमाद्रिः । तेन ज्येष्ठे देशान्तरस्थे कनिष्ठः सपिण्डनं विनैव वृद्धिं कृत्वा पुत्रसंस्कारं कुर्यादिति श्रीदत्तोक्तिः परास्ता । भ्रातृशिष्याद्युक्तेर्नान्दीश्राद्धेऽर्थदेवतामात्रपरोऽपकर्ष इत्यपास्तम् । अस्य क्रममात्रपरत्वाद्वृद्धिकर्तैव सपिण्डनं कुर्यादिति न नियम इति गौडाः । अत एव कन्याया मातृमरणे भ्रात्रा सपिण्डने कृते पितुर्नाधिकारः । शूलपाणिस्तु—'महागुरौ प्रेतभूते वृद्धिकर्म न युज्यते ।' इति निषेधात् मृतस्य भ्रात्रादेः सपिण्डनं कृत्वा तत्पुत्रकन्यादेरभ्युदयं कुर्यान्नतु स्वपुत्रसंस्कारे संस्कार्यपितुः सपिण्डनं विना वृद्धौ दैवतात्वाभावादित्याह ।

छोटोंको पापमात्र होता है और आहिताग्नि हो तो छोटा भी करे, अन्यथा उसका पितृयज्ञ न हो सकेगा । इसी प्रकार आवश्यक वृद्धिको भी छोटा वा अन्य सपिंड करे; कारण कि यह मदनरत्नमें लघुहारीतने कहा है कि भाई, भाईका पुत्र, सपिण्ड, शिष्य सपिण्डी करके अभ्युदय श्राद्ध करे और वैसे ही पहले वर्षको त्यागकर काम्यश्राद्ध करना चाहिये । वृद्धिश्राद्धके उपरान्त पहले वर्षमें भी काम्यश्राद्ध करे और वृद्धिके अभाव होनेमें तो पहिले वर्षके उपरान्त ही करे । काम्यश्राद्ध कहनेसे अनावश्यक इष्टापूर्त्त आदिमें अपकर्ष नहीं है, यह भी भाईके पुत्र आदिके संस्कारमें जिसको अधिकार कहा है उसको नान्दीश्राद्धके अधिकार निमित्त है और अभ्युदय पद नान्दीमुख श्राद्धके निमित्त सम्पूर्ण कर्मोंका बोधक है, यह हेमाद्रि कहते हैं । इससे यह श्रीदत्तका कथन परास्त होता है कि बडा भाई देशान्तरमें हो तो कनिष्ठको सपिण्डीके विना ही वृद्धिश्राद्ध करके पुत्रका संस्कार करना चाहिये और भ्रातृशिष्य आदिके कहनेसे यह परास्त हुआ कि नान्दीश्राद्धमें पूजने योग्य देवतामात्रमें अपकर्ष होता है । गौड तो यह लिखते हैं कि यह वचन क्रममात्रका जनानेवाला है, इससे वृद्धिश्राद्धके करनेवालेको ही सपिण्डी करनी चाहिये यह नियम नहीं है । इसीसे माताकी मृत्युमें भ्राता सब सपिंडी कर ले तब पिताके कन्यादान करनेका अधिकार नहीं है । शूलपाणिने तो यह कहा है कि महागुरु (बड़े भ्राता) की मृत्यु होनेपर वृद्धि कर्मकी पूजा नहीं होती, इस निषेधसे मृतक भाई आदिकी सपिंडी करके उसके पुत्र और कन्या आदिका अभ्युदय करना चाहिये, जब अपना पुत्र संस्कार करे तो संस्कार करनेयोग्य पिताकी सपिंडीके विना वृद्धिश्राद्धमें देवता नहीं हो

---

१ एकादशाहादि करके फिर यथाविधि अग्निमान् पुत्र मातापिताकी सपिंडी करे, परन्तु पडी किये विना अग्निमान् पुत्र पितृयज्ञ नहीं कर सकता ।

तन्न । देवताप्रयुक्तापकर्षस्य निरस्तत्वात् । वृद्धिं विना कनिष्ठेन कृते तु विदेशस्थेन ज्येष्ठेन पुनः कार्यम्-"यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु । तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः ॥" इति स्मृतेः । 'ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन सपिंडीकरणे कृते ।' आद्यपादे 'मातापित्रोः कनिष्ठेन' इति वा पाठः । "देशान्तरगतानां च पुत्राणां तु कथं भवेत् । श्रुत्वा तु वपनं कार्यं दशाहान्तं तिलोदकम् ॥ ततः सपिंडीकरणं कुर्यादेकादशेऽहनि । द्वादशाहे न कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" इति वचनाच्चेति भट्टाः । सिङ्गाभट्टीयेऽप्येवम् । पूर्ववचनेऽत्र च मूलं चिन्त्यम् । स्मृत्यर्थसारे तु-'विभक्ता ऋद्धिकामाश्चेत्पुत्राः पृथक्सपिंडीकरणं कुर्युः' इत्युक्तम् । अत्र दत्तकस्य तत्पुत्रादीनां विशेषः प्रागुक्तः । केचित्तु वृद्धिं विनापि कनिष्ठस्य सपिण्डनमाहुः । मातापित्रोर्मृते काले ज्येष्ठे देशान्तरसंस्थिते । कनिष्ठेन प्रकर्तव्यं सपिण्डीकरणं तथा ॥" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः । "गते वा रोधिते ज्येष्ठे पित्रा वा प्रेषिते सति । षण्मासान्न निवर्तेत तदा कार्यं कनीयसा ॥" संवर्तः- "पुनः सपिण्डीकरणं श्राद्धं पार्वणवच्चरेत् । अर्घ्यसंयोजनं नैव पिण्डसंयोजनं न च ॥" इति । तेषां वचसां निर्मूलत्वात्, 'प्रोषितावसिते पुत्रे' इत्यादिविरोधाच्चोपेक्ष्याः । व्युत्क्रममृतौ तु हेमाद्रौ ब्राह्मे-" मृते पितरि यस्याथ विद्यन्ते च पितामहाः । तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥ तेभ्यश्च पैतृकः

सकता, सो उचित नहीं; क्योंकि देवताके किये अपकर्षका (पूर्व) खण्डन कर चुके हैं । यदि वृद्धिश्राद्धके विना छोटेने सपिंडी कर दी हो तो परदेशमें स्थित बड़ा फिर सपिंडी करे, कारण कि यह स्मृतिमें लिखा है कि छोटे भ्राताके किये कर्मको प्रेतशब्दको छोड़कर बड़ा भ्राता फिर सपिंडीको करे। ज्येष्ठ वा कनिष्ठ भ्राता सपिंडी कर ले, वह कनिष्ठ माता पिताकी सपिंडी कर ले ऐसा भी पाठ है तो देशान्तरके रहनेवाले पुत्र कैसे करें ? तो वे सुनकर मुण्डन करावें और दश दिनतक तिलांजलि दें, फिर ग्यारहवें बारहवें दिनमें सपिण्डी करें यह शातातपने लिखा है, इससे भी वह उचित नहीं यह भट्ट लिखते हैं। सिंगाभट्टीयमें भी इसी प्रकार लिखा है, पूर्व और इस वाक्यमें मूल नहीं है । स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि पृथक् हुए पुत्र वृद्धिकी इच्छा करें तो पृथक् सपिंडी करें, इसमें दत्तक और उसके पुत्रआदिकोंका विशेष प्रथम कह आये हैं । कोई तो वृद्धिके विना भी कनिष्ठको सपिंडी करनेका विधान कहते हैं; कारण कि कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखा है कि ज्येष्ठ पुत्र कहीं गया हो वा बंधनमें हो वा पिताने कहीं भेजा हो और छे महीनेतक न आवे तो छोटा भाई सपिंडी कर ले । संवर्तने कहा है कि फिर सपिंडी श्राद्धको पार्वणके समान करे, अर्घ और पिंडोंको न मिलावे, उन वाक्योंके निर्मूल होनेसे और पूर्वोक्त 'प्रोषितावसिते पुत्रे' इत्यादि वाक्योंके विरोधसे उपेक्षा करनेके योग्य हैं । क्रमसे मृत्यु न होनेमें तो हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि जिसका पिता मृतक हो गया हो और पितामह जीवित हो वह प्रपितामहसे लेकर प्रारम्भ कर

पिण्डो नियोक्तव्यस्तु पूर्ववत् । मातर्यथ मृतायां च विद्यते च पितामही ॥ प्रपितामहीपूर्वस्तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः ॥" एवं प्रपितामहजीवने तत्पित्रादिभिर्ज्ञेयम् । तदाह सुमन्तुः–" त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥" यत्तु–' व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ।' इति, तन्मातापितृभर्तृभिन्नविषयम् । "व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिष्यते । यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः ॥" इति माधवीये स्कान्दोक्तेः । मदनरत्नादौ चैवम् । अत्र 'प्रपितामहादिभिः पितुः सपिण्डने कृते पितामहे मृते तत्सपिण्डने सति पुनस्तेन सह पितुः सपिण्डनं कार्यम्' इति हेमाद्रिर्मतमाह । अन्ये नैव तन्मन्यन्ते । तत्त्वं तु पितुः सपिण्डनाभावे पितामहेन सह पुनः कार्यं न तत्सत्त्वे । "त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥" इति विष्णुधर्मोक्तेः । पितामहे प्रपितामहे वा पुत्रान्तरैरसंस्कृतेऽप्यसंस्कृताभ्यामेव पितुः सपिण्डनं कुर्यात् । "असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकौ । पितरं तत्र संस्कुर्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ " इति छन्दोगपरिशिष्टात् ।

तीन पिण्ड दे और उनमें पूर्वके तुल्य पिताके पिण्डको मिला दे और माताकी मृत्यु हुई हो और दादी जीती हो तो परदादी आदिको देना । और ऐसे ही परदादाके जीते हुए उनके पिताआदिमें जानना चाहिये । सुमन्तुने लिखा है कि तीन पिंडोंमें एकके संग सपिण्डी होनेपर भी प्रेत पितर होता है, यह धर्मकी व्यवस्था है । और जो किसीने यह कहा है कि क्रमरहित मरोंकी सपिण्डी न करे, वह माता, पिता और पतिसे भिन्नके विषयमें है; क्योंकि माधवीयमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि व्युत्क्रमसे मृतकोंकी सपिण्डी इष्ट नहीं है, यदि पिता माता पति मृतक हुए हों तो यह विधि नहीं है । मदनरत्नआदिमें भी इसी प्रकार लिखा है। यहाँ हेमाद्रिने यह बात लिखी है कि प्रपितामहआदिके संग पिताकी सपिण्डी करने उपरान्त पितामहकी मृत्यु होनेपर पितामहकी सपिण्डीके पीछे फिर पितामहके संग पिताकी सपिण्डी करे, परन्तु दूसरे कोई इस मतको स्वीकार नहीं करते । सिद्धान्त तो यह है कि यदि पिताकी सपिण्डी न हुई हो तो दादाके संग फिर करे, यदि हुई हो तो न करना; कारण कि यह विष्णुधर्मका वचन है कि तीनं पिण्डोंके बीचमें एकके संग भी सपिंडी होनेपर प्रेत पितर होता है, यह धर्मकी व्यवस्था है । पितामह वा प्रपितामहका अन्य पुत्रोंने संस्कार न किया हो तो संस्कारविना ही उनके संग पिताकी सपिंडी करनी; कारण कि छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि प्रथम संस्कार न किये हुए पोते और परपोतेका संस्कार न करे और पिताका तो संस्कार असंस्कृत हुएका भी कर दे, यह कात्यायनने लिखा है । कोई असंस्कृत

असंस्कृतौ दाहाद्यैरिति केचित्. । सपिण्डीकृताविति तु तत्त्वम् । अत एवोक्तं तत्रैव— "पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा । पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः॥" पापिष्ठमकृतसपिण्डनं न तु पतितादि।'अभिशस्तपतितभ्रूणघ्नाः स्त्रियश्चातिचारिणीर्न संसृजेत्' इति बैजवापोक्तेः।'पापकर्मिणो न संसृजेरन्' इति गौतमोक्तेश्चेत्युक्तं निर्णयामृते । पूर्वयोः पुत्राभावे तु पौत्रः कुर्यादेव । "पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति।पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम्॥नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः । पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम्॥"इति कात्यायनोक्तेः अपरार्के शूलपाणौ चैवम् । तेन सपिण्डनस्यानित्यत्वादकृतसापिण्डनयोरेव पार्वणानुप्रवेश इति मूर्खोक्तिः परास्ता । 'कृते सपिंडीकरणे प्रेतः पार्वणभाग्भवेत् ।' इति हारीतविरोधाच्च केचित्पुत्रान्तराभावे पितामहवार्षिकमप्याहुः । तन्न । श्राद्धषोडशमिति निगमात् । इच्छया भवत्येव । 'पितामहस्य चेद्दद्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ।' इति वाचस्पतिधृतगर्गोक्तेः । त्रयाणां यौगपद्ये तु प्राधान्यात्पितुः सपिण्डनं कृत्वा पूर्वयोः कुर्यात् । पितामहे मृते दशाहान्तः—पितुर्मृतौ पितुः संस्कारं कृत्वा पितामहस्य पुनः

पदसे दाहआदि संस्कार न होना कहते हैं। सपिंडी हो गयी हो तो यह सिद्धान्त है । इसीसे वहाँ ही लिखा है कि पापी भी शुद्धके संग वा पापीके संग शुद्धका संस्कार होनेसे पवित्र होता है, इससे दादाके संग पिताका संस्कार करे । यहाँ पापीपदसे वह ग्रहण करना जिसकी सपिंडी न हुई हो और पतितआदिका ग्रहण नहीं है; कारण कि बैजवापने कहा है कि शापित, पतित, भ्रूणहत्यारे और व्यभिचारिणी स्त्रीकी सपिंडी न करे । और गौतमने भी कहा है कि पापकर्मियोंकी सपिण्डी न करे, यह निर्णयामृतमें लिखा है । पहले दोनोंके पुत्र न हों तो पौत्र सपिंडी करे; कारण कि कात्यायनने कहा है कि पिताके पीछे पितामहकी मृत्यु हो तो पौत्र एकादशाह आदि षोडश श्राद्ध करे, यदि दादा पुत्रवाला हो तो पौत्र न करे, किन्तु पुत्र पिताकी सपिंडी करके मासिक आदि श्राद्ध करे । अपरार्क और शूलपाणिमें भी इसी प्रकार लिखा है, इससे यह मूर्खका कथन परास्त हुआ कि सपिंडी अनित्य है, इससे "जिनकी सपिंडी न हुई हो उनका ही पार्वणमें प्रवेश है और इस हारीतऋषिके वाक्यका भी विरोध है कि सपिण्डी करनेपर प्रेत पार्वणका भागी होता है । कोई और पुत्र न हो तो पितामहके वार्षिकको भी लिखते हैं, सो ठीक नहीं, क्योंकि वहां सोलह श्राद्ध होते हैं, यह नियम है । इच्छापूर्वक तो श्राद्ध होता ही है, कारण कि वाचस्पतिमें गार्ग्यका वाक्य कहा है कि, पितामहको श्राद्ध दे तो एकोदिष्ट दे, पार्वण न देना चाहिये । यदि तीनों एक बार मृतक हों तो प्रधान होनेसे पिताकी सपिंडी सम्पादन कर उन दोनोंकी करे । पितामहकी मृत्यु होनेपर दश दिनके भीतर पिताकी मृत्यु

सर्वमावर्तयेत् । वृत्ते दशाहे नैवम् । अशक्त्या पित्रानुज्ञातेन पौत्रेण पितामह-श्राद्धे प्रक्रान्ते पितृमृतौ तदाशौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहकर्म कुर्यात्प्रक्रान्तत्वा-दिति मदनपारिजातपृथ्वीचन्द्रौ । यत्तु-"उत्तरात्रितयरौद्ररोहिणीयाम्यसर्प-पितृभेषु चाग्निभे । श्मश्रुकर्म सकलं च वर्जयेत्प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः ॥" इति सपिण्डनप्रकरणे पाठान्मुख्यकाले निषिद्धर्क्षे सपिण्डनापकर्षः । सर्वकालेषु तद्वत्त्वे तद्वर्ज्यान्येव । पूर्वोक्तब्राह्मोक्तानि षोडशश्राद्धानि कार्याणीति वाचस्पति-मिश्राः, तन्न । अस्य परिभाषात्वेन वाक्यात्सावकाशकर्मपरत्वात् । अस्य प्रेतमात्रदैवत्यभावाच्च । अथ स्त्रीणां सपिण्डननिर्णयः । स्त्रीषूच्यते हेमाद्रौ बृहस्पतिः-"भर्तृगोत्रेण नाम्ना च मातुः कुर्यात्सपिण्डनम् ।" यत्तु भविष्ये-"पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः ।" इति, तदासुरादिविवाहोढापरम् । "आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ।" इति वृद्धशातातपोक्तेः । तच्चानेकवच-नेषु पितामह्याः पत्या मातामहेन वा सहोक्तम् । तत्र व्यवस्थोक्ता भविष्ये-"जीवत्पिता पितामह्या मातुः कुर्यात्सपिण्डनम् । प्रमीतपितृकः पित्रा तत्पित्रा पुत्रिकासुतः ॥" तत्पित्रा मातुः पित्रा । लौगाक्षिः-"पितामह्यादिभिः सार्धं

हो जांय तो पिताका संस्कार करके फिर पितामहके सब कर्मको करे, परन्तु दश दिन बीत गये हों तो इस प्रकार न करना । अशक्तिमें पिताकी आज्ञासे करना चाहिये, इससे पौत्रने पितामहके श्राद्धका प्रारम्भ कर दिया हो तो पौत्र पिताके अशौचमें ही दादाके कर्म करे; कारण कि उसका आरम्भ हो चुका है, यह मदनपारिजात और पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है । और जो यह वाचस्पतिने लिखा है कि तीनों उत्तरा, आर्द्रा, रोहिणी, भरणी, आश्लेषा, मघा और कृत्तिकामें बुद्धिमान् मनुष्य क्षौर और प्रेतकर्मको न करे, इस वाक्यसे मुख्य-कालमें निषिद्ध नक्षत्र हों तो सपिंडीका अपकर्ष होता है, सब कालमें निषिद्ध नक्षत्र हों तो सपिंडीसे पृथक् ही पूर्वोक्त ब्राह्मणोक्त षोडश श्राद्धोंको करे, यह वाचस्पतिमिश्र कहते हैं, सो यथार्थ नहीं; कारण कि इस वाक्यके पारिभाषिक होनेसे सावकाशकर्मकी विषयता प्राप्त है और सपिंडीमें प्रेतमात्रको देवत्वका भाव है । अब स्त्रियोंके विषयमें वर्णन करते हैं-हेमाद्रिमें बृहस्पतिने लिखा है कि पतिके गोत्र और नामसे माताकी सपिंडी करे और जो भविष्यपुराणमें कहा है कि पिताके गोत्रको त्यागकर पतिके गोत्रसे न करे, वह उस माताके विषयमें है जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाही गयी हों; कारण कि बृहत्शातातपने कहा है कि धर्म जाननेवाला असुर आदि बिवाहोंमें पिताके गोत्रसे सपिंडी करे, वह सपिंडी अनेक वचनोंमें दादीपति वा नानाके संग लिखी है । उसकी व्यवस्था भविष्यपुराणमें कही है कि जिसका पिता जीवित हो वह माताकी सपिंडी पितामहीके संग करे और पिता मृतक हो गया हो तो पिताके वा नानाके संग करे । लौगाक्षि कहते हैं कि यदि पिता जीवित

मातरं तु सपिण्डयेत् । पितरि भ्रियमाणे तु तेनैवोपरते सति ॥" शंखः—"मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः । पितामह्यादिभिः सार्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥" येन केनापि मातुः सापिण्डये यत्रान्वष्टकादौ मातुः श्राद्धं पृथगुक्तं तत्र पितामह्या सह कार्यम् । "नान्दीमुखेऽष्टकाश्राद्धे गयायां च मृतेऽहनि । पितामह्यादिभिः सार्धं मातुः श्राद्धं समाचरेत् ॥" इति शातातपोक्तेः । अपुत्रायां तु पैठीनसिः—"अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डनम् । श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ॥" यत्तु लघुहारीतः—"पुत्रेणैव तु कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोऽपि ये ॥" इति । यच्च मार्कण्डेयपुराणे—'सपिण्डीकरणं स्त्रीणां पुत्राभावे न विद्यते ।' इति, तत्पुत्रपत्यभावे ज्ञेयम् । अत्र सपत्नीपुत्रोऽपि ज्ञेयः । "बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥" इति मनूक्तेरेतत्परत्वात् । यत्तु शातातपः—"मृते पितरि मातुस्तु न कार्या सहपिण्डता । पितुरेव सापिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत् ॥" इति तदशक्तपरम् । केषांचिद्वा मतमिति हेमाद्रिः । अन्वारोहणे तु भर्त्रैव सापिंड्यम् । "मृता यानुगता नाथं सा तेन सहपिण्डताम् । अर्हति स्वर्गवासं च यावदाभूतसंप्लवम् ॥" इति शातातपोक्तेः । "पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डी-

---

हो तो पितामही आदिके साथ माताकी सपिंडी करे और मरा हो तो उसीके साथ करे । शंखका कथन है कि पुत्र माताकी सपिंडी किस प्रकार करे ? तो पितामही आदिके संग सपिंडीकरण लिखा है । जिस किसीके संग माताकी सपिंडी हो तो अन्वष्टका आदिमें माताका श्राद्ध भिन्न लिखा है, वहां पितामहीके संग करना चाहिये; कारण कि शातातपने कहा है कि नान्दीमुख, अष्टकाश्राद्ध, मरणदिन और गयामें माताका श्राद्ध पितामही आदिके संग करना । पुत्र न हो तो पैठीनसिस्मृतिमें कहा है कि पुत्ररहित माता मृतक हो जाय तो पति सासआदिके संग सपिण्डी करे । जो लघुहारीतका यह वचन है कि स्त्रीकी सपिण्डी पुत्र ही करे और पुरुषकी तो भाईके पुत्र आदि और भी करें । और जो मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि पुत्रके अभावमें स्त्रियोंकी सपिण्डी नहीं होती, वे वाक्य पुत्र और भर्ताके अभावमें जानने चाहिये । यहां सपत्नीका पुत्र भी मानना चाहिये; कारण कि इसमें मनुका प्रमाण है कि एकको ही बहुत पत्नी हों उनमें एक पुत्रवाली हो तो वे सब उस पुत्रसे पुत्रवाली हैं । यह मनुने कहा है । जो शातातपने लिखा है कि पिताके मरनेपर माताकी सपिण्डी न करनी; कारण कि पिताकी सपिण्डीसे ही उसकी सपिण्डी हो गयी, वह अशक्तके विषयमें है, वा किसी किसीका सम्मत है, यह हेमाद्रि लिखते हैं । अन्वारोहणमें तो पतिके संग ही सपिण्डी होती है; कारण कि शातातपने कहा है कि स्त्री मरकर अपने स्वामीके संग सपिंडी तथा प्रलय-

करणं स्त्रियाः । सा मृतापि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः ॥" इति यमोक्तेश्च । अत्रैकशब्दः पितामह्यादिपक्षनिवृत्त्यर्थः । पतिपदं वर्गपरम् । सपिण्डनस्य पार्वणैकोद्दिष्टरूपत्वादिति माधवकल्पतरुमदनरत्नादयः । अन्ये तु भर्त्रैवैकेनाहुः । 'स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ।' इत्येवकारश्रवणात् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि विकल्प उक्तः । इदं तु तत्त्वम् । यदा हेमाद्र्यादिमते द्वयोरेकः पिण्डस्तदा वर्गेण सह । यदा माधवपृथ्वीचन्द्रादिमते पृथक् पिण्डस्तदैकेन पत्यैकवचनाच्चैकेनापि । अतो मातृपिण्डमसापिण्डीकृतेनैव पतिपिण्डेन संयोज्यैकीकृतं पिण्डद्वयं तत्पित्रादिभिः संयोजयेत् । अन्त्यपक्ष एव युक्तः । स्मृत्यर्थसारे तु-' अन्वारोहणेनैकदिनमरणे स्त्रियाः पृथक् सपिण्डनं नास्ति । भर्तुः कृते स्त्रिया अपि कृतं भवति इत्युक्तम् । तन्मतान्तरमस्तु । इदं ब्राह्मादिविवाहेषु ज्ञेयम् । आसुरादिषु तु शातातपः-" तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छ्वश्र्वा वा सपिण्डनम् । आसुरादिविवाहेषु विन्नानां योषितां भवेत् ॥ " मातामह्या मातुः पितामह्या तत्प्रपितामह्या चेत्यर्थः । सुमन्तुः-" पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः । माता मातामहे

पर्यन्त स्वर्गनिवासके योग्य होती है । यमने कहा है कि एक भर्ताके संग ही स्त्रीकी सपिंडी करे; कारण कि वह मृतक होकर भी पतिके संग ही मन्त्रोंकी आहुति और व्रतोंसे एकताको प्राप्त हुई है । यहां 'एक' शब्द पितामही आदिके संग करे, इस पक्षकी निवृत्तिके निमित्त है । पतिपद पतिके कुलका पक्ष है; कारण कि सपिंडी, पार्वण और एकोद्दिष्ट रूप है, यह माधव, कल्पतरु और मदनरत्न आदिका मत है । और तो एकपतिके संग ही लिखते हैं; कारण कि पतिके संग ही इसकी सपिंडी होती है, इस वाक्यमें 'एव' (ही) पद सुना है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी विकल्प लिखा है । सिद्धान्त तो यह है कि जब हेमाद्रि आदिके मतसे दोनोंको एक पिंड दिया जाय तब पतिकुलके संग और माधव पृथ्वीचन्द्र आदिके मतसे पृथक् पिंड दिया जाय तब एकपतिके संग ही सपिंडी करनी चाहिये, और वचनसे भी एकके संग सपिंडी प्राप्त होती है, इससे माताके पिंडको असपिंडी किये हुए पतिपिंडके संग मिलाकर एक किये हुए दोनों पिण्डोंको दादा आदिके संग मिला दे, इन दोनोंमें पिछला पक्ष ही योग्य (उचित) है । स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखते हैं कि सती होनेमें और स्त्री पुरुष एक दिन मृतक हुए हों तो स्त्रीकी सपिंडी नहीं होती, क्योंकि पतिके सपिंडी करनेसे स्त्रीकी भी हो जाती है, वह भी मतांतर विद्यमान रहे, यह ब्राह्मआदि विवाहोंमें जानना चाहिये और आसुर आदि विवाहोंमें तो शातातपने कहा है कि माता, पितामही, सासके संग उन स्त्रियोंकी सपिंडी होती है, जो आसुर आदि विवाहोंसे परिणीत हो अर्थात् मातामही और माताकी पितामही वा प्रपितामहीके संग सपिंडी करनी । सुमंतुने कहा है कि पूर्ण

तद्धदित्याह भगवाञ्शिवः ॥" इदमासुरादिपरं पुत्रिकापुत्रपरं चोक्तं प्राक् । हेमाद्रिस्तु ब्राह्मादिष्वपि सर्वत्र देशभेदाद्विकल्पमाह । अतो गुर्जरेषु कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति श्राद्धप्रयोगसपिण्डने च दृश्यते । हेमाद्रावापस्तम्बोऽपि- "कोकिलस्य यथा पुत्रा अन्यसंचयजीविनः । पुष्टास्ते स्वकुलं यान्ति एवं नारी मृता सती ॥" यदपि विज्ञानेश्वरो मातामहेन मातुः सापिण्ड्ये पितृश्राद्धवन्मातृश्राद्धं नित्यमित्याह । यच्च वृद्धिश्राद्धे छन्दोगपरिशिष्टे–' षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ' इति, तदेतद्विषयमेव । मातुः पृथक्श्राद्धाभावात् । अत एव हेमाद्रौ भविष्ये मातुः सपिंडनं प्रक्रम्य–"उदितेऽनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत् । तथा कुलक्रमायातमाचारं च चरेद्बुधः ॥"इत्युक्तम् । अस्य वृद्धावपवादमाह तत्रैव व्याघ्रपात्–"कुर्यान्मातामहश्राद्धं सर्वदा मातृपूर्वकम् । विधिज्ञो विधिमास्थाय वृद्धौ मातामहादिवत् ॥"केचिदेतत्पुत्रिकापुत्रपरमाहुः । पत्युः सापिंड्यमाह लौगाक्षिः–"सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम् । सपिंडीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥" इति । यत्तु वचनम्–'अपुत्रस्य परेतस्य नैव कुर्यात्सपिंडताम् ।' इति । यच्चापस्तम्बः–"अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा । तेषां सपिंडनाभावादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥"

वर्षमें पुत्र पिताको पितामहमें माताको मातामहमें मिलावे, यह भगवान् शिवने कहा है, परन्तु यह आसुर आदि विवाहोंमें और पुत्रिकाके पुत्रमें है, यह प्रथम कह आये हैं । हेमाद्रिने तो ब्राह्मआदि विवाहोंमें भी विहित है, तो भी सर्वत्र देशभेदसे विकल्प लिखा है, इसीसे गुर्जरोंमें जो कोकिलमतके अनुसरण करनेवाले हैं उनका यह श्राद्धप्रयोग है कि माता, मातामह, प्रमातामह और इनका श्राद्धप्रयोग और सपिंडीकरण भी देखते हैं । हेमाद्रिमें आपस्तंबका भी वचन है कि जैसे औरके संचयसे कोकिलके पुत्र पुष्ट हुए अपने कुलमें जाते हैं, उसी प्रकार मरकर सती नारी पतिलोकको जाती है । और जो विज्ञानेश्वरने मातामहके संग माताकी सपिंडीमें पितृश्राद्धके समान माताका श्राद्ध नित्य लिखा है । और जो वृद्धिश्राद्धमें छंदोगपरिशिष्टका वचन है कि उसके पीछे छः पितरोंके लिये श्राद्ध देनेका प्रारम्भ करे वह उसी विषयमें है; कारण कि माताका पृथक् श्राद्ध नहीं हो सकता, इसीसे हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य माताके सपिंडीप्रकरणमें लिखा है कि उदित और अनुदित सूर्यमें जैसे होमका भेद होता है वैसे ही कुलके क्रमसे चले आये आचारको बुद्धिमान् मनुष्य करे । वृद्धिमें इसका अपवाद वहां ही व्याघ्रपादने लिखा है कि मातामहका श्राद्ध सदा मातृपूर्वक करे और विधिका ज्ञाता विधिसे वृद्धिश्राद्धमें मातामहके क्रमसे करे । कोई इस वाक्यको पुत्रिकाके विषयमें लिखते हैं । पतिकी सपिंडी लौगाक्षिने लिखी है कि सबके अभावमें पत्नियाँ स्वयं अपने भर्ताओंकी सपिंडी विना मंत्रके करें और फिर पार्वण करें । और जो यह वाक्य है कि मरे हुए पुत्रहीनकी सपिण्डी न करे । और जो आपस्तम्बने कहा है कि जो पुत्रहीन स्त्री वा पुरुष मृतक हुए हैं उनकी सपिण्डीके अभावसे एकोद्दिष्ट होता है, पार्वण नहीं

इति, तत्पुत्रोत्पादनविधिप्रशंसार्थमिति माधवः । " सपिंडीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥" इति हेमाद्रौ प्रचेतसोक्तेश्च । अन्ये तु द्विविधवाक्यदर्शनाद्विकल्पमाहुः । स्मृत्यर्थसारेऽपि–' ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च पिंडनं नास्ति, तेषां सदैकोद्दिष्टमेव, व्युत्क्रममृतानां सापिंड्यं कार्यं न वा । केचित्सर्वत्र सपिंडनमाहुरिति' । अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषो रेणुकाकारिकायाम्– "भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिंडः शिष्य एव च । सपिंडीकरणं कुर्यात्पुत्रहीने मृते सति ॥ सर्वबन्धुविहीनस्य पत्नी कुर्यात्सपिंडनम् । ऋत्विजं कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ॥ वसुरुद्रादितिसुतैः कार्या तेषां सपिंडता । व्युत्क्रमाच्च प्रमीता ये तद्विना प्रेततां ध्रुवम् ॥ पुनः सपिंडनं तेषां कुर्यात्प्रेते पितामहे ॥" इति । अत्र मूलं मृग्यम् । यतीनां सपिंडनं नास्ति किंत्वेकादशेऽह्नि पार्वणं कार्यम् । तदपि त्रिदण्डिनः । एकदण्ड्यादीनां तदपि नेत्युक्तं प्राक् । दण्डग्रहणात्पूर्वं मृते तु दाहादिसपिंडनान्तं सर्वं कार्यमिति भट्टचरणाः । सपिंडनविधिमाह बैजवापः–'समाप्ते संवत्सरे चत्वायु-

---

होता, वे वाक्य पुत्र उत्पन्न करनेकी अनेक प्रशंसाके विषयमें हैं, यह माधवका कथन है । और हेमाद्रिमें प्रचेताका भी कथन है कि जो सम्पूर्ण पुत्रहीन और पत्नीसे रहित हू उनकी सपिण्डी करनेके बाद एकोद्दिष्ट करे । और तो यह लिखते हैं कि दो प्रकारके वाक्य देखे जाते हैं इससे विकल्प है । स्मृत्यर्थसारमें भी लिखा है कि ब्रह्मचारी, और संततिहीनकी सपिंडी नहीं होती, इनका सदा एकोद्दिष्ट ही होता है । क्रमके विना जो मरे हैं उनकी सपिंडी करे, वा न करे । कोई तो सबकी सपिंडी करनी कथन करते हैं । अपुत्र और क्रमहीन मरेका विशेष रेणुकाकारिकामें लिखा है कि पुत्रहीन मरे तो भाई, भाईका पुत्र, सपिंड वा शिष्य सपिंडी करे और जिसके कोई बंधु न हो उसकी सपिंडी भार्या करे, अथवा ऋत्विज वा पुरोहित करे, क्रमहीनसे मरोंकी और पूर्वोक्तोंकी सपिंडी वसु, रुद्र, आदित्योंके संग करे और सपिंडी न करे तो निश्चय प्रेत होते हैं और पुनः उनकी सपिंडी दादाके संग करे, इन सपिंडीवाक्योंमें मूल नहीं मिलता । संन्यासियोंकी सपिंडी नहीं होती; किन्तु ग्यारहवें दिन पार्वण करना चाहिये, यह भी त्रिदण्डीके निमित्त है, एकदंडीके निमित्त तो वह भी नहीं है, यह प्रथम कह आये हैं । दण्डके लेनेसे प्रथम मर जाय

---

१ जिसका पिता मृतक हो गया हो पितामह जीवित हो वह पिताका नाम लेकर प्रपितामहका कीर्तन करे, ऐसा मनु कहते हैं । पिताका नाम लेकर पितरको देवतात्वसे निर्देश कर प्रपितामहको भी तीन दे । जिसका पिता प्रेत हो वह पिताके स्थानमें पिण्ड रखकर पितामहसे परे दे, ऐसा विष्णु कहते हैं । पितृस्थानपर पिण्ड रखकर पितामहसे आगे दोनोंको दे । व्युत्क्रमसे मरनेमें पुत्रको दशाहादिमें पितामहादिकोंका ही पार्वण करना चाहिये, जो तात ब्राह्मणादिसे हत पतित संगवर्जित हो व्युत्क्रमसे मरनेमें जिसके निमित्त देता हो, उसे दे, ऐसा कात्यायन कहते हैं ।

दपात्राणि प्रयुनक्ति, एकं प्रेताय, त्रीणि पितृभ्यः प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिंचति ये समाना० इति, द्वाभ्यामेव पिंडोऽथाभिमृशति । " एष वोऽनुगतः प्रेतः पितरस्तं ददामि वः । शिवं भवतु शेषाणां जायन्तां चिरजीविनः ॥" समानीवः संगच्छध्वं संवदध्वम् ।' इति । यद्यपि–' तत्रापि देवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥" इति मार्कण्डेयेनोक्तम् । तथापि–" सपिंडीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत्' इत्यादिविरोधाद्विकल्पः प्रेतांशे वा ज्ञेयम् । अत्र कामकालौ वैश्वदेवावपीत्युक्तं प्राक् । मैत्रायणीयपरिशिष्टे–' पित्र्यविप्रकरे होमः साग्नेरपि भवेदिह । ' यत्तु गोभिलः–" 'अनुक्तकालेष्वपि तु व्युत्क्रमेण मृतावपि आमेन वापि सापिण्ड्यं हेम्ना वापि प्रकल्पयेत् ॥ " इति, तदापदि मातापितृभिन्नपरम् । ' आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ।' इति तेनैवोक्तेः । शुद्धितत्त्वे कामधेनौ च लघुहारीतः–" सपिंडीकरणं यावत्प्रेतश्राद्धं तु षोडशम् । पक्वान्नेनैव कर्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः ॥ " विश्वप्रकाशे–" प्रेतः सपिंडनादूर्ध्वं पितृलोकेऽनुगच्छति । कुर्यात्तस्य तु पाथेयं द्वितीयेऽह्नि सपिंडनात् ॥" स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् । ततो वृद्धिश्राद्धं कुर्यात् । एतन्मलमासेऽपि कार्यम् ।

तो दाहसे लेकर सपिंडीपर्यन्त सब कर्म करना चाहिये, यह भट्टचरण कहते हैं । सपिण्डी-की विधि बैजवापने लिखी है कि वर्षकी समाप्ति होनेपर चार जलके पात्र रक्खे, एक प्रेतका और तीन पितरोंके । प्रेतके पात्रको पितरोंके पात्रोंमें 'ये समानाः०' इन दो ऋचाओंसे मिलावे, फिर पिंडोंको छूकर कहे कि हे पितरो ! यह प्रेत तुमको दिया, शेष रहे हुओंके मंगल हो और वे चिरजीवी हों और ये तुम्हारे संग मिलें । यद्यपि मार्कण्डेयने लिखा है कि वह सपिंडी विश्वेदेवाओंसे हीन, एक पवित्री और एक अर्घ्यवाली होती है और उसमें अग्नौकरण, आवाहन ये दोनों नहीं होते हैं । तथापि सपिण्डीश्राद्धको देवपूर्वक करना चाहिये इत्यादि वाक्योंके विरोधसे विकल्प है अथवा पूर्ववाक्य प्रेतभागमें जानना चाहिये । सपिण्डीमें कामकाल विश्वेदेवा होते हैं, यह पहले लिख आये हैं । मैत्रायणीयपरिशिष्टमें यह कहा है कि सपिंडीमें पितृब्राह्मणके हाथमें अग्निहोत्री भी होम करे । और गोभिलने कहा है कि अनुक्त समयमें व्युत्क्रमसे मरनेपर भी आम अन्नसे वा सुवर्णसे सपिंडी करे, वह आपत्तिमें माता पितासे भिन्नके विषयमें है; कारण कि उसने ही यह लिखा है कि आपत्तिमें भी कभी अमान्नसे श्राद्ध न करे । शुद्धितत्त्व और कामधेनुमें लघुहारीतका वचन है कि सपिंडीपर्यन्त षोडश प्रेतश्राद्ध मांससहित पक्वान्नसे द्विजाति करे । विश्वप्रकाशमें कहा है कि सपिंडीसे उपरान्त प्रेत पितृलोकमें गमन करते हैं, सपिंडीके दूसरे दिन प्रेतको पाथेय (मार्गका व्यय) करे । स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है । फिर वृद्धिश्राद्ध करे । यह मलमासमें भी करे; क्योंकि हेमाद्रिमें हारीतऋषिने कहा है कि अधिकमा-

---

१ "ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषाँल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ये समानाः सुमनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषाᳬश्रीर्मयि कल्पतामस्मिंल्लोके शतᳬसमाः॥" यजु० ।

" अधिमासे न कर्तव्यं श्राद्धमाभ्युदयं तथा। तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते ॥" इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः। इति भट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ सपिंडीकरणम्। अथ प्रथमाब्दे निषिद्धानि। हेमाद्रौ–"स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाग्नितर्पणम्। प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥" अन्यतर्पणमिति शुद्धितत्त्वे पाठः। अग्नितर्पणं लक्षहोमादि न त्वाधानम्। तत्तु प्रथमाब्दे भवत्येव। तदाह हेमाद्रावुशना–"पितुः सपिंडीकरणं वार्षिके मृतवासरे। आधानाद्युपसंप्राप्तावितस्मागपि वत्सरात् ॥" आदिपदं वृद्धिनिमित्तनित्यकर्मपरम्। दिवोदासीये–"महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च। संवत्सरं न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥" इदं श्राद्धकौमुद्यां देवीपुराणस्थमुक्तम्। गौडनिबन्धे मात्स्ये–" सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत्। वृद्धीष्टापूर्तयोग्यश्च गृहस्थश्च सदा भवेत् ॥" वर्षान्तसपिंडनाभावे नाधिकारीत्यर्थः। गृहस्थः सपिंडोऽपीत्यर्थः। अत एव–"प्रेतकर्माण्यनिवर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥" इति ज्योतिषे उक्तम्। माधवीये देवलः–"प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत्। न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥" इदं वर्षान्तसपिंडनपरम्। 'तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते।' इति लघुहारीताद्येकवाक्यत्वात्। वृद्धिनिमित्तापकर्षे तु काम्यादि भव-

---

समें वृद्धिश्राद्ध और इसी प्रकार काम्य कर्म पहले वर्षको छोडकर न करे। इति श्रीनिर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां सपिंडीकरणम् ॥ अब पहले वर्षमें निषिद्धोंको वर्णन करते हैं–हेमाद्रिमें कहा है कि महागुरुकी मृत्युमें स्नान, महादान, वेदपाठ, अग्नितर्पण (लक्षहोमादि) को पहले वर्षमें न करे। शुद्धितत्त्वमें तो अन्यका तर्पण करना, यह पाठ है। अग्नितर्पणसे लक्षहोम आदि मानते हैं, आधान नहीं। आधान तो पहले वर्षमें भी होता है, क्योंकि हेमाद्रिमें उशनाने लिखा है कि पिताकी सपिंडी मृत्युके दिन वर्षीके दिन करे, आधान आदि आ पड़े तो वर्षसे प्रथम भी करे। आदि पदसे वृद्धिके निमित्त नित्यकर्म ग्रहण करते हैं। दिवोदासीयमें कहा है कि महातीर्थमें गमन, उपवास, व्रत, महागुरुकी मृत्युमें वर्षदिनतक न करना चाहिये, यह श्राद्धकौमुदीमें देवीपुराणका वाक्य लिखा है। गौडनिबन्धमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि सापिंडिके उपरान्त प्रेत पार्वणके योग्य और गृहस्थ वृद्धिश्राद्ध और इष्टापूर्तके योग्य होते हैं अर्थात् वर्षके पीछे सपिंडीके विना अधिकारी नहीं है, और गृहस्थ पदसे सपिंडको भी लेना इसीसे ज्योतिषमें लिखा है कि प्रेतकर्मको जबतक न करे तबतक वृद्धिश्राद्ध चौथी पीढ़ीतक न करे और पांचवीं पीढ़ीमें करना श्रेष्ठ है। माधवीयमें देवलका कथन है कि जिसके माता पिता मृतक हो जायँ उसका देह अपवित्र होता है, उसे वर्षदिनतक देवता और पितृकर्म न करना चाहिये। यह वाक्य भी तब है जब वर्षके पश्चात् सपिंडी हो; कारण कि इस लघुहारीत आदिके कथनके संग एकवाक्यता है कि ऐसे ही प्रथम वर्षके

त्यैवेति गौडाः। पित्र्यं सपिंडनम्। अत एव लौगाक्षिः—"अन्येषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने। कुर्यात्संवत्सरादर्वाक् श्राद्धमेकं तु वर्जयेत्॥" दाहाद्येकादशाहान्तं कार्यम्। तत्राशौचान्तरस्याप्रतिबन्धकत्वात्।'आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि।' इत्युक्तेश्च। एकं-सपिंडनम्। पत्न्यादौ त्वपवादमाह माधवीये ऋष्यशृङ्गः—"पत्न्याः पुत्रस्य तत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयेषु च स्नुषास्वस्रोश्च पित्रोश्च संघातमरणं यदि॥ अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वं सापिण्ड्यमाचरेत्॥" लौगाक्षिः—पत्नी पुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्पुत्रका अपि। पितरौ च यद्येकस्मिन् म्रियेरन्वासरे तदा॥ आद्यमेकादशे कुर्यात्त्रिपक्षे तु सपिण्डनम्॥" धवलनिबन्धे—"महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि। कुर्यात्संवत्सरादर्वागेकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥" भृगुः—"माता चैव तथा भ्राता भार्या पुत्रस्तथा स्नुषा। एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्य न पुनः पितुः॥" एतदपि सपिण्डनपरम्। पितुर्मृतावन्यस्य श्राद्धं न चरेदित्यर्थः। शुद्धितत्त्वे देवलः—"अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम्। वर्जयेद्गुरुपाते तु यावत्पूर्णो न वत्सरः॥" पारस्करभाष्ये बृहस्पतिः—"पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धान्निवर्तते। मातर्यपि च वृत्तायां पितृश्राद्धादृते समम्॥" समं पितरं विनान्यश्राद्धं नेत्यर्थः। शुद्धि-

त्यागकर काम्यकर्म न करे, वृद्धिश्राद्धके निमित्त अपकर्ष हो तो (वर्षके बीचमें भी) काम्य आदि कर्म होते हैं, यह गौडोंका कथन है। पितृकर्मसे सपिंडी लेना। इसीसे लौगाक्षिने कहा है कि महागुरुके मरण होनेपर अन्योंका प्रेतकार्य (दाहादि एकादशाहान्त कर्म) संवत्सरके पहले करे, (केवल) सपिंडी श्राद्ध न करे, क्योंकि अन्य अशौचका प्रतिबन्धक नहीं है और यह भी वाक्य है कि अशुद्ध भी मनुष्य एकादशाह आद्य श्राद्ध करे। पत्नी आदिके विषयमें जो अपवाद माधवीयमें ऋष्यशृंगने लिखा है कि पत्नीके संग बेटेका और पोतेका, भाई और भाईके बेटोंका, वधू और सासका, माता और पिताकी यदि एकसाथ मृत्यु हो जाय तो वर्षके बीचमें भी माता पिताकी क्रमसे सपिंडी करे। लौगाक्षिने कहा है कि भार्या, पुत्र, पौत्र और भाई, भाईके बेटे, माता, पिता ये यदि एक दिन मृतक हो जायँ तो एकादशाहमें आद्य श्राद्ध और त्रिपक्षमें सपिंडी करनी चाहिये। धवलनिबन्धमें लिखा है कि महागुरुकी मृत्युमें यथाविधि प्रेतकर्म वर्षसे प्रथम भी करे, परन्तु एकोद्दिष्ट करना, पार्वण न करना। भृगुने कहा है कि माता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, वधू इनके मरनेमें श्राद्ध औरका करे और पिता मृतक हो जाय तो औरका न करे, यह भी सपिंडीके विषयमें जानना। शुद्धितत्त्वमें देवलका वाक्य है कि औरका श्राद्ध, पराया अन्न, गन्ध, पुष्प, और मैथुन इनको पिताकी मृत्युमें वर्षदिनतक त्याग दे। पारस्करभाष्यमें बृहस्पतिका वाक्य है कि पिताकी मृत्युमें पुत्रको माताका श्राद्ध न करना चाहिये और माताकी मृत्युमें भी पिताके श्राद्धके सिवाय औरोंका श्राद्ध न करे। शुद्धितत्त्वमें देवलका वचन है कि पिताकी मृत्युमें किंचित् भी

१ जहां माताकी मृत्युके उपरान्त पिताकी मृत्यु हो जाय वहां माताके सपिण्डनकी आवश्यकतासे पुत्रादिको सपिण्डी करनी चाहिये। अथवा जहां माताकी सपिण्डी नहीं की वह औरकी सपिण्डीमें क्या कहना, यह और सपिण्डोंकी निन्दामें तात्पर्य है।

तत्त्वे देवलः-"महागुरुनिपाते तु काम्यं किंचिन्न चाचरेत्। आर्त्विज्यं ब्रह्मचर्यं च श्राद्धं देवक्रियां तथा ॥" एतत्सपिण्डनात्प्रागिति केचित् । तदुत्तरमपीत्यन्ये। श्राद्धकौमुद्यां कालिकापुराणे पूर्वार्द्धे-"विशेषतः शिवपूजां प्रमीतपितृको नरः। यावद्वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ॥"केचित्तु-'पित्रोरब्दमशौचं स्यात्षण्मासं मातुरेव च। त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥" इति स्मृतेः सपत्नमातुरब्दार्धमाहुः। श्राद्धकौमुदीकारस्तु-"द्वयोरेव महागुर्वोरब्दमेकमशौचकम् । नान्येषामधिकाशौचं स्वजातिविहितात्किल ॥" इति समूलजातूकर्ण्यविरोधान्निर्मूलमाह। हेमाद्रौ भविष्ये-"गयाश्राद्धं मृतानां तु पूर्णे त्वब्दे प्रशस्यते ॥ " त्रिस्थलीसेतौ गारुडे-"तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु ॥" इदं वृद्ध्यर्थसापिण्डनाभावे वृद्धौ सपिण्डनापकर्षेऽब्दमध्येऽपि दर्शादि कार्यमेव। 'पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् ।' इति छन्दोगपरिशिष्टात्। 'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत्।' इति मात्स्यात् । "ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते। विन्दते पितृलोकं च ततः श्राद्धं प्रवर्तते ॥" इति हारीताच्चेति शूलपाणिः। यत्तु कातीयम्-"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम्। एकोद्दिष्टविधा-

---

काम्य कर्म यज्ञ करना, ब्रह्मचर्य, श्राद्ध और देवपूजाको न करे, यह भी सपिंडीसे प्रथम जानना, ऐसा कोई कहते हैं और अन्य तो इससे आगे कहते हैं। श्राद्धकौमुदीमें कालिकापुराणके पूर्वार्धमें लिखा है कि विशेषकर प्रमीतापितृक पुरुष वर्ष पर्यन्त मनसे भी शिवपूजाको न करे। कोई कहते हैं कि पिताका वर्षदिन, माताका छः महीने, स्त्रीका तीन महीने, भाई और पुत्रका डेढ़ महीने अशौच होता है, इसी स्मृतिसे सौतेली माताका छः महीनेतक कहते हैं। श्राद्धकौमुदीकारने मूलसहित इस जातूकर्ण्यके विरोधसे पूर्वोक्त वाक्यमें निर्मूल लिखा है कि दोनों माता और पिता महागुरुओंका अशाच एक वर्षतक होता है और दूसरोंका अधिक अशौच नहीं होता, किन्तु अपनी अपनी जातिके अनुसार ही होता है। हेमाद्रिमें भविष्यका वाक्य है कि मृतक हुओंका गयाश्राद्ध पूर्णवर्षमें उत्तम कहा है। त्रिस्थलीसेतुमें गरुडपुराणका वाक्य है कि तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध और अन्य पितृश्राद्धको महागुरुकी मृत्युमें वर्षके बीचमें न करना। यह वाक्य भी वृद्धिके निमित्त सपिंडीके अभावमें है, वृद्धिके निमित्त सपिंडीका अपकर्ष हो तो संवत्सरके बीचमें भी दर्श आदि करने चाहिये; कारण कि छंदोगपरिशिष्टमें लिखा है कि पिताकी सपिंडी करनेके पीछे मासिक और अनुमासिक श्राद्ध करे। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि सपिंडी किये उपरान्त प्रेत पार्वणश्राद्धका भोक्ता होता है। और हारीतऋषिने भी कहा है कि सपिंडीके पश्चात् प्रेत पितरोंके तुल्य होता है और पितृलोकमें गमन करता है और श्राद्धकी प्रवृत्ति भी तभी हो जाती है, यही शूलपाणि कहते हैं। जो कातीयका कथन है कि सपिंडीके उपरान्त प्रतिमासके श्राद्ध

नेन दद्यादित्याह शौनकः ॥" इति । तत्रैकोद्दिष्टविधिना न दद्यादित्यन्वयः । तुर्यपादेन पार्वणे विकल्प उक्तः । ब्रह्मवैवर्ते-"उद्वाहश्चोपनयनं प्रथमेऽब्दे महीपते । कृते सपिण्डनेऽप्यूर्ध्वमस्थ्नां चोद्धरणं त्यजेत् ॥ तथापि कर्तुमिच्छन्ति त्रीणि चैतानि वै सुताः । मासिकान्यवशिष्टानि चापकृष्य चरेत्पुनः ॥" अत्रेदं तत्त्वम् । वृद्धिं विनार्वागपि सपिण्डनापकर्षे पितृत्वप्राप्तिर्वर्षान्त एव । "कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम् । प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते ॥" इति विष्णुधर्मोक्तेः । "अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सापिण्डीकरणं भवेत् । प्रेतत्वमपि तस्यापि विज्ञेयं वत्सरं नृप ॥" इत्यग्निपुराणाच्च । तेन तत्सत्त्वेऽपि वृद्धिदैवपित्र्येष्वनधिकारः । वृद्धिनिमित्ते त्वनन्तरमेव । "अर्वाक्संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा । ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां तु पृथक् क्रिया ॥" इति शातातपोक्तेः । तथैव काम्यमिति हेमाद्रिधृतहारीतादिवशाच्चैवमिति । तथा-" अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत कृतेऽपि तु सपिण्डने ॥" अस्यापवादः-"अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेऽब्देऽपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान्सुतः ॥" भक्त्याख्यं श्राद्धं तद्वानिति मदनपारिजातादयः । अन्ये यथाश्रुत-

---

एकोद्दिष्टकी विधिसे न देने चाहिये, यह शौनकने लिखा है, वहां एकोद्दिष्टकी विधिसे न दे, यह अन्वय जानना चाहिये, किन्तु पार्वण श्राद्ध करे, परन्तु चौथे चरणसे पार्वणका भी विकल्प लिखा है । ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि हे राजन् ! पहले वर्षमें विवाह, उपनयन और अस्थियोंका उद्धरण सपिंडी करनेपर भी न करे, तो भी पुत्र तीन करनेकी इच्छा करते हैं, मासिक अवशिष्टका अपकर्ष करके फिर करे । यहाँ यह सिद्धान्त है कि वृद्धिके विना वर्षकी पूर्तिसे प्रथम भी सपिण्डीका अपकर्ष आ जाय तो पितृत्वकी प्राप्ति वर्षके अन्तमें ही हो जाती है; कारण कि विष्णुधर्ममें लिखा है कि सपिंडी करनेके उपरान्त मनुष्य वर्ष दिनके बाद प्रेतदेहको त्यागकर भोगदेहको प्राप्त होता है । और अग्निपुराणमें भी लिखा है कि हे राजन् ! वर्षसे प्रथम भी जिसकी सपिंडी हो जाय उसको भी वर्षपर्यन्त प्रेतत्व प्राप्त रहता है, इससे सपिंडी होनेपर भी दैव और पितृकर्ममें अधिकार नहीं होता । वृद्धिश्राद्धनिमित्तक सपिंडीमें तो सपिंडीके उपरान्त ही देव और पितृकर्ममें अधिकार होता है; कारण कि शातातपने लिखा है कि वृद्धिके निमित्त वर्षसे प्रथम वा पूर्ण वर्षमें जिन प्रेतोंकी सपिंडी हो गयी है उनका कर्म पृथक् नहीं होता । और इसी प्रकार काम्यकर्मको करे, इस हेमाद्रिमें लिखे हारीतके वाक्यसे भी इसी प्रकार है । ऐसे ही वाक्य है कि तीर्थमें अस्थियोंका डालना, गया और अपरपक्षके श्राद्धको पिताकी सपिंडी करनेपर भी वर्षके बीचमें न करे । इसका अपवाद लिखा है कि भक्तिमान् पुत्र हो तो अस्थि डालना गया और अपरपक्षके श्राद्धको प्रथमवर्षमें भी करे । मदनपारिजात आदिमें तो यह अर्थ लिखा है कि भक्ति नामक श्राद्धवाला पुत्र ।

माहुः । तत्त्वं तु-यदीदं समूलं तदा वृद्धिं विनापकर्षे पूर्वं, वृद्ध्यर्थे तु परमिति योज्यम् । पतितानां गयायां विशेषो ब्राह्मे-" क्रियते पतितानां च गते संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाश्राद्धं स्वबन्धुभिः ॥ " अथ विधानानि । तत्र पञ्चकमृते मदनरत्ने गारुडे-" आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम् । रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं दाहकर्मणि ॥ शवस्य तु समीपे तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्तदा । दर्भमय्यास्तु चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः ॥ ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते ततः पुत्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम् ॥ पञ्चकेषु मृतो यो वै न गतिं लभते नरः । तिलांश्चैव हिरण्यं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत् ॥"क्रियानिबन्धे-"भाजनोपानहौ छत्रं हैममुद्रा च वाससी । दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी॥" मदनरत्ने गार्ग्यः-"यदि भद्रातिथीनां स्याद्भानुभौमशनैश्चरैः।त्रिपादर्क्षैश्च संयोगो द्वयोर्योगो द्विपुष्करः ॥ द्वित्रिपुष्करयोगे तु मृतिर्मृत्यन्तरावहा । दहने मरणे चैव त्रिगुणं स्यात्त्रिपुष्करे ॥ खननेऽप्येवमेव स्यादेतद्दोषोपशान्तये । तिलपिष्टैर्यवैर्वापि शरीरं कारयेत्ततः ॥ शूर्पे निधायालंकृत्य दाहयेत्पैतृकोपरि ॥" तद्दाहे मन्त्रमाह बौधायनः-"अस्मात्त्वमिति मन्त्रेण तिलपिष्टं प्रदाहयेत् । द्वित्रिपुष्करयोर्दोषास्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपो-

---

और तो पूर्वोक्त ही अर्थ कहते हैं । सिद्धान्त तो यह है कि यदि यह वाक्य मूलसहित है तो वृद्धिके विना अपकर्षमें प्रथम और वृद्धिके निमित्त श्राद्धमें उपरान्त करे । पतितोंके निमित्त गयाके श्राद्ध करनेमें विशेष ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि कहीं कहीं वर्षके बीतनेपर देशधर्मके प्रमाणसे बान्धवलोग पतितोंका गयाश्राद्ध सम्पादन करते हैं । अब विधियोंको वर्णन करते हैं-उनमें पंचकमें मृतक हो तो मदनरत्नमें गरुडपुराणका यह वचन है कि धनिष्ठानक्षत्रके उत्तरार्धसे लेकर रेवतीपर्यन्त पांच नक्षत्र दूषित और दाह करनेमें अशुभ हैं । यदि ऐसा हो तो शवके समीप कुशाके चार पुतले बनाकर नक्षत्रोंके मन्त्रोंको पढ़कर रक्खे, फिर उन पुतलों सहित दाह करे, फिर पुत्र सूतकके पीछे शान्तिक और पौष्टिक कर्मोंको करे । जिस मनुष्यकी पंचकमें मृत्यु होती है उसकी गति नहीं होती, इससे उसके निमित्त तिल, सुवर्ण और घी देना चाहिये । क्रियानिबंधमें कहा है कि पात्र, जूता, छत्र, सोनेकी मुद्रा, दो वस्त्र और सब पापोंकी दूर करनेवाली दक्षिणा ब्राह्मणको देनी चाहिये । मदनरत्नमें गार्ग्यका वचन है कि भद्रा तिथि, सूर्य, मंगल, शनैश्चर वार और त्रिपादनक्षत्र इन तीनोंके योगमें त्रिपुष्कर और दोके योगमें द्विपुष्करयोग होता है, इन दोनों योगमें मृत्यु हो तो दूसरे दोकी मृत्यु होती है, इनमें दाह और मृत्यु हो तो दूना और त्रिपुष्करमें तिगुना होता है । ऐसे ही गाड़नेमें है, अतः इस दोषके शान्तिके निमित्त तिलकी पिट्ठीसे अथवा यवोंसे शरीर निर्माण करे और उसको शूर्प (छाज) में रख और अलंकृत करके पिताके ऊपर रखकर दाह करे । उसके दाहका मन्त्र बौधायनने लिखा है कि 'अस्मात्त्वमधिजातोऽसि ' इस मन्त्रको पढ़कर उस

हाति ॥ वासवे मरणं चेत्स्यात्गृहे वापि पुनर्मृतिः। सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥" वासवं धनिष्ठा। ब्राह्मे-" कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते। न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा सन्ततौ न शुभं भवेत् ॥ न तस्य दाहः कर्तव्यो विनाशस्त्वेव जन्तुषु। अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम् ॥ धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथंचन। त्रिपुष्करे याम्यभे वा कुलजान्मारयेद्ध्रुवम् ॥ तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते। दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत्। प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः ॥ प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात् ॥" अत्र प्रतिमा गन्धपुष्पैः पूजयित्वा प्रथमां शिरसि। द्वितीयां नेत्रयोः। तृतीयां वामकुक्षौ। चतुर्थीं नाभौ। पञ्चमीं पादयोर्न्यस्य तदुपरि नामभिर्घृतं हुत्वा-यमाय सोमं त्र्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां प्रत्येकं तास्वाज्यं हुनेदिति भट्टाः। "सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम्। कांस्यपात्रस्थितं तैलं वीक्ष्य दद्याद्द्विजन्मने ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रवरुणप्रीतये ततः। माषमुद्गयवव्रीहिप्रियंग्वादि प्रयच्छति ॥ स्वर्णदानं रुद्रजाप्यं लक्षहोमो द्विजार्चनम्। गोभूदानं षडंशेन कुर्याद्दोषोपशान्तये ॥" अपरार्के-" धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि

तिलपिष्टीके शरीरका दाह करे। द्विपुष्कर और त्रिपुष्करका दोष तीन कृच्छ्रव्रत करनेसे नष्ट होता है। धनिष्ठामें मृत्यु हो तो घरमें फिर मृत्यु होती है, इससे उस दोषशान्तिके निमित्त सुवर्ण वा कृष्ण वस्त्रकी दक्षिणा देनी चाहिये। ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि कुंभ तथा मीनके चन्द्रमामें जिसकी मृत्यु होती है उसकी ऊर्ध्वगति नहीं देखी जाती और संतानमें भी श्रेय नहीं होता। दाह करनेसे परिवारकी हानि होगी, इससे उसका दाह न करे अथवा उस दिन विधिपूर्वक दाह करे। किसी प्रकार धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्र, त्रिपुष्कर योग और भरणी नक्षत्र इनमें यदि किसीकी मृत्यु हो जाय तो कुलमें उत्पन्न हुएकी अवश्य मृत्यु करता है, अतः उस अनिष्टके दूर करनेकी विधि लिखते हैं कि कुशाकी पांच प्रतिमा बनावे, उनको उनसे लपेटे और यवोंके चूनसे लीपकर उनके संग मृतकका दाह करे। उन मूर्तियोंके क्रमसे ये नाम हैं कि प्रेतवाह, प्रेतसखा, प्रेतप, प्रेतभूमिप और प्रेतहर्ता इन मूर्तियोंकी गन्ध पुष्पोंसे अर्चा कर पहली शिरमें, दूसरीको नेत्रोंमें, तीसरीको बाईं कोखमें, चौथीको नाभिमें और पांचवींको मृतकके पैरोंमें रखकर और पूर्वोक्त पांचों नामोंसे उनके ऊपर घृतसे हवन करे।'यमाय सोमं० त्र्यम्बकं यजामहे०' यह मन्त्र पढ़कर उन प्रत्येकके ऊपर आहुति दे, यह भट्ट कहते हैं। सूतकके अन्तमें पुत्र फिर शान्तिक पौष्टिक करे, कांसीके पात्रमें तेलको रखकर और उसमें मुख अवलोकन कर ब्राह्मणको दे दे, ऐसा करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और वरुण प्रसन्न होते हैं। उडद, मूँग, यव, व्रीहि, कांगनी आदि भी दे, सुवर्णका दान, रुद्रका जप, लक्ष होम, ब्राह्मणोंका पूजन, गौ, भूमि दान इन सबको अपने उपार्जित धनके छठे भागसे पंचकदोषकी शांतिके निमित्त अवश्य देना चाहिये। अपरार्कमें कहा है कि

तन्मुखे । प्रास्याहुतित्रयं तत्र हुनेद्वहवपामिति ॥ ततो निर्हरणं कुर्यादेष साग्नेर्विधिः स्मृतः । इतरं निखनेद्देवं जले वा प्रतिपादयेत् ॥ त्रिपादर्क्षमृते तद्वद्धिरण्यशकलं मुखे। तस्य पिष्टमयं कुर्यात्पुरुषत्रितयं ततः ॥ होमं प्रतिमुखं कुर्यात्तथा वहवपामिति । कार्ष्णायसं च कार्पासं कुसुम्भं प्रतिपाद्य च ॥ निर्यात्य साग्निं संस्कुर्याद्भुव्यग्नौ वान्यमुत्सृजेत् ॥" तत्रैव-"कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् । पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥ रत्नानां चाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्धमेव च । सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥" मदनरत्नेऽप्येवम् । तथा-" एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् । नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥" तथान्यच्च-"स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्नेःस्थापनं ततः । अन्वाधानं निर्वपणं देवतानां तथाहुतिः ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै क्रमात् ॥ विधिना श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत् । कृष्णां गां कृष्णवस्त्रं च हैमनिष्कसमन्विताम् ॥ दद्याद्विप्राय शान्ताय प्रीतो भवतु मे यमः ॥" त्रिपादर्क्षेऽप्येतदेव । अपरार्के-"पुनर्वसूत्तराषाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी । पूर्वाभाद्रा विशाखा च

धनिष्ठाआदि पंचकोंमें जिसकी मृत्यु हो उसके मुखमें पंचरत्न रक्खे, फिर वहवपाम्[1] ' इस मन्त्रसे तीन आहुति देनी, फिर श्मशानमें ले जाय, यह साग्निकी विधि वर्णन की है । और दूसरोंको तो गाड़ दे वा जलमें डाल दे । त्रिपादनक्षत्रमें जिसकी मृत्यु हो उसके भी मुखमें सुवर्णका खण्ड डालना चाहिये और पिट्ठीके तीन पुरुष निर्माण करे, उन तीनोंके मुखमें ' वहवपाम् ' इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये । काला लोहा, कपास और कुसुंभका दान करके साग्निको श्मशानमें ले जाकर भस्म करे, वा पृथ्वी और अग्निमें त्याग दे । वहां ही लिखा है कि सुवर्ण, हीरा, नील, पद्मराग, मोती ये ऋषियोंने पंचरत्न कहे हैं । रत्नोंका अभाव हो तो आधा कर्ष सुवर्ण और सुवर्णका भी अभाव हो तो बुद्धिमान् मनुष्य घृतको डाले । मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखा है । ऐसे ही वाक्य है कि ग्यारह पल वा उससे भी आधा वा नौ, छः, तीन पल कांसीको स्वशक्तिके अनुसार ब्राह्मणको देना । इसी प्रकार और जगह लिखा है कि अपने गृह्यकी स्थितिसे अग्निका स्थापन करे, अन्वाधान निर्वपण करके इन देवताओंके नामसे क्रमसे आहुति दे कि यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुंबर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त । विधिसे श्रपण करके इनके निमित्त एक एक आहुति देनी चाहिये, काली गौ, काला वस्त्र, निष्कप्रमाण सोना इनको यह कहकर ब्राह्मणको प्रदान करे कि यमराज मेरे ऊपर प्रसन्न हो । त्रिपादनक्षत्रमें भी मृत्युकी इसी प्रकार शांति है । अपरार्कमें लिखा है कि पुनर्वसु, उत्तराषाढ, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा ये

---

१ वहवपांजातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके। मेदसः कुल्या उपतान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्नमन्तां स्वाहा । यजु० ३५ । २० ॥

ज्ञेयमेतत्त्रिपादभम्॥" मयूरचित्रे गर्गः-"मृतः श्मशानं यो नीत उपजीवति मानवः। गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥ अचिरान्मृत्युमायाति हृतदारपरिग्रहः । तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥ सक्षीराणां घृताक्तानामग्नेर्हुत्वा मुखे बुधः। औदुम्बरीणां विधिवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥ सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत्। कपिलां तिलकांस्यं च हुतान्ते भूरिदक्षिणा ॥"इति । अथ ब्रह्मचारिमृतौ निर्णयः । शौनकः-"ब्रह्मचारिमृतौ रीतिं कथयामि समासतः । तत्रावकीर्णदोषस्य प्रायश्चित्तं प्रशान्तये ॥ द्वादशाब्दं षडब्दं वा त्र्यब्दं शक्त्याथ वाचरेत् । स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि ॥ संयोज्य चार्कविधिना संयोज्यौ तौ ततः परम् ॥" देशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रामुकनाम्नो मृतस्य ब्रह्मचारिणो व्रतविसर्गं करिष्ये इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते चतसृभिर्व्याहृतिभिरग्नये व्रतपतये व्रतानुष्ठानसंपादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्य पुनर्देशकालौ स्मृत्वार्कविवाहं करिष्ये इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वार्कशाखां शवं च हरिद्रया लिप्त्वा पीतसूत्रेण वस्त्रयुग्मेन चावेष्ट्याग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते 'अग्नये बृहस्पतये विवाहविधियोजकाय च यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय ।' व्याहृतिभि-

---

त्रिपादनक्षत्र हैं । मयूरचित्रमें गर्गका वचन है कि जो मृतक मनुष्य श्मशानमें जाकर फिर जी उठे तो वह जिसके घरमें प्रविष्ट होकर टिके वह शीघ्र ही स्त्री कुटुंबसहित मृत्युको प्राप्त होता है । धर्मराजके मतसे उसकी शांति लिखी है कि वह मनुष्य. घीमिले दूधकी अग्निके मुखमें आहुति दे और गूलरोंमें घी भरकर विधिपूर्वक होम करे और आठ सहस्र गायत्रीसे दूधकी शांति करावे, कपिला गौ, तिल, कांसीकी बहुतसी दक्षिणा होमके पश्चात् प्रदान करे । अब ब्रह्मचारीकी मृत्युमें लिखते हैं-शौनकने कहा है कि ब्रह्मचारीकी मृत्युमें संक्षेपसे रीतिको लिखता हूँ, स्वप्नमें वीर्य गिरनेकी शान्तिके निमित्त बारह वा छः वा तीन वर्षतक यथाशक्ति ब्रह्मचारी व्रत करे । स्नातक ब्रह्मचारीकी यदि मृत्यु हो जाय तो सूर्यमें विधिसे मिलाकर सूर्य और ब्रह्मचारीको संयुक्त करे, फिर देश और कालका स्मरण करके इस गोत्र और इस नामके ब्रह्मचारीका व्रत विसर्जन करता हूं यह उच्चारण कर और सुवर्णसे नान्दीमुख श्राद्ध करके अग्निकी प्रतिष्ठा आदि आघार आहुतिके अन्तमें चार व्याहृतियोंसे और 'अग्नये व्रतपतये व्रतानुष्ठानकामसम्पादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यः' इनके निमित्त घृतका हवन करके, स्विष्टकृत् आदि आहुतियोंको पूर्ण करके, फिर देश कालका स्मरण करके कहे कि अर्कविवाहको सम्पादन करता हूं; सुवर्णसे नान्दीमुख श्राद्धको करके आककी शाखा और मृतकको हरिद्रासे लेपन करके और पीले दो वस्त्रोंसे लपेटकर अग्निस्थापन करके आघार आहुतिके अन्तमें 'अग्नये बृहस्पतये विवाहविधियोजकाय यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय' इस मंत्रसे और व्याहृतियोंसे घृतका हवन करके, स्विष्टकृत् आदि होमके कर्मको पूर्ण करके आककी शाखा और उस

आज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्यार्कशाखां शवं च दहेत् । विधानमालायाम्–"येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि । तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोऽपि दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ मृतस्य म्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमादिशेत् । त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनकान्नवान् ॥ हस्तमात्राः कर्णमात्रा दद्यात्कृष्णाजिनानि च । पादुकाछत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च ॥ मणिप्रवालमालाश्च भूषणादि समर्पयेत् । एवं कृते विधाने च विघ्नकोऽपि न जायते ॥" अत्र मूलं मृग्यम् । अथ कुष्ठिमरणे निर्णयः । कुष्ठिमृतौ तु यमः–'मृतस्य कुष्ठिनो देहं निखनेद्गोष्ठभूमिषु । वासरत्रितयं पश्चादुद्धृत्यान्यत्र तं दहेत् ॥ न गङ्गाप्लवनं कार्यं निक्षेपे विधिरुच्यते । षडब्दव्रतपूर्णेन विधिनान्त्यं क्रतुं चरेत् ॥ ततोऽस्थिसंचयं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत्सुधीः । मासिमासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणात् ॥ इत्येतत्कुष्ठिमरणे कथितं शास्त्रकोविदैः ॥" शुद्धितत्त्वे भविष्ये–"शृणु कुष्ठगणं विप्र उत्तरोत्तरतो गुरुम् । विचर्चिका तु दुश्चर्मा चर्चरीयस्तृतीयकः ॥ विकर्चूर्व्रणताम्रौ च कृष्णश्वेते तथाष्टकम् ॥" इत्युक्त्वा–"मृते तु प्रापयेत्तीर्थमथवा तरुमूलकम् । न पिण्डं नोदकं कार्यं न च दानक्रियां चरेत् ॥ षण्मासीयत्रिमासीयमृतः कुष्ठी कदाचन । यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यतिचान्द्रायणं चरेत् ॥" अकृतप्रायश्चित्तकुष्ठ्यादिदाहे इदं प्रायश्चित्तम् । अत एव कुनख्यादिवत्कुष्ठिनोऽपि द्वादशरात्रं

मृतकका दाह करे । विधानमालामें लिखा है कि जिनके कुलमें ब्रह्मचारीकी मृत्यु हो जाय, वह कुल नष्ट हो जाता है और ब्रह्मचारीकी भी दुर्गति होती है, मरे और मरने योग्य उन ब्रह्मचारीके निमित्त छः वर्षतक व्रत करे और तीस ब्रह्मचारियोंको कौपीन दे, हाथ वा कानभर प्रमाण काली मृगछाला दे, खड़ाऊँ, छत्र, पुष्प, गोपीचंदन, मणि, मूँगा, माला और भूषणआदि दे, इस प्रकार विधि करनेसे कोई विघ्न नहीं होता, परन्तु इसमें मूल नहीं मिलता । कुष्ठीके मरणमें यमने कहा है कि मरे हुए कुष्ठीके देहको गोष्ठकी भूमिमें तीन दिनतक गाड़ दे, फिर उसे निकालकर और स्थानमें दाह करे, उसे गंगामें बहाना उचित नहीं, उसके फेंकनेकी विधिको लिखते हैं कि पूर्वोक्त छः वर्षके व्रतकी विधि पूर्ण होनेपर उस विधिको करे, फिर उसकी अस्थियोंको बुद्धिमान् मनुष्य गंगामें डाल दे, फिर महीने महीनेमें पार्वणकी विधिसे मासिकश्राद्ध करे, यह बुद्धिमानोंने कुष्ठीके मरणमें कहा है । कोई बुद्धिमान् मनुष्य संकल्पविधिसे श्राद्ध करना वर्णन करते हैं । कुष्ठीकी मृत्युमें शास्त्रोंके ज्ञाताओंने यह विधि लिखी है । शुद्धितत्त्वमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि हे विप्र ! उत्तरोत्तरसे उत्कृष्ट कुष्ठियोंके समूहको श्रवण करो, विचर्चिका, दुश्चर्मा, चर्चरी, विकर्चू, व्रण, ताम्र, कृष्ण, श्वेत ये आठ कुष्ठी हैं, यदि ये मरें तो तीर्थ वा वृक्षकी जड़में पहुँचा देना चाहिये, इनके निमित्त पिंडदान उदकआदि दान न करना चाहिये । छः महीने वा तीन महीनेके कुष्ठीकी मृत्यु हो जाय उसका स्नेहसे दाह करनेसे यतिचान्द्रायणको करना होता है, परन्तु यह उस कुष्ठीके दाहमें है जिसका प्रायश्चित्त न हुआ हो, इसीसे कुनखीआदिके समान द्वादशरात्रका प्रायश्चित्त कुष्ठीका भी शूलपाणिने कहा है ।

शूलपाणिनोक्तम् । अत एवान्यदीयं कुष्ठिनो मरणान्तमाशौचमुक्तम् । कौर्मे- "क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च । यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ॥ " महारोगास्तु—"वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः । अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ " इति । अथ रजस्वलामृतौ निर्णयः । रजस्वलायास्तु वृद्धशातातपः-" रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् । ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां शवधर्मेण दाहयेत् ॥" अतः प्रक्षाल्य काष्ठवद्दग्ध्वा त्र्यहोर्ध्वं दहेत् । संकटे तु मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे-" उदक्या सूतिका वापि मृता स्याद्यदि तां तदा । अशौचे त्वनतिक्रान्ते दाहयेदन्तरा यदि ॥ उद्धृतेन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मन्त्रतः । आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाश्चतसृभिः ॥ पवमानानुवाकेन यदंतीति च सप्तभिः । ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणाथ ते द्विजाः ॥ स्नापयित्वान्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः । दाहादिकं ततः कुर्यात्प्रजापतिवचो यथा ॥", यज्ञपवित्रमापोअस्मानिति मिताक्षरायाम् । " पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम् । वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥ " गृह्यकारिकायाम्-"अन्तरिक्षमृता ये च वह्नावप्सु प्रमादतः । उदक्या सूतिका नारी चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥" ततो यवपिष्टेनानुलिप्याष्टोत्तरशतं शूर्पोदकैः संस्नाप्य

इससे अन्य कुष्ठियोंका मरणांतपर्यंत अशौच लिखा है। कूर्मपुराणमें कहा है कि क्रियाहीन, मूर्ख, महारोगी और यथेष्ट आचरण करनेवाला इनका मरणान्त अशौच कहा है। महारोग तो ये लिखे हैं कि वातकी व्याधि, पथरी, कुष्ठ, प्रमेह, जलोदर, भगंदर, बवासीर, ग्रहणी ये आठ महारोग हैं। रजस्वलाके निमित्त वृद्ध शातातपने यह लिखा है कि रजस्वलाकी मृत्यु हो जाय तो उसके संस्कार आदि न करने चाहिये, किन्तु तीन दिनके पश्चात् स्नान कराकर शवके धर्मसे दग्ध करना चाहिये। अतः काष्ठवत् तीन दिनके उपरान्त दग्ध करे। संकटमें तो मदनरत्नमें स्मृत्यन्तरका वचन है कि रजस्वला वा सूतिकाकी मृत्यु हो जाय तो अशौचके उपरान्त उसका दाह करना और आपत्ति हो तो इस विधिसे बीचमें ही करे कि निकाले हुए जलसे इन मन्त्रोंको पढ़कर कि 'आपोहिष्ठा' तीन ऋचा और चार 'हिरण्यवर्णा' पवमान अनुवाक और सात यदंतीऋचा फिर यज्ञपवित्र और गोमूत्रसे स्नान करावे, फिर अन्य वस्त्रसे ढककर मृतकके धर्मसे प्रजापतिके कथनके अनुसार दाह आदि करे। 'आपोऽस्मान्शुन्धध्वम्' यह मन्त्र यज्ञपवित्र है, यह मिताक्षरामें कहा है। मृतक रजस्वलाको पंचगव्यसे स्नान कराकर और पंचगव्यसे ढककर विधिसे दाह करे। गृह्यकारिकामें कहा है जो अन्तरिक्षमें वा प्रमादसे या अग्नि और जलमें जिनकी मृत्यु हुई और जो रजस्वला या सूतिका भी मरी हो तो तीन चान्द्रायण करे। फिर यवके चूनसे

भस्मगोमयमृत्कुशोदकपञ्चगव्यशुद्धोदकैरापोहिष्ठापावमानीभिः संस्नाप्यान्यवस्त्रे धृते दहेदिति भट्टाः। अत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः-'उदक्यासूतिकामृतौ चरेच्चान्द्रायणत्रयम्।' इति। सूतिकायास्तु मिताक्षरायाम्-"सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं क्षिपेत्ततः॥ पुण्यर्ग्भिरभिमन्त्र्याथो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः। तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि॥ अब्लिङ्गाभिर्मन्त्रिताभिर्वामदेव्याभिरेव च। अन्यैश्च वारुणैर्मन्त्रैः संस्नाप्य विधिना दहेत्॥" गृह्यकारिकायाम्-"सूतिकामरणे प्राप्ते सर्वौषध्यनुलेपनम्। असूतकी तु संस्पृष्टः शूर्पाणां तु शतं क्षिपेत्॥" प्रायश्चित्ते विशेषस्तत्रैव-"सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता। त्रिवर्षपूर्णपर्यन्तं शुध्येत्कृच्छ्रेण सर्वदा॥" इदं चाद्यत्र्यहे। "सूतिका तु यदा नारी रजसा तु परिप्लुता। म्रियेत चेत्तु सा नारी द्विवर्षं कृच्छ्रमाचरेत्॥" इदं द्वितीयत्र्यहे। "सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता। अब्दकृच्छ्रेण शुद्ध्येत व्यासस्य वचनं यथा॥" इदं तृतीयत्र्यहे। अत्राशक्तौ पक्षान्तरमुक्तं तत्रैव-"सूतिका तु यदा नारी विस्नाता मरणं गता। त्रिषण्णवदिनादर्वागेकाब्देन विशुद्ध्यति॥" ऊर्ध्वं तु-

---

लीपकर, एक सौ आठ सूपके जलोंसे स्नान कराकर, भस्म, गोमय, मृत्तिका, कुशोदक, पंचगव्य, शुद्धोदक इनसे आपोहिष्ठा और पावमानीऋचा पढ़कर स्नान कराकर और दूसरे वस्त्र पहराकर दग्ध करे, यह भट्ट कथन करते हैं। इसका प्रायश्चित्त बौधायनने लिखा है कि रजस्वला और सूतिकाकी मृत्युमें तीन चान्द्रायण करे। सूतिकाके निमित्त तो मिताक्षरामें यह लिखा है कि सूतिकाकी मृत्युमें यज्ञके कर्ता किस प्रकार करें? तो कहते हैं कि घड़ेमें जल लेकर पंचगव्य डाले, फिर पवित्र मंत्रोंको पढ़नेसे वह जल पवित्रताको प्राप्त होता है, उस जलसे सूतिकाको स्नान कराय विधिपूर्वक दग्ध करे। जलके लिंगवाले और वामदेवमन्त्रोंसे विधिपूर्वक स्नान कराय तथा वरुणमन्त्रोंसे स्नान कराय विधिपूर्वक दाह करे। गृह्यकारिकामें लिखा है कि सूतिकाके मरण प्राप्त होनेमें सर्वौषधियोंको देहपर लगावे, जिसको सूतक न हो वह स्पर्श कर ले तो सौ (१००) सूपके जलसे प्रक्षेप करने चाहिये। प्रायश्चित्तमें विशेष वहां ही लिखा है कि, सती स्त्री सूतिकास्नानसे प्रथम मर गयी हो तो तीन वर्षके कृच्छ्रसे सदा शुद्धि होती है, यह पहले तीन दिनमें है। सूतिका नारी रजसे युक्त ही मरे तो दो वर्ष कृच्छ्रव्रत करना, यह भी दूसरे तीसरे दिनकी मृत्युमें है। सती सूतिकास्नानसे प्रथम तीन छः नौ दिनके बीचमें मृतक हो जाय तो एक वर्षके कृच्छ्रसे पवित्र होती है, यह व्यासने कहा है। यह तीसरे त्रिदिनमें जानना। इसमें अशक्त हो तो वहां ही पक्षान्तर लिखा है कि सूतिकानारी तीन, छः, नौ दिनके ऊपर यदि स्नान किये बिना मर जाय तो एक वर्षमें शुद्धि होती है। आगे तो कहा है कि जो सूतिका स्त्री मर जाय तो एक

"सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत् । मासमेकावधिं यावत्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥" गर्भिणीमृतौ तु मदनरत्ने शौनकः—"गर्भिण्युदक्यासंस्कारं शिशुसंस्कारमेव च । प्रवक्ष्यामि समासेन शौनकोऽहं द्विजन्मनाम् ॥ गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमूत्रेण जलैः सह । आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्ष्य भर्ता समास्थितः ॥ प्रेतं श्मशाने नीत्वाऽथोल्लिख्य सव्योदरं ततः । पुत्रमादाय जीवंश्चेत्स्तनं दत्त्वा सुताय तु ॥ यस्ते स्तनः शशय इत्यृचा ग्रामे निधाय च । उदरं चाव्रणं कुर्यात्पृषदाज्येन पूरयेत्॥मृद्भस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिःस्नाप्य चाच्छाद्य वासोभिः शवधर्मेण दाहयेत् ॥" तत्रैव षडशीतिमते गद्यानि—गर्भिण्यां मृतायां दक्षिणाशिरसं निधाय तस्या नाभिरन्ध्रात्सव्यमुदरं चतुरंगुलं हिरण्यगर्भः समवर्ततेति छित्त्वा गर्भश्चेदप्राणस्तं प्रक्षाल्य निखनेत्स यदि जीवन् 'जीव त्वं मम पुत्रक' इत्युक्त्वा क्षेत्रियेत्वेति पञ्चभिः स्नापयित्वा हिरण्यमन्तर्धाय भूमौ निधाय व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य यस्ते स्तनः शशय इति स्तनं पाययित्वा शिशुं ग्रामं प्रापयेत् । गर्भच्छेदस्थले शतायुधायेति पञ्चाहुतीर्हुत्वा प्राणाय स्वाहा पूष्णे स्वाहेत्यनुवाकाभ्यां व्याहृत्या वाज्यं हुत्वा भिन्नमुदरं सूत्रेण संग्रथ्य घृतेनानुलिप्य ब्राह्मणाय तिलान् गां भूमिं सुवर्णं

महीनेमें तीन कृच्छ्रसे शुद्धि होती है । गर्भिणीकी मृत्युमें तो मदनरत्नमें शौनकका वचन है कि मैं शौनक गर्भिणी, रजस्वला, बालक इनके संस्कारको संक्षेपसे द्विजातियोंके निमित्त वर्णन करता हूं—गर्भिणीकी मृत्युमें जल सहित गोमूत्रसे आपोहिष्ठादि मंत्रोंसे प्रोक्षण करके सावधान हुआ पति मरी स्त्रीको श्मशानमें ले जाकर उसकी वाम कोखको चीरे और पुत्रको निकाले, जीता हो तो 'यस्तेस्तनः०' इस ऋचासे स्तन देकर और उसे ग्राममें पहुँचाकर स्त्रीके उदरको पृषदाज्यसे पूर्ण कर व्रणरहित करे । और मृत्तिका, भस्म, कुशा, गोमूत्रसे आपोहिष्ठा आदि तीन ऋचाओंसे स्नान कराय वस्त्र ओढाय शवके धर्मसे दग्ध करे । वहां ही षडशीतिमतमें गद्यवार्तिक लिखे हैं कि गर्भिणी मृतक हो जाय तो दक्षिणदिशाको शिर करके रक्खे और उसके नाभिच्छिद्रसे बांई ओरमें चार अंगुल अन्तरपर 'हिरण्यगर्भः समवर्तत०' इस ऋचासे चीरे, यदि गर्भमें प्राण न हो तो उसे जलसे स्नान कराय गाड दें, यदि वह सजीव हो तो 'जी तू मेरा पुत्र है' यह कहकर और 'क्षेत्रिय०' इन पांच ऋचाओंसे स्नान कराय सुवर्णका अन्तर कर भूमिपर बालकको रखकर व्याहृतियोंसे अभिमन्त्रित कर 'यस्ते स्तनः शशय०' इस मन्त्रसे स्तन पिलाकर बालकको ग्राममें पहुँचा दे । और गर्भच्छेदके स्थानमें 'शतायुधाय०' इस मन्त्रसे पांच आहुति देकर 'प्राणाय स्वाहा० पूष्णे स्वाहा' इन मन्त्रोंसे अथवा व्याहृतिओंसे घीकी आहुति दे और चीरे हुए उदरमें सूत लपेटकर और घी लगाकर ब्राह्म-

---

१ यस्ते स्तनः शशयोयोभयोभूयारक्तधावसुविदः सुदेवः । येनविश्वायुष्यसिवार्य्याणि सरस्वतिं समऽहधातवेदकः । उर्वन्तरिक्षमन्वोमि । य० ३८ । ५ ॥

दद्यादथ यथोक्तेन कल्पेन दहेत् ॥' बौधायनेन तु शतायुधायेति पञ्चहोमानन्तरं प्रयासायायासाय वियासाय संयासायोद्यासाय शुचे शोकाय तप्यते तपत्यै ब्रह्महत्यायै सर्वस्मै इति स्वाहान्तैराहुतयोऽप्यधिका उक्ताः । गृह्यकारिकायाम्-"यदा गर्भवती नारी सशल्या संस्थिता भवेत् । कुक्षिं भित्त्वा ततः शल्यं निर्हरेद्यदि जीवति॥ प्रमीतं निखनेत्तं तु प्रायश्चित्तमतः परम् । सा त्रयस्त्रिंशता कृच्छ्रैः शुद्ध्यते शल्यदोषतः ॥ स गर्भदहने तस्या वर्णजं वधपातकम् । प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुद्ध्यन्ति पापकारिणः ॥ दग्ध्वा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ॥" स्त्रीणामन्वारोहणम् । "अथान्वारोहणं स्त्रीणामात्मनो भर्तुरेव च । सर्वपापक्षयकरं निरयोत्तारणाय च ॥ अनेकस्वर्गफलदं मुक्तिदं च तथैव च । जन्मान्तरे च सौभाग्यधनपुत्रादिवृद्धिदम्॥"देशकालौ स्मृत्वाऽरुन्धतीसमाचारत्वस्वर्गलोकमहीयमानत्वमनुष्यलोमसंख्याब्दावच्छिन्नस्वर्गवासभर्तृसहितचतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालिकक्रीडमानत्वमातृपितृश्वशुरकुलत्रयपूतत्वब्रह्मघ्नमित्रघ्नकृतघ्नपतिपूतत्वपत्यवियोगकामा भर्तृज्वलच्चितारोहणं करिष्ये।अनुगमने तु फलमुल्लिख्यान्वारोहणं करिष्ये इत्युक्त्वा हरिद्राकुं-

---

णको तिल, गौ, भूमि और सुवर्णका दान कर फिर यथोक्त विधिसे दाह करे । बौधायनने तो यहां आहुति अधिक लिखी है कि 'शतायुधाय' इन पांच आहुतियोंके पीछे 'प्रयासाय० आयासाय० वियासाय० संयासाय० उद्यासाय० शुचे० शोकाय० तप्यते० तपत्यै० ब्रह्महत्यायै० सर्वस्मै०' 'स्वाहा' यह पद सबके अन्तमें कहे । गृह्यकारिकामें लिखा है कि जब गर्भवती स्त्री पीड़ायुक्त मर जाय तो कुक्षिको चीरकर बालकको निकाल ले, मर गया हो तो गाड़ दे, जीता हो तो ग्रहण करे, फिर यह प्रायश्चित्त करे, अर्थात् तैंतीस (३३) कृच्छ्र करनेसे वह शल्यके दोषसे पवित्र होता है । गर्भसहित उसका दाह करे तो वर्णके वधका प्रायश्चित्त लगता है, प्रायश्चित्तसे इस पापके कर्ता शुद्ध होते हैं, जो सगर्भा स्त्रीको दग्ध करे तो तीन वर्षतक कृच्छ्रव्रत करना होता है । अब स्त्रियोंका सती होना लिखते हैं-स्त्रियोंका सती होना अपने और स्वामीके पापका नाशक और नरकसे उद्धार करनेवाला है तथा अनेक स्वर्गका फल और मुक्तिके देनेवाला, दूसरे जन्ममें सौभाग्य और धन, पुत्र आदि वृद्धिको देता है । देश कालका स्मरण करके अरुंधतीके समान आचरणवाली और स्वर्गलोकमें पूज्यमानता और मनुष्यके लोमसंख्याके तुल्य वर्षोंतक स्वर्गवासकी इच्छावाली, चौदह इन्द्रोंके राज्यतक पतिके संग क्रीडा,माता, पिता, श्वशुर तीनों कुलोंको पवित्र करती, ब्रह्मघ्न, मित्रघ्न और कृतघ्न भी पतिके योगकी कामना और पतिके अवियोगकी इच्छावाली मैं प्रज्वलित हुई भर्ताकी चितामें आरोहण करती हूं यह संकल्प पढ़े । अनुगमनमें तो फलको कहकर अन्वारोहण करती हूं यह कहे, फिर हल्दी, कुंकुम, अंजनादिसे युक्त सूप सुहागि-

कुमाञ्जनादियुतशूर्पाणि सुवासिनीभ्यो दद्यात् । मन्त्रस्तु-"लक्ष्मीनारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः । गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वाणकैः परितोषितः ॥ सोपस्कराणि शूर्पाणि वाणकैः संयुतानि च । लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम् ॥ अग्नेः समीपमागत्य पञ्चरत्नानि पल्लवे । नीलाञ्जनं तथा बद्ध्वा मुखे मुक्ताफलं न्यसेत् ॥ ततोऽग्निप्रार्थनं कृत्वा मन्त्रेणानेन निश्चितम् । स्वाहासंश्लेषनिर्विण्णसर्वगोत्र हुताशन ॥ सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥" ततोऽग्नावाज्येनाग्नये तेजोऽधिपतये, विष्णवे सत्त्वाधिपतये, कालाय धर्माधिपतये, पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै, अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः, वायवे बलाधिपतये, आकाशाय सर्वाधिपतये, कालाय धर्माधिष्ठात्रे, अद्भ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः, ब्रह्मणे वेदाधिपतये, रुद्राय श्मशानाधिपतये च हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दृषदमुपलं च संपूज्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत् । "त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः ॥ अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभयपीडिता । सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥ मन्त्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताशनम् ॥" गौडास्तु-'इमा नारीरविधवाः' इति,

---

नी स्त्रियोंको दे । मन्त्र यह है कि बल और सत्त्वगुणके आश्रय लक्ष्मीनारायण देव वायनोंसे प्रसन्न होकर मुझे महासत्त्व प्रदान करें । सामग्रीसहित सूप और धायने सत्त्वकी कामनासे लक्ष्मीनारायणकी प्रसन्नताके लिये प्रदान करती हूँ, अग्निके निकट आकर पञ्चरत्नोंको पल्लवपर रख, नेत्रोंमें सुरमा लगाय (केशोंको) बांधकर मुखमें मोती रक्खे फिर इस मन्त्रसे निश्चयपूर्वक अग्निकी प्रार्थना करे कि हे अग्ने ! हे हुताशन ! तू स्वाहा अपनी स्त्रीके संयोगसे निर्विण्ण (विरक्त) ! हे सर्वगोत्र ! तुम सत्त्वमार्गको देनेवाले हो इससे मुझे भी पतिके निकट प्राप्त करो । फिर अग्निमें स्वाहा अन्तमें कहकर घीकी यह आहुति दे कि, 'अग्नये तेजोऽधिपतये० विष्णवे सत्त्वाधिपतये० कालाय० धर्माधिपतये पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै० अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः० वायवे बलाधिपतये० आकाशाय सर्वाधिपतये० कालाय धर्माधिष्ठात्रे अद्भ्यः सर्वसाक्षिणीभ्य० ब्रह्मणे वेदाधिपतये० रुद्राय श्मशानाधिपतये स्वाहा' यह आहुति प्रदानकर अग्निकी प्रदक्षिणा करे । पत्थर और शिलाकी पूजा करके पुष्पांजलिको ले अग्निकी प्रार्थना करे कि हे अग्नि ! तुम सब प्राणियोंके मध्य साक्षी होकर विचरते हो । जिन बातोंको मनुष्य नहीं जानते उनको तुम जानते हो । विधवात्वके डरसे पीड़ित हुई मैं पतिके संग अनुगत करती हूं । सत्त्वमार्गके प्रदानसे मुझे पतिके निकट प्राप्त करो, इस मन्त्रको उच्चारण कर शनैः शनैः अग्निमें प्रवेश करे । गौड़ तो यह कहते हैं कि ब्राह्मण इन दो मन्त्रोंको पढ़े कि 'यह नारी अविधवा हो' और यह

"ॐ इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो या याः सुशोभनाः । सह भर्तुः शरीरेण संविशन्तु विभावसुम् ॥" इति च विप्रः पठेदित्याहुः । कातरान्तु-प्रेतोत्तरे सुप्तां देवरः शिष्यो वा उदीर्ष्वेति द्वाभ्यामुत्थापयेत् । एतन्महिमा मिताक्षरादौ ज्ञेयः । पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-" अनुव्रजति भर्त्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥" यस्त्वङ्गिराः-" या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ॥ " इति । यच्च व्याघ्रपात्-" न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता । न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ॥ " इति, तत् पृथक्चितिपरम् । "पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः ॥ " इत्युशनसोक्तेः । पृथक्चितिस्तु क्षत्रियादिपरा । तद्विधिर्ब्राह्मे-" देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् । निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥ ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे निवृत्ते तु श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ॥ " इमा नारीरविधवा इति ऋग्वेदवादः । त्र्यहाशौचमन्वारोहणपरमिति स्मार्ताः । निषेधवाक्यानि प्रायश्चित्तार्थं मृतेन पतितेन वा सह मरणनिषेधपराणीत्यप्याहुः । अस्थिदाहे पलाशदाहे वा न पृथक्चितिदोषः । अङ्गत्वेन स्थानापत्त्या वा शरीरतुल्य-

---

पतिव्रता स्त्री पवित्र, पापरहित और शोभायमान है, इससे स्वामीके शरीरसहित अग्निमें प्रवेश करे । जो स्त्री भय माने तो उसको प्रेतके निकट देवर वा शिष्य 'उदीर्ष्व०' इन दो मन्त्रोंसे उठा ले । इसकी महिमा मिताक्षरा आदिमें जानना पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि जो स्त्री प्रसन्न होकर पतिके पीछे जानेकी इच्छासे श्मशानमें जाती है वह पग पगमें सर्व श्रेष्ठ अश्वमेधके फलको प्राप्त होती है । और जो अंगिराने कहा है कि जो ब्राह्मण-स्त्री मृतक पतिके पीछे जाती है वह आत्महत्याके दोषसे अपनेको और पतिको स्वर्गमें नहीं लेजाती । और जो व्याघ्रपादने कहा है कि शोकसे दुःखी हुई ब्राह्मणी पतिके संग सती न होवे; कारण कि वह आत्मघातिनी होनेसे ब्रह्मगतिको नहीं प्राप्त होती ये दोनों वाक्य पृथक् चिताके विषयमें जानने; कारण कि उशनाने कहा है कि पृथक् चितामें बैठकर ब्राह्मणीको सती होना न चाहिये और अन्यजातिकी स्त्रियोंका तो यह परमधर्म है । पृथक्चिता तो क्षत्रियआदिके विषयमें है । उसकी विधि ब्रह्मपुराणमें लिखी है कि देशान्तरमें पति मृतक हो जाय तो उसके दोनों खड़ाऊँ हृदयपर रखकर अग्निमें प्रवेश करे । ऋग्वेदके वादसे साध्वी स्त्री आत्मघातिनी नहीं होती, किन्तु तीन दिनके अशौचकी निवृत्ति होनेपर शास्त्रोक्त श्राद्धको प्राप्त होती है । यह सती नारी अविधवा है, यह ऋग्वेदवाद है । तीन दिनका अशौच अन्वारोहणके विषयमें लिखा है, यह स्मार्त्त लिखते हैं । निषेधके वाक्य तो प्रायश्चित्तके निमित्त पतितके संग मरनेके निषेधमें हैं, यदि पतिके अस्थियोंका दाह वा पतिकी प्रतिमाका दाह हो तो पृथक् चिताप्रवेशका दोष नहीं; कारण कि अंग होनेसे वा उसके स्थानमें जो हो वह उसके समान ही है जो हारीतने यह कहा है कि प्रसह-

स्वात्। यत्तु–"ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः। पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या॥" इति हारीतीयं, तत्पतितदाहादिनिषेधेन सहगमनस्य दूरतोऽपास्तत्वादर्थवादमात्रमिति पृथ्वीचन्द्रः। जन्मान्तरीयपापवता सह मरणे-नोद्धार इति स्मार्तगौडाः। शुद्धितत्त्वे व्यासः–"दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी चेत्कृतनिश्चया। न दहेत्स्वामिनं तस्या यावदागमनं भवेत्॥" तत्रैव भविष्ये–"तृतीयेऽह्नि उदक्यायां मृते भर्तरि वै द्विजाः। तस्यानुमरणार्थाय स्थापयेदेकरात्रकम्॥ एकां चितां समासाद्य भर्तारं यानुगच्छति। तद्भर्तुर्यः क्रियाकर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत्॥" एतद्दशाहान्तम्। 'यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि।' इति वायवीयोक्तेः। आपस्तम्बः–"चितिभ्रष्टा तु या नारी मोहाद्विचलिता भवेत्। प्राजापत्येन शुध्येत तस्माद्वै पापकर्मणः॥" तथा–"अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रियाम्। पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा॥ अन्वारोहे कृते पत्न्याः पृथक्पिण्डांस्तिलाञ्जलीन्। पृथक्शिले न कुर्वीत दद्यादेकशिले तथा॥" अन्यत्प्रागुक्तम्। इदं गर्भिणीबालापत्यासूतिकारजस्व-

---

त्यारा, कृतघ्न और मित्रघ्न भी पति हो उसको भी वह अविधवा नारी पवित्र करती है, जो उसे लेकर सती होती है, वह वाक्य पतितके दाहआदिका निषेध है तो सहगमन दूरसे अपास्त (दूर) है, इससे यह अर्थवादमात्र है, यह पृथ्वीचन्द्रका मत है। जन्मान्तरके पापीके संग सती होनेमें उद्धार नहीं होता, यह स्मार्तगौड कथन करते हैं। शुद्धितत्त्वमें व्यासका वाक्य है कि जो सती स्त्री इतनी दूरपर ग्राममें स्थित हो जितनी दूरसे एक दिनमें पहुँच सके तो निश्चयवाली उस स्त्रीके पतिका उसके आनेतक दाह करना उचित नहीं। वहां ही भविष्यपुराणका वाक्य है कि यदि रजस्वला स्त्रीका पति तीसरे दिन मरे तो हे ब्राह्मणो! उसके पतिको उस स्त्रीके मरनेके निमित्त एक रात्र रक्खे। एक चितामें बैठकर जो स्त्री पतिका अनुगमन करती है उसके भर्ताकी जो क्रिया करे, वही उसकी क्रिया करे। यह भी दशदिन पर्यन्त है; कारण कि वायुपुराणमें लिखा है कि जो प्रेतका अग्निसंस्कार करता है उसीको पिंड देने चाहिये। आपस्तम्बमें लिखा है कि चितासे भ्रष्ट हुई स्त्री मोहसे चलायमान हो जाय तो वह इस पापकर्मसे प्राजापत्य व्रत करनेसे पवित्र होती है। इसी प्रकारके वाक्य हैं कि अन्वारोहमें स्त्री और पतिकी एक जलदान क्रिया है तथा एक पिण्डदानक्रिया होती है और एकही शीलापर जलदान होता है। और कहने योग्य पहिले कह आये हैं। यह भी गर्भवती, कन्या सन्तानवाली,

---

१ कोई कहते हैं कि यदि मृतककी भिन्न माता और अनेक पुत्र हों तो पिताका सबसे बड़ा पुत्र ही और्ध्वदैहिक करे, अन्वारूढा (सती) में तो छोटा पुत्र भी कर सकता है और सौतका ज्येष्ठ पुत्र भी नहीं करे; कारण कि ऐसे स्थलमें उसमें पुत्रता नहीं है।

२ सब नवश्राद्ध और सपिंडीकरण पृथक् पृथक् होते हैं, परन्तु वृषोत्सर्ग और गौ एक दीजाती है॥

-लाव्यभिचारिणीभिर्न कार्यम् । "स्वैरिणीनां गर्भिणीनां पतितानां च योषिताम् । नास्ति पत्यग्निसंवेशः पतितौ हि तथा उभौ ॥" इति मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहोक्तेः । मदनरत्ने बृहस्पतिः–"बालसंवर्धनं मुक्त्वा बालापत्या न गच्छति । व्रतोपवासनियता रक्षेद्गर्भं च गर्भिणी ॥" तृतीयपादे-'रजस्वला सूतिका च' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गौडीयशुद्धितत्त्वे च पाठः । तत्रैव बृहन्नारदीयेऽपि–"बालापत्या च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा । रजस्वला राजसुता नारोहन्ति चितां तु ताः ॥" इति । अत्र–'पतिव्रता सा संदीप्तं प्रविशेद्या हुताशनम् ।' इति भारतात्, 'ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री' इति ब्राह्माच्च पतिव्रतानामेवाधिकारो न दुर्वृत्तानाम् । यत्तु–"अवमत्य च याः पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तन्ते याश्च सततं भर्तॄणां प्रतिकूलताः ॥ तत्रानुमरणं काले याः कुर्वन्ति तथाविधाः । कामात्क्रोधाद्भयान्मोहात्सर्वाः पूता भवन्त्युत ॥" इति भारतम्, तत्र कैमुतिकन्यायेन स्तावकमिति पृथ्वीचन्द्रः । ब्राह्मण्या एकचितिरेव न पृथक्चितिः । क्षत्रियादीनां पृथगेका वेति कल्पतरुरत्नाकरमदनपारिजातादयः । शुद्धिचिन्तामणौ चैवम् । तत्रान्वारोहणे भर्त्रशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा कृते त्रिरात्रमध्ये एव दश पिण्डाः । सहग-

---

सूतिका, रजस्वला और व्यभिचारिणी इनसे भिन्नका करना, कारण कि मदनरत्नमें स्मृतिसंग्रहका वाक्य है कि व्यभिचारिणी गर्भिणी और पतित स्त्रियोंका पतिके संग अग्निमें प्रवेश नहीं होता, यदि प्रवेश हो तो दोनों पतित होते हैं । मदनरत्नमें बृहस्पतिका वाक्य है कि बालकके भरण पोषणको त्यागकर बालक संतानवाली स्त्री स्वामीके साथ न मरे और गर्भिणीको व्रतउपवासमें तत्पर रहकर गर्भकी रक्षा करनी चाहिये । पूर्वोक्त श्लोकके तीसरे पादसे सूतिका और रजस्वलाको भी पृथ्वीचन्द्रोदय और गौडोंने शुद्धितत्त्वमें पढा है कि उनको भी अनुगमन न करना चाहिये । वहां ही बृहन्नारदीयका वाक्य है कि जिसकी सन्तान बालक है वह तथा गर्भिणी और जिसको ऋतु न हुई हो और रजस्वला तथा राजकन्या इनको चितामें आरोहण न करना चाहिये । इसमें वह पतिव्रता स्त्री जलती हुई अग्निमें प्रवेश करे, इस भारतके वाक्यसे और ऋग्वेदके वादसे साध्वी स्त्रीको आत्मघात न करना चाहिये, इस ब्रह्मपुराणके वाक्यसे केवल पतिव्रताको ही सहगमनका अधिकार है, दुराचारिणियोंको नहीं । और जो यह भारतका वाक्य है कि जो स्त्री प्रथम दुष्टचित्तसे पतिका तिरस्कार करके और सदा पतिके प्रातिकूल रहती है, यदि वे भी समयपर काम, क्रोध, भय वा मोहसे पतिके पश्चात् मरण करें तो वे भी पवित्र होती हैं, यह भारतका वाक्य कैमुतिकन्यायसे स्तुतिके निमित्त है, यह पृथ्वीचन्द्रका मत है । ब्राह्मणीकी एकचिता ही होती है पृथक् नहीं होती और क्षत्रिय आदिकी तो पृथक् वा एकचिता होती है, यह कल्पतरु, रत्नाकर और मदनपारिजात आदिका कथन है । शुद्धिचिन्तामणिमें भी इसी प्रकार कहा है । वहां अन्वारोहणमें पतिके अशौचके बीचमें वा उसके पश्चात् अन्वारोहण हो तो तीन दिनके मध्यमें ही दश

मनं तु भर्तुराशौचतुल्यमाशौचं पिण्डदानं च । " अन्वितायाः प्रदातव्या दश पिण्डारुयहेण तु । स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते ॥" इति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च पैठीनसिस्मृतेः । "संस्थितं पतिमालिङ्गय प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं देयं क्रमशः पतिपिण्डवत् ॥" इति शूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासोक्तेः । अन्यत्प्रागुक्तम् । यदा तु रजस्वलापि पत्नी मृते पत्यौ देशकालवशात्तदैवानुगच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते, तत्र विधिः देवयाज्ञिकनिबन्धे-"यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान्समुत्सृजेत् । द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्धये ॥ मुसलाघातैस्तदसृक्स्रवते योनिमण्डलात् । विरजस्का मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षयम् ॥ दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्च मृत्तिकया पृथक् । त्रिंशद्विंशती दश च गवां दत्त्वा त्र्यहःक्रमात् ॥ विप्राणां वचनाच्छुद्धा समारोहेद्धुताशनम् । नारीणां सरजस्काणामियं शुद्धिरुदाहृता ॥" अत्र श्राद्धादौ निर्णयः पूर्वमुक्तः । इति श्रीभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धावन्त्यकर्मनिर्णयः । अथाग्निप्रवेशाशक्तौ तु विष्णुः-' मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं च । ' इति । ब्रह्मवैवर्ते-' सहानुगमनं शस्तं वैधव्यस्याथ पालनम् ।' यत्तु तत्रैव-'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते ।'इति, तद्ब्रह्मचर्या-

---

पिंड देने चाहिये और सहगमनमें तो पतिके संग अशौच और पिंडदान होता है, कारण कि शुद्धितत्त्व और शूलपाणिमें पैठीनसिकी स्मृतिका वचन है कि (पीछे मरकर सती हुई) स्त्रीको तीन दिनमें दश पिंड दे और भर्ताके अशौच बीतनेपर उसको श्राद्ध दिया जाता है । शूलपाणि, शुद्धितत्त्वमें व्यासका वाक्य है कि मृतक हुए पतिको आलिंगन कर जो स्त्री अग्निमें प्रवेश करती है उसके पिण्ड आदि क्रमसे पतिपिंडके तुल्य देने चाहिये । और पहले कहआये हैं । जो रजस्वला स्त्री भी पतिके मरनेपर देशकालके वशसे उसी समय सती होनेकी इच्छा करे (अनुगमन चाहे) और शुद्धिकी प्रतीक्षा न करे तो उसका विधान देवयाज्ञिकग्रन्थमें लिखा है कि जब स्त्री रजस्वला हो और पति प्राणोंको त्याग दे तो वह एक द्रोणभर चावल शुद्धिके निमित्त मूसलसे कूटै, मूसलकी चोटसे उसके योनिमण्डलसे रक्त गिरजाता है, उस रुधिरके पात होनेसे अपने मनमें रजसे रहित मानती हुई पांच मृत्तिका खण्डसे पृथक् पृथक् शौच करे । तीस वीस वा दश गोदान करके और ब्राह्मणोंके वाक्यसे शुद्ध होकर अग्निमें प्रवेश करे, इस प्रकार रजस्वला स्त्रियोंकी शुद्धि लिखी है, और इसमें श्राद्धका निर्णय पहले लिख आये हैं । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामन्त्यकर्मनिर्णयः । अग्निप्रवेशकी शक्ति न हो तो विष्णुने कहा है कि पतिके पीछे ब्रह्मचर्य करे, वा अन्वारोहण करे । ब्रह्मवैवर्तमें कहा है कि स्त्रीको सहगमन वा वैधव्यका पालन श्रेष्ठ है । और जो वहां ही लिखा है कि सहगमनके विना कलियुगमें स्त्रियोंकी और गति नहीं है, वह उसके

शक्यत्वपरम्। तथा च मनुः-'ब्रह्मचर्यं चरेद्वापि प्रविशेद्वा हुताशनम्।' काशीखण्डेऽपि-"पत्यौ मृतेऽपि या योषिद्वैधव्यं पालयेत्क्वचित्। सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गलोकं समश्नुते॥ अनुयाति न भर्तारं यदि दैवात्कथंचन। तत्रापि शीलं संरक्षेच्छीलभङ्गात्पतत्यधः॥ तद्वैगुण्यादपि स्वर्गात्पतिः पतति नान्यथा। तस्याः पिता च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च॥" अथ विधवाधर्माः। मदनरत्ने स्कांदे-"विधवाकबरीबन्धो भर्तृबन्धाय जायते। शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा॥ एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन। मासोपवासं वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा॥ पर्यंकशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्। नैवाङ्गोद्वर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचित्॥ गन्धद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तया पुनः। तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुस्तिलकुशोदकैः॥ तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम्॥" इदमपुत्रापरमिति मदनपारिजातः। "नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि। कंचुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतं वसेत्॥ वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत्॥" प्रचेताः-"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम्। यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत्॥" श्राद्धादौ तु विशेषः प्रागुक्तः। यत्तु बौधायनः-"संवत्सरं प्रेतपत्नी मधु मांसं विवर्ज-

---

निमित्त है, जो ब्रह्मचर्य न कर सके। वही मनुने लिखा है कि ब्रह्मचर्य्य करे वा अग्निमें प्रवेश करे। काशीखंडमें भी कहा है कि पतिके मृतक होनेपर भी जो स्त्री वैधव्यकी पालना करती है, वह फिर भी पतिको प्राप्त होकर स्वर्गमें प्राप्त होती है। यदि भाग्यवश किसी प्रकार पतिका अनुगमन न करे, तो भी शीलकी रक्षा करे; कारण कि शीलके भंगसे नरकमें गिरती है और उसीके अवगुणोंसे पिता, माता, भ्राता और पति ये भी स्वर्गसे गिर जाते हैं। अब विधवाके धर्म लिखते हैं-मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि विधवाका वेणीबन्धन पतिके बन्धनार्थ होता है, इससे विधवा शिरका मुण्डन करावे और सदा एक वार भोजन करे, किसी प्रकार भी दूसरे वार भोजन न करे, मासोपवास वा चांद्रायणव्रत करे। जो विधवा स्त्री शय्यापर शयन करती है वह पतिको पतित करती है, विधवा स्त्रीको कभी उबटना और गन्धद्रव्यका भोग न करना चाहिये। तिल, कुशा, जलसे पति और उसके पिता और पितामहके निमित्त नामगोत्र उच्चारण कर प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये। यह भी अपुत्राके निमित्त है, यह मदनपारिजातमें कहा है। विधवा स्त्रीको उचित है कि कण्ठमें प्राण आनेपर भी बैलपर आरोहण न करे अर्थात् न चढ़े, कंचुक (चोली) और विकार करनेवाले वस्त्रको भी कदाचित् धारण न करे। और वैशाख, कार्त्तिक, माघमासमें विशेष नियम करे। प्रचेताने कहा है कि पान, अंजन और कांसीके पात्रमें भोजन इनको संन्यासी, ब्रह्मचारी और विधवाको त्यागने चाहिये। श्राद्धआदिमें विशेष प्रथम लिख आये हैं। और जो बौधायनने लिखा है कि मृतककी स्त्री वर्षदिनतक मधु, मांसका त्याग करे, छः महीनेतक नीचे शयन करे, यह

येत्। अधः शयीत षण्मासानिति मौद्गल्यभाषितम्॥" इति, तदसवर्णापरमित्यपरार्कः।
अथ संन्यासनिर्णयः। याज्ञवल्क्यः—"वनाद्गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम्। प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि॥ अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान्॥ शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा॥" एतदाश्रमसमुच्चयपक्षे। जाबालश्रुतौ त्वन्येऽपि पक्षा उक्ताः। 'यदि चेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा स्नातको वास्नातको वोत्सन्नाग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इति। अङ्गिराः—"प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेद्वा गृहादपि। वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः॥" आतुरो मुमूर्षुः। दुःखितश्चौरव्याघ्रादिभीतः। भारते—"आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत्॥" जाबालश्रुतावपि—'यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्' इति। अत्र विप्रस्यैवाधिकारः। 'ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति' इति जाबालश्रुतेः। 'आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्।' इति मनूक्तेश्चेति विज्ञानेश्वरादयः। वृद्धयाज्ञवल्क्योऽपि—"चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ता आश्रमाः श्रुतिचोदिताः। क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको

मौद्गल्य कहते हैं, सो अपरार्क इस वाक्यको असवर्णविषयक कहते हैं। अब संन्यासका वर्णन करते हैं—याज्ञवल्क्यका वाक्य है कि वन वा गृहमें सब वेदोंके मन्त्रोंसे दक्षिणा सहित प्राजापत्य यज्ञ करके फिर उन अग्नियोंका आत्मामें आरोपण करे। वेद पढ़े हुए, जपमें तत्पर, पुत्रवान्, अन्नदाता, अग्निवाला, शक्तिसे यज्ञका कर्ता मोक्षमें मनको करे, इससे अन्यथा न करे, यह भी आश्रमके समुच्चय पक्षमें जानना। जाबालश्रुतिमें तो और भी पक्ष लिखे हैं कि यदि अन्यथा देखे तो ब्रह्मचर्यसे ही गमन करे वा गृहसे वा वनसे गमन करे और व्रती न हो, स्नातक न हो वा स्नातक हो, या नष्टअग्नि हो ऐसे मनुष्यके मनमें जिस दिन विराग हो उसी दिन संन्यास लेना चाहिये। अंगिराने लिखा है कि बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचर्यसे, गृहसे वा वनसे गमन करे (संन्यास ले) और आतुर (मरनेकी इच्छावाला) दुःखित (चोर व्याघ्रआदिसे डरा हुआ) संन्यासको न ग्रहण करे। भारतमें लिखा है कि आतुरोंके संन्यासमें न विधि न कर्म है, किन्तु प्रैषमात्रका उच्चारण करके संन्यासका स्वीकार करना चाहिये। जाबालश्रुतिमें भी कहा है कि यदि मनुष्य आतुर हो तो मन वा वाणीसे ही संन्यास ग्रहण कर ले। इनमें ब्राह्मणका ही अधिकार है; कारण कि यह जाबालश्रुतिमें लिखा है कि ब्राह्मण संन्यासी होते हैं। मनुने भी कहा है कि आत्मामें अग्नियोंका आरोप करके ब्राह्मणको संन्यास लेना चाहिये, यह विज्ञानेश्वर आदिने कहा है। वृद्धयाज्ञवल्क्यने भी कहा है कि श्रुतिमें ब्राह्मणके लिये चारों आश्रम कहे हैं और क्षत्रियको तीन, वैश्यको

---

१ संन्यासका यही नियम नहीं कि क्रमसे आश्रममें आवे तो ग्रहण करे; किन्तु वामदेवादिके समान जभी पूर्णज्ञान हो जाय तभी संन्यासको स्वीकृत करे।

वैश्यशूद्रयोः ॥" इति । माधवस्तु-' ब्राह्मणः क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात् । इति कौर्माद्युक्तेर्वर्णत्रयस्याप्यधिकारः । पूर्ववाक्यं तु काषायदण्डादिनिषेधार्थम् । "मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम् । राजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वचः ॥" इति बौधायनोक्तेरिति पक्षान्तरमाह । तत्त्वं तु कुटीचकादिपरमेतदिति । योऽपि 'संन्यासं पलपैतृकम्' इति कलौ निषेधः, सोऽपि त्रिदण्डादिपरः इत्युक्तं प्राक् । स च संन्यासश्चतुर्धेत्याह हारीतः-"कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः । चतुर्थः परमो हंसो यो यः पश्चात्स उत्तम ॥" आद्यः पुत्रादिना कुटीं कारयित्वा तत्र गृहे वा वसन् काषायवासाः शिखोपवीतत्रिदण्डवान् बन्धुषु स्वगृहे वा भुञ्जान आत्मज्ञो भवेत् । एतदत्यन्ताशक्तपरम् । द्वितीयस्तु बन्धून् हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन् पूर्वोक्तवेषः स्यात् । हंसस्तु पूर्वोक्तवेषोऽप्येकदण्डः । ' एकं तु वैणवं दण्डं धारयेन्नित्यमादरात् ।' इति स्कान्दात् । विष्णुरपि-"यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् । तावान्परिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः ॥" चतुर्थोऽपि स्कान्दे-"परहंसस्त्रिदण्डं च रज्जुं गोवालनिर्मिताम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत् ॥" अयमप्येकदण्ड एव । ये तु शिखो-

---

दो और शूद्रको एक आश्रम लिखा है । माधव तो यह पक्ष भी लिखते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वा वैश्य घरसे गमन करे, इस कौर्मआदिके वाक्यसे तीनों वर्णोंका अधिकार है । पहला वाक्य तो काषायवस्त्र और दंडआदिके निषेधके निमित्त है; कारण कि विष्णुके चिह्नका धारण (संन्यास) ब्रह्मणोंका धर्म है, क्षत्रिय वैश्यका नहीं, यह दत्तात्रेय मुनिका वचन है, इस बौधायनोक्तिसे पक्षान्तर कहा है । सिद्धान्त तो यह है कि यह वचन कुटीचक आदि पर है । जो यह लिखा है कि संन्यास और मांससे श्राद्ध कलियुगमें न करे, वह भी त्रिदंड आदिके विषयमें है, यह पहिले लिख आये हैं । वह संन्यास चार प्रकारका है यह हारीतने लिखा है कि कुटीचक, बहूदक, हंस और चौथा परम हंस उत्तम है । कुटीचक वह होता है जो पुत्रआदिके द्वारा कुटी बनाकर उसमें वा घरमें काषायवस्त्रको धारण करके निवास करे, शिखा, यज्ञोपवीत और त्रिदण्ड धारण करे, अपने बन्धु वा घरमें भोजन करे और आत्मज्ञानी हो, परन्तु यह उसके निमित्त है जो अत्यन्त अशक्त हो । जो अपने बन्धुओंको त्यागकर सात घरमें भिक्षा मांगे और पूर्वोक्त वेषको धारे वह बहूदक संन्यासी होता है । तीसरा हंस वह है जो पूर्वोक्त वेष धारे और एक दण्डको धारण करे; कारण कि स्कंदपुराणमें लिखा है कि एक बांसके दण्डको आदरपूर्वक नित्य धारण करे । विष्णुने भी लिखा है कि यज्ञोपवीत, दंड, जन्तुनिवारण वस्त्र इतना ही परिग्रह हंसको लिखा है, और नहीं । चौथा परमहंस स्कंदपुराणमें लिखा है कि त्रिदंड, गौके बालोंकी रज्जु, शिखा, यज्ञोपवीत तथा नित्य कर्म इनको परमहंस त्याग दे, यह भी एकदंडवाला होता है । और जो शिखा,

पवीतादित्यागनिषेधास्ते कुटीचकादिपराः । यत्तु मेधातिथिः–'यावन्न स्युस्त्रयो दण्डास्तावदेकेन वर्तयेत् ।' इति, तदपि तत्परमेव । यच्चात्रिः–'चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः ।' इति, तद्वाग्दण्डादिपरं न यष्टिपरम् । "वाग्दण्डोऽथ मनोदंडः कर्मदंडस्तथैव च । यस्यैते नियता दंडाः स त्रिदंडीति चोच्यते ॥" इति मनूक्तेः । तस्मात्परमहंसस्यैकदण्ड एव । सोऽप्यविदुषः, विदुषस्तु सोऽपि नास्ति । "न दण्डं न शिखां नाच्छादनं चरति परमहंसः" इति महोपनिषदुक्तेः । 'ज्ञानमेवास्य दंडः' इति वाक्यशेषाच्च । यत्तु यमः–"काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः । स याति नरकान्घोरान् महारौरवसंज्ञितान् ॥" इति, तद्वैराग्यं विना जीवनार्थसंन्यासपरम् । "एकदंडं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः । नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते ॥" इति स्मृतेः । यच्चाश्वमेधिके–"एकदंडी त्रिदंडी वा शिखामुण्डित एव वा । काषायमात्रसारोऽपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर ॥" इति । तस्यापि पूर्वोक्तव्यवस्था ज्ञेया । अथ संन्यासविधिः । बौधायनः–"कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि पित्रादिभ्योऽष्टकं पृथक् । वापयित्वा च केशादीन् मार्जयेन्मातृका इमाः ॥" सर्वाणीति स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धादि कृत्वेत्यर्थः । स्मृत्यर्थसारेऽपि–"एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि

यज्ञोपवीत आदि त्याग करनेके निषेध हैं वे कुटीचक आदिके निमित्त हैं । और जो मेधातिथिका यह वाक्य लिखा है कि जबतक तीन दंड न हों तबतक एकसे ही वर्त्तना चाहिये, यह भी एकदंडीके विषयमें है । जो अत्रि कहते हैं कि चार प्रकारके भिक्षु सब त्रिदंडी होते हैं, यह वाग्दंडादिमें जानना, यष्टि (लाठी) के दंडमें नहीं; कारण कि मनुने लिखा है कि वाग्दंड, मनोदंड, कर्मदण्ड जिसमें ये दंड नियमसे है वही त्रिदंडी कहाता है । इससे परमहंसका एक ही दंड होता है और वह भी अज्ञानीको होता है, ज्ञानीको तो वह भी नहीं; कारण कि महोपनिषद्में लिखा है कि दंड, शिखा और आच्छादन वस्त्र इनको परमहंस नहीं रखते । और यह भी शेष वाक्य है कि ज्ञान ही इसका दंड है । जो यमने यह लिखा है कि जिसने काष्ठके दंडको धारण किया और जहां तहां भोजन खाया और ज्ञानसे हीन रहा वह महारौरव नाम घोर नरकोंमें गमन करता है, वह वाक्य वैराग्यके विना जीवनके निमित्त संन्यासके निमित्त है; कारण कि यह स्मृतिमें लिखा है कि जो बहुतसे मनुष्य एक दंडके आश्रयसे जीते हैं, वे कर्मके त्यागसे घोर रौरवनरकमें जाते हैं । हे युधिष्ठिर ! एकदंडी, त्रिदंडी, शिखावाला वा मुंडी हो केवल काषाय धारण किये भी संन्यासी पूजने योग्य है, यह जो अश्वमेध पर्वमें कहा है उसकी भी पूर्वोक्त व्यवस्था जाननी चाहिये । अब संन्यासकी विधिका वर्णन करते हैं–बौधायनने लिखा है कि संपूर्ण श्राद्ध और पिताआदिके अष्टकाश्राद्ध भिन्न भिन्न करके मुण्डन कराय इन मातृकाओंका मार्जन करे । सम्पूर्ण श्राद्धोंसे अपने नवश्राद्ध षोडशश्राद्धका ग्रहण है । स्मृत्यर्थसारमें भी लिखा है कि

षोडश । अग्निमान्पार्वणेनैव विधिना निर्वपेत्स्वयम्॥" इति। कात्यायनः-"कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी।आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत्॥" बौधायनः-"सदैवमार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषे। भौतिकं चात्मनश्चांते अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत्॥" अत्र क्रममाह हेमाद्रौ शौनकः-'देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा देवताः।आर्षे देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्त्रर्षयःदेवर्षिक्षत्रर्षिमनुष्यर्षयो वा॥ मरीच्यादिऋषय इति संन्यासपद्धतौ तच्चिन्त्यम् । दिव्ये वसुरुद्रादित्याः । मानुषे सनकसनंदनसनातनाः । भूतश्राद्धे पृथिव्यादिभूतानि चक्षुरादिकरणानि चतुर्विधो भूतग्रामश्चेति तिस्रः । पित्र्ये पित्रादित्रयो मातामहाश्च । मातृके मात्रादयस्तिस्रः । आत्मश्राद्धे आत्मपितृपितामहा देवताः। आत्मश्राद्धं परमात्मदैवत्यमिति संन्यासपद्धतौ तच्चिन्त्यम्। सर्वत्र नान्दीमुखत्वं विशेषणं ज्ञेयम् । सर्वत्र पिण्डदानम् । युग्मा विप्राः । दक्षक्रतू सत्यवसू वा विश्वेदेवौ । अन्यन्नान्दीश्राद्धवदिति हेमाद्रिः।स्मृत्यर्थसारे-"केशश्मश्रुलोमनखं वा.पयित्वोपकल्पयेत् । दण्डं जलं पवित्रं च शिक्यं पात्रं कमण्डलुम् ॥" आसनं कौपीनमाच्छादनं कन्था पादुके इति दश पञ्च वा।एतच्च पूर्वेद्युर्नान्दीमुखं कृत्वा परेद्युः पुण्याहवाचनं कृत्वा कार्यमिति शौनकः। बौधायनः-"त्रीन्दण्डानङ्गुलिस्थूलान्वैणवान्मूर्ध-

---

एकोद्दिष्टके विधानसे षोडश श्राद्ध करे और अग्निहोत्री हो तो पार्वणकी विधिसे स्वयं श्राद्ध करे। कात्यायनने कहा है कि किसी आश्रममें न हो तो चार (४) कृच्छ्र और आश्रमी हो तो पवित्रताके लिये तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये, इससे वह संन्यासके योग्य होता है। बौधायनने कहा है कि देव, ऋषि, दिव्य, पित्र्य, मातृक, मानुष, भौतिक और अपना इन आठों श्राद्धोंको करे । इसमें क्रम हेमाद्रिमें शौनकने कहा है कि देवश्राद्धमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर देवता हैं इनका श्राद्ध करे । आर्षमें देवर्षि, ब्रह्मर्षि, क्षत्रियर्षि वा देवर्षि, क्षत्रर्षि और मनुष्यर्षि देवता हैं। और आर्षमें मरीचि आदि ऋषि होते हैं । यह संन्यासपद्धतिमें लिखा है वह चिन्त्य अर्थात् उसमें कुछ प्रमाण नहीं है। दिव्यश्राद्धमें, वसु, रुद्र, आदित्य; मानुषमें सनक, सनन्दन; सनातन, भूतश्राद्धमें पृथ्वी आदि भूत और नेत्रआदि इन्द्रिय, चार प्रकारका भूतग्राम; पितृश्राद्धमें पिता आदि तीन और मातामह आदि तीन; मातृश्राद्धमें माता आदि तीन; आत्मश्राद्धमें आत्मा, पिता और पितामह ये तीन देवता होते हैं। आत्मश्राद्धमें परमात्मा देवता होता है, यह संन्यासपद्धतिमें कहा है, सो चिन्त्य है। सब स्थानोंमें नान्दीमुख विशेषण जानना और सब जगह पिण्डदान करना और युग्म ब्राह्मण होते हैं। दक्ष, क्रतु वा सत्य, वसु विश्वेदेवा होते हैं। और कर्म नांदीमुखके समान होता है, यह हेमाद्रि कथन करते हैं। स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि केश, श्मश्रु, लोम, नखको मुँडाकर दंड, जल, पवित्र, शिक्य (छीका), पात्र, कमंडलुको वा आसन, कौपीन, आच्छादन, कन्था, खडाँऊ इन पांचोंको धारण करे। यह भी पहिले दिन नांदीमुख और दूसरे दिन पुण्याहवाचन करके करना, यह शौनकने कहा है। बौधायनने लिखा है कि

संमितान् । एकादश नव द्वित्रिचतुःसप्तान्यपर्वकान्॥वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्ज्वा तु चतुरंगुलान्। एको वा तादृशो दंडो गोवालसदृशो भवेत्॥अनग्निरग्निमुत्पाद्य नित्येन विधिना ततः ॥" पृष्टोदिविविधानेनेत्यर्थः । "स्वाग्नावेवाग्निमान् कुर्यादपवर्गोक्तमादितः । आज्यं पयो दधीत्येतत्त्रिवृद्वा जलमेव वा ॥ ॐभूरित्यादिना प्राश्य रात्रिं चोपवसेत्ततः । अथादित्यास्तसमयात्पूर्वमग्नीन् विहृत्य सः ॥ आज्यमग्नौ गार्हपत्ये संस्कृत्यैतेन च स्रुचा । पूर्णमाहवनीये तु जुहुयात्प्रणवेन तत्॥ ब्रह्मान्वाधानमेतत्स्यादाग्निहोत्रे हुनेत्ततः । संस्तीर्य गार्हपत्यस्य दर्भानुत्तरतोऽग्रं तु ॥ पात्राण्यासाद्य दर्भेषु ब्रह्मायतन एव तु । जागृयाद्रात्रिमेतां तु यावद्ब्राह्मो मुहूर्त्तकः॥अग्निहोत्रं स्वकाले च हुत्वा प्रातस्तनं ततः । इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्प्राजापत्यमथापि वा ॥" जाबालश्रुतौ–'तद्वैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वीत तदु तथा न कुर्यादाग्नेयीमेव कुर्यात्पश्चात् त्रैधातवीयामेव कुर्यात्' इत्युक्तम् । तेनात्र विकल्पः । अत्राहुः–'त्रेताग्नेः प्राजापत्यात् ।' तद्वाक्यशेषे 'अग्नीन्'इति बहुत्वश्रुतेः । 'एकाग्नेस्त्वाग्नेयी' इति । अनाहिताग्नेरिष्टिस्थाने वैश्वानर आग्नेयो वा चरुरिति माधवः । कात्यायनः–"आत्मन्यग्नीन्समारोप्य वेदिमध्यस्थितो हरिम् । ध्यात्वा हृदि त्वनुज्ञातो गुरुणा प्रैषमीरयेत्॥"कापिलः–"विधिवत्प्रैषमुक्त्वाथ त्रिरुपांशु त्रिरुच्चकैः।अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यथो भुवि॥निनीय दंडाशिक्यादि

अंगुलीके समान स्थूल और मस्तकपर्यन्त बाँसके तीन दण्ड रक्खे जिनमें ग्यारह, नौ, दो, तीन, चार वा सात गांठें हों और काली गौके बालोंकी रस्सीके चार अंगुलके वेष्टन हों वा गौके बालोंके तुल्य एक ही वैसा दण्ड हो । जो अग्निहोत्री न हो वह पृष्टोदिविआदि विधानसे ग्रहण करे और अग्निहोत्री पहले अपनी अग्निमें अग्निको उत्पन्न करके क्रमपूर्वक संन्यास ले; घी, दूध, दही ये तीनों वा केवल जलको 'ॐभूः' इत्यादिसे भक्षण करके एकरात्रि व्रत करे । फिर सूर्यके अस्त होनेसे प्रथम अग्निहोत्र करके फिर गार्हपत्य अग्निमें घृतका संस्कार करके उस घी भरे स्रुवेसे आहवनीय अग्निमें ॐकार उच्चारण कर आहुति दे, ब्रह्मोका अन्वाधान समझकर उस अग्निहोत्रमें हवन करे और जबतक ब्राह्ममुहूर्त हो तबतक समय २ पर अग्निहोत्र करे, फिर वैश्वानरी इष्ट यज्ञ और प्राजापत्य यज्ञ करे । जाबालश्रुतिमें कहा है कि कोई प्राजापत्य यज्ञ कहते हैं, उसका उत्थान करे फिर आग्नेयीयज्ञ करे, फिर त्रैधातवी यज्ञ करना, इससे यहां विकल्प है, इसमें कोई लिखते हैं कि, जो तीन अग्निवाला है उसका प्राजापत्ययज्ञ करना चाहिये; कारण कि उसके वाक्यशेषमें 'अग्नीन्' यह बहुवचन श्रवण किया है और जो एक अग्निहोत्री है वह आग्नेयीको करे; कारण कि माधवने लिखा है कि अनाहिताग्निको इष्टिके स्थानमें वैश्वानर वा आग्नेयचरु होती है । कात्यायनने लिखा है कि आत्मामें अग्नियोंका आरोप करके वेदीके मध्यमें स्थित ब्राह्मण हृदयमें नारायणका ध्यान करके गुरुकी आज्ञासे प्रैषमंत्रका उच्चारण करे । कपिलने कहा है कि फिर विधिवत् प्रैषमंत्रको उच्चारण कर तीन वार सूक्ष्म स्वरसे तीन वार ऊंचे स्वरसे यह कहे कि 'अभयं

गृहीत्वाथ बहिर्व्रजेत् ॥" अभयमितिमन्त्रेण अपां पूर्णमंजलिं निनीयेत्यर्थः । बौधायनः—"सखे मेत्यादिना दण्डं येन देवाः पवित्रकम् । यदस्य पारे शिक्यं तु पात्रं व्याहृतिभिस्तथा॥युवा सुवासाः कौपीनं गृहीत्वा बान्धवांस्त्यजेत्॥" अथ संन्यासग्रहणक्रमः । तत्र संन्यासेऽधिकारसिद्ध्यर्थं स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिण्डनानि साग्निः पार्वणान्यनाग्निस्त्वेकोद्दिष्टविधिना कृत्वाऽनाश्रमी चेत्कृच्छ्रचतुष्टयम्, अन्यस्तु तप्तकृच्छ्रं कृत्वोदगयने एकादश्यां द्वादश्यां वा साग्निरमावास्यायां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां वा यथा पर्वणि प्राजापत्यं स्यात् । तत्र देशकालौ स्मृत्वा परमहंसादिसंन्यासग्रहणं करिष्ये इति संकल्प्य गणेशं संपूज्य पुण्याहं वाचयित्वा मातृकापूजां वृद्धिश्राद्धं च कृत्वाऽस्तमयात्प्रागौपासनं समिध्याहिताग्निस्तु गार्हपत्ये, विधुरोऽग्निहोत्री तु त्रिकाण्डमण्डनोक्तदिशा कुशपत्न्या सह पवमानेष्ट्यन्तं पूर्णाहुत्यन्तं वाधानं कुर्यात् । ब्रह्मचारी चेल्लौकिके विधुरश्चेद्व्याहृतिभिः प्रणवेन चाग्निमादायान्वग्निरुषसामित्यानीय पृष्टोदिवीति निधाय तेनैव समिध्य तत्सवितुः तां सवितुः विश्वानिन इति तिस्रः

सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ' सब प्राणियोंको मुझसे अभय हो, फिर भूमिपर झुककर दंड और शिक्य आदि लेकर ग्रामसे बाहर चला जाय । भूमिपर झुकनेका यह अर्थ है पूर्वोक्त ' अभयम् ' इस मंत्रसे भूमिपर जलोंकी तीन अंजली देनी चाहिये । बौधायनने कहा है कि ' सखे मे ' इत्यादि मंत्रसे दंड, ' येन देवा० ' इस मंत्रसे पवित्री, ' यदस्यपारे० ' इस मंत्रसे शिक्य, व्याहृतियोंसे पात्र, 'युवासुवासा०'[1] इस मंत्रसे कौपीनको ग्रहण करके बांधवोंको त्याग देना चाहिये । अब क्रमका वर्णन करते हैं—उसमें संन्यासके अधिकार सिद्धिके निमित्त अपने नवश्राद्ध, षोडशश्राद्ध, सपिंडीको साग्नि पार्वणविधिसे और अनग्नि एकोद्दिष्टविधिसे सम्पादन करके अनाश्रमी हो तो चार कृच्छ्र और आश्रमी हो तो तप्तकृच्छ्र करके उत्तरायण समयमें एकादशी वा द्वादशीको, साग्नि अमावस्या, पूर्णमासी वा चतुर्दशीको पर्वके अनुसार प्राजापत्यव्रत करे । फिर देशकालका स्मरण करके ' परमहंस आदि संन्यासको ग्रहण करता हूँ ' यह संकल्प करके गणेशजीकी पूजा, पुण्याहवाचन, मातृकापूजा और वृद्धिश्राद्ध सम्पादन करके, सूर्यास्तसे प्रथम औपासन अग्निको प्रज्वलित करके और आहिताग्नि गार्हपत्य अग्निसे वा पत्नीसे रहित हो और अग्निहोत्री हो तो त्रिकाण्डमंडनमें लिखे प्रकारसे कुशोंकी पत्नीसहित पवमानेष्टिपर्यंत वा पूर्णाहुतिपर्यंत गार्हपत्य अग्निमें आधान करे। ब्रह्मचारी हो तो लौकिक अग्निमें आधान करे और विधुर हो तो व्याहृति वा ॐकारसे अग्निको लेकर ' अग्निरुषसाम० ' इत्यादि ' पृष्टो दिवि० ' इस मंत्रसे वेदीपर अग्निको स्थापित कर और उसी मंत्रसे प्रज्वलित कर 'तत्सवितुः, विश्वानिनः० ' इन मंत्रोंसे तीन समिधा स्थापन करे ।

---

१ युवासुवासाः परिवीत आगात्स उश्रेयान्भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः । ३ । १ । ३ । ऋ० ॥

समिधोऽभ्यादध्यात् । एवमग्नौ सिद्धे कक्षोपस्थवर्ज्यं वपनं कृत्वा पयोदधियुतमाज्यमपो वा ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यमिति प्राश्याचम्य पुनराद्याय ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहीति द्वितीयम्, ॐ स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो योनः प्रचोदयादिति तृतीयम्, समस्तया चतुर्थम् ॐ भूर्भुवःस्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितु० यात् इति । संन्यासपद्धतौ तु त्रिवृदसीति प्रथमं प्रवृदसीति द्वितीयं विवृदसीति तृतीयं प्राश्यापः पुनन्त्विति जलं प्राश्य सावित्रीप्रवेश उक्तः । तत आहवनीयं विहृत्य ब्रह्माणमुपवेश्याज्यं संस्कृत्य चतुर्द्वादश वा गृहीत्वा समित्पूर्वमों स्वाहा परमात्मन इदमिति हुत्वोपवसेत् । ततः सायंहोमं वैश्वदेवं च कृत्वा अग्नेरुदक्कुशानास्तीर्य दण्डादीनि दश पञ्च वासाद्य ब्रह्मासने कृष्णाजिनोपविष्टो रात्रौ जागरं कृत्वा प्रातर्होमानन्तरं प्राजापत्यां वैश्वानरीं वा कृत्वा ऋत्विग्भ्यः सर्वस्वं ब्रह्मणे च मधुपूर्णं तैजसपात्रं दत्त्वा दारुपात्राण्याहवनीयेऽश्ममृन्मयानि च जले क्षिपेत् कृष्णाजिने त्वाददीत । अनाहिताग्निस्तु वैश्वानरमाग्नेयं वा चरुं हुत्वा पात्राण्यग्नौ क्षिप्त्वा भूर्भुवः स्वरित्यपः स्पृष्ट्वा तरत्समन्दीति जप्त्वा विप्रान्संभोज्य पुण्याहं वाचयित्वा

इस प्रकार जब अग्नि सिद्ध हो जाय तब कक्ष और लिंगको त्यागकर वपन कराय दूध दहीसे युक्त घृत वा केवल जलको ' ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि, तत्सवितुर्वरेण्यम् ' इस मन्त्रसे पहली वार पीकर और आचमन कर फिर लेकर " ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि, भर्गोदेवस्य धीमहि ' इससे द्वितीय वार ' ॐ स्वः सावित्रीं प्रविशामि, धियो यो नः प्रचोदयात् ' इस मन्त्रसे तीसरी वार पान कर फिर समस्तसे ' ॐभूर्भुवःस्वः सावित्रींप्रविशामि, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ' चतुर्थसे चौथी बार जलको पान करे । संन्यासपद्धतिमें तो ' त्रिवृदसि ' इससे प्रथम और ' प्रवृदसि ' इससे दूसरी और ' विवृदसि ', इससे तीसरी वार भक्षण करके ' आपः पुनंतु० ' इस मन्त्रसे तीन बार जलपान कर सावित्री (गायत्री) में प्रवेश लिखा है । फिर आहवनीय अग्निको लाकर और ब्रह्माको बैठालकर और घृतका संस्कार करके चार वा बारह बार घृतको ग्रहण करके ' समित्पूर्वमोंस्वाहा परमात्मने इदम् ' इस मन्त्रसे हवन करके उपवास करे । फिर संध्याकालको हवन और वैश्वदेव करके अग्निकी उत्तर ओर कुशा बिछाय, पूर्वोक्त दंडआदि दश वा पाँच रखकर, ब्रह्मासन और कृष्णमृगछालापर बैठ, रात्रिको जागरण करके, प्रातःकाल हवनके अनन्तर प्राजापत्य वा वैश्वानरी यज्ञको संपादन कर, ऋत्विजोंको सर्वस्व और ब्रह्माको मधुसे भरा सुवर्ण वा चांदीका पात्र देकर काष्ठके पात्रको आहवनीय अग्निमें और पत्थर या मिट्टीके पात्रोंको जलमें डाल दे । कृष्णमृगछालाको तो ग्रहण करे । अनाहिताग्नि तो वैश्वानर वा आग्नेय चरुका हवन करके पात्रोंको अग्निमें डालकर ' भूर्भुवः स्वः ' इस मन्त्रसे आचमन करके ' तरत्समन्दी० ' सूक्तका जप करके पुण्याहवाचन कराकर और मुण्डन कराकर सोना चाँदी और कुशाके जलसे

अत्र च वपनं कृत्वा हैमकृप्यकुशजलैः स्नात्वा पुरुषाय चरुं कृत्वा प्राणाय स्वाहेति पञ्चाज्याहुतीर्हुत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यचरुं च जुहुयात्। अत्र विरजाहोमं केचिदाहुः। यथोक्तं शिवगीतासु-"जुहुयाद्विरजामन्त्रैः प्राणापानादिभिस्ततः। अनुवाकान्तमेकाग्नेः समिदाज्यचरून्पृथक् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य याते अग्ने-तिमन्त्रतः। भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ॥ पापैर्विमुच्यते सत्यं मुच्यते नात्र संशयः ॥" तथा-'प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। सर्वत्र लिङ्गोक्तदेवताभ्य इदमिति त्यागः। वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शुध्यन्ताम् ज्योति०। त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि शुध्यन्ताम् ज्योति०। शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरूदरजंघशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं०। उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गललोहिताक्ष देहिदेहि ददापयिता मे शुध्यन्ताम् ज्योति०। पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं०। शब्द-स्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम् ज्योति०। मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् ज्योति०। अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिः०। आत्मा मे शुध्यताम्। अनन्तरात्मा मे शुद्ध्यताम्०। परमात्मा मे शुद्ध्यताम्०। क्षुधे स्वाहा। क्षुत्पिपासाय स्वाहा। विविध्यै स्वाहा। ऋग्विधानाय स्वाहा। कषोत्काय स्वाहा। क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठाम-

---

कर पुरुषके निमित्त चरु बनाकर 'प्राणाय स्वाहा' इस मन्त्रसे घीकी पांच आहुति प्रदान कर पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे घृत और चरुका हवन करे। यहां कोई आचार्य विरजाहोम कहते हैं। यही शिवगीतामें लिखा है कि विरजाके मन्त्रोंसे हवन करे और प्राणअपान आदिसे करे, फिर अनुवाकांत एकाग्नि मन्त्रसे समिध, घृत, चरुका पृथक् पृथक् हवन करे, पश्चात् आत्मामें अग्निका आरोप करके, 'याते अग्ने०' इस मन्त्रसे भस्म लेकर और 'अग्नि०' इत्यादि मन्त्रोंसे उस भस्मको मलकर अंगोंका स्पर्श करे। इस प्रकार करनेसे निश्चय करके पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं। और वह होम इस प्रकार है कि प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान मेरे पवित्र हों और मैं ज्योतिरूप रजोगुण और पापोंसे रहित हूँ स्वाहा, सब मन्त्रोंसे लिंगोक्त देवताओंके लिये स्वाहा है, यह कहकर आहुतिका प्रदान करे। वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका, श्रोत्र, बुद्धि, आकृति, संकल्प मेरे पवित्र हों, मैं ज्योतिरूप रजोगुण पापहीन हूँ स्वाहा। त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, स्नायु, अस्थि मेरी शुद्ध हों ज्यो० स्वा०। शिर, पाणि, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, ऊरु, उदर, जंघ, शिश्न, उपस्थ, पायु मेरी शुद्ध हों ज्योति०। उत्तिष्ठ पुरुष हरितं पिंगल लोहिताक्ष दे और ददापयिता मेरी शुद्ध हों ज्योतिरूप०। पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश मेरे पवित्र हों मैं ज्योतिरूप०। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध मेरे शुद्ध हों ज्योति०। मन, वाणी, काय, कर्म मेरे शुद्ध हों ज्यो०। अव्यक्त भावोंसे मेरे अहंकारोंसे ज्योतिरूप मेरा आत्मा शुद्ध हो, मेरा अन्तरात्मा शुद्ध हो और मेरा परमातमा शुद्ध हो। 'क्षुधे स्वाहा, क्षुत्पिपासाय स्वाहा, विविध्यै स्वाहा, ऋग्विधानाय

लक्ष्मीर्नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निर्णुद मे पाप्मानं स्वाहा । अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमय आत्मा मे शुध्यताम् ज्योति० । ततः स्विष्टकृदादि हुत्वा ब्रह्मणे हिरण्यमाज्यपात्रं धेनुं च दत्त्वा समासिञ्चत्वित्युपतिष्ठेत । अथ केचिदनग्नेः सावित्रीप्रवेशं पूर्णाहुतिं चाहुः । ततो याते अग्ने यज्ञिया तनूरिति तिसृभिरेकैकं जिघ्रन्नात्मन्यग्नीन् समारोप्य गुरवे सर्वस्वं दत्त्वा 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' इत्युपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्य पादावुपसंगृह्याधीहि भगवो ब्रह्मेति वदेत् । ततो गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्यात्वा शङ्खं द्वादशप्रणवैरभिमन्त्र्य तेन शिष्यमभिषिच्य शन्नो मित्र० इति शान्तिं पठित्वा तच्छिरसि हस्तं दत्त्वा पुरुषसूक्तं जप्त्वा मम व्रते हृदयं ते दधामीति च जप्त्वोदङ्मुखः प्रणवार्थमनुसंदधद्दक्षिणे कर्णे प्रणवमुपदिश्य, तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोध्य, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्मेत्याद्युपदिशेत् । तदर्थं च वदेत् । ततो नाम दद्यात् । ततः शिष्यस्तेनोपदिष्टो हरिं स्मरन्नूर्ध्वबाहुस्तिष्ठन् देवान्साक्षिणः

स्वाहा' कषोत्काय स्वाहा। क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठामलक्ष्मीर्नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान् निर्णुद मे पाप्मानं स्वाहा' अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय मेरा आत्मा शुद्ध हो; मैं ज्योतिरूप रजोगुण पापरहित हूँ, स्वाहा० ज्यो० । फिर स्विष्टकृत् आदि होम संपादन करके ब्रह्माको सुवर्ण, घृतपात्र, धेनु देकर और जल सींचकर स्तुति करे । यहां कोई अनग्निकी पूर्णाहुति और सावित्रीका प्रवेश वर्णन करते हैं । फिर 'याते अग्ने यज्ञियातनूः' इन तीन ऋचाओंसे एक एक अंगको सूँघकर आत्मामें अग्निका आरोपण कर, गुरुको सर्वस्व प्रदान कर और 'जिसने प्रथम ब्रह्माको रचकर उसीको वेद प्रदान किया है अपनी बुद्धिके प्रकाश करनेवाले उस नारायणदेवकी मैं मुमुक्षु शरण हूँ' इस मन्त्रसे स्तुति करके और दक्षिण घुटुएको नवाकर गुरुके चरण पकड़कर कहे कि 'हे भगवन्! ब्रह्माका ध्यान करता हूँ' फिर गुरुको ब्रह्मरूप और आत्माको ब्रह्मरूप ध्यान करके द्वादश ओंकारोंसे (जल भरे) शंखको अभिमन्त्रित करके, उस शंखके जलसे शिष्यको सिंचन कर, और 'शन्नो मित्र०' इस शांतिको पढ़कर, उसके शिरपर हाथ धरकर और पुरुषसूक्तको जपकर 'तेरा हृदय मेरेमें हो' यह जपकर, उत्तर मुख किये ओंकारके अर्थको स्मरण करता हुआ आचार्य शिष्यके दहिने कानमें ओंकारका उपदेश करके, ओंकारका अर्थ और पंचीकरणका बोध कराय यह उपदेश करे कि 'अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म' और इस मंत्रके अर्थको भी उच्चारण करे कि यह आत्मा ब्रह्म है और वही तू है, प्रज्ञान ब्रह्मरूप है । फिर गुरु शिष्यका नामस्मरण करे, फिर गुरुके उपदेशवाला शिष्य नारायणका स्मरण करता हुआ ऊपरको

---

१ क्षुधा, पिपासा, मल बड़ी अलक्ष्मी, अभूति, असमृद्धि यह सब दूर होकर मैं पापरहित हूं ।

कृत्वा ॐभूर्भुवःस्वः संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशु त्रिरुच्चैस्त्रिरत्युच्चैश्चोक्त्वा, जलसमीपं गत्वा, स्नात्वा अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति त्रिरञ्जलीन् क्षिप्त्वा, युवासुवासा इति काषायं कौपीनं वासश्च परिधाय, सखा मे गोपायेति मुख्यं वैणवं पालाशं बैल्वमौदुम्बरं वा दण्डं गृह्णीयात् । अत्र पुत्रकामो गृहस्थः शङ्खेन पुरुषसूक्तेन दण्डमभिषिच्य दद्यादित्याचारः । ततः शिखामुत्पाट्य ॐभूः स्वाहेत्यग्नौ जले वा हुत्वा, तथैवोपवीतं हुत्वा येन देवाः पवित्रेणेति जलपवित्रं यदस्य पार इति शिक्यं सावित्र्या कमण्डलुं सप्तव्याहृतिभिर्भोजनपात्रमिदं विष्णुरित्यासनं बृसीं वा गृहीत्वा ॐभूस्तर्पयामीति व्यस्तसमस्ताभिर्महर्नम इति तर्पयित्वा ॐभूःस्वधोंभुवःस्वधोंभूर्भुवःस्वर्महर्नमःस्वधेतिपितॄंस्तर्पयित्वा, उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुर्हंसः शुचिषन्नमोमित्रस्येति स्नात्वा, सुरभिमतीभिरापोहिष्ठेतिहिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व्याहृतिभिश्च मार्जयित्वा, अष्टोत्तरशतवारमघमर्षणं प्राणायामांश्च कृत्वा, ॐभूर्भुवः

भुजा किये देवताओंको साक्षी करके ' ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया' (मैंने संन्यास ग्रहण-कर लिया) इस मन्त्रको तीन बार नीचे और तीन बार ऊंचे स्वरसे जपकर और जलके निकट जाय और स्नान करके, ' अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ' इस मन्त्रसे तीन अञ्जलि डालकर, ' युवा सुवासाः०' इस मन्त्रसे गेरूसे रंगी कौपीन और वस्त्रको धारण करके ' सखा मे गोपाय' इस मन्त्रसे बांसका मुख्य दण्ड वा ढाक, बेल, गूलरका दण्ड ग्रहण करे । यहां जो गृहस्थ पुत्रकी इच्छा करे वह पुरुषसूक्त पढ़कर शंखके जलसे दण्डको सिञ्चन कर (संन्यासीको) दे यह आचारकी व्यवस्था है । फिर शिखाको उखाड़कर 'ॐभूः स्वाहा ' इस मन्त्रसे अग्नि वा जलमें हवन करके, इसी प्रकार यज्ञोपवीतको हवन कर 'येन देवाः०' इस मन्त्रसे जलपवित्रको, 'यदस्य पारे०' इस मन्त्रसे शिक्यको गायत्रीसे कमण्डलुको, सात व्याहृतियोंसे भोजनपात्रको होम देना चाहिये । फिर 'इदंविष्णु०' इस मन्त्रसे आसन वा बृसी (व्रतियोंके आसन) को ग्रहण करके ' ओंभूस्तर्पयामि०' इत्यादि व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे ' महर्नमः' इस मन्त्रसे तर्पण करके कि 'ॐ भूः स्वधोम् भुवः स्वधोम् स्वः स्वधोम् भूर्भुवःस्वर्महर्नमः स्वधा' इन मन्त्रोंसे पितरोंका तर्पण करके, 'उदुत्यं०[1] चित्रं[2] देवानां०तच्चक्षु० हंसः[3] शुचिष० नमो मित्र० इन मन्त्रोंसे स्नान करके सुरभिमती० आपोहिष्ठा० और हिरण्यवर्णा पावमानी० और व्याहृतियोंसे मार्जन करनेके उपरान्त अष्टोत्तरशत अघमर्षण और प्राणायाम करके ' ॐ भूर्भुवः स्वः' यह पढ़कर, 'नमः सवित्रे०' इस मन्त्रसे सूर्यकी प्रार्थना करके

---

१ 'उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥' य० ३३।३१॥ २ 'चित्रं देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्यवरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥' य० ७ । ४२ ॥ ३ हंसःशुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जागोजा ऋतजाऽअद्रिजा ऋतं बृहत् ॥

सुवरिति च पठित्वा, नमः सवित्र इति सूर्यं चोपस्थाय, पुनः स्नात्वा जंघे क्षालयित्वा, ओमिति ब्रह्मोमितीदं सर्वमोमिति ब्रह्म वा एष ज्योतिर्य एष वेदो य एष तपति वेद्यमेवैतद्य एष वेदो यद्वनमस्तीति जपित्वा, अष्टसहस्रं गायत्रीं जपेदिति। अथ यतिधर्माः। प्रातरुत्थाय ब्रह्मणस्पते इति जपित्वा, दण्डादीनि मृदं च निधाय मूत्रपुरीषयोर्गृहस्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाऽऽचम्य पर्वद्वादशीवर्ज्यं प्रणवेन दन्तधावनं कृत्वा तेनैव मृदा बहिः कटिं प्रक्षाल्य जलतर्पणवर्ज्यं स्नात्वा पुनर्जंघे प्रक्षाल्य वस्त्रादीनि गृहीत्वा मार्जनान्तं कृत्वा केशवादिनमोऽन्तनामभिस्तर्पयित्वा, ॐभूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीति तर्पयेत्। ॐभूःस्वाहेति स्वाहाशब्दान्तैः स्वधाशब्दान्तैश्चैभिरेव पुनस्तर्पयेदिति केचित् । तत आचम्याञ्जलिना प्रणवेन व्याहृतिभिरुद्धृत्य गायत्र्या त्रिः क्षिप्त्वा गायत्रीं जपेत्। उदिते सूर्ये प्रणवेन व्याहृतिभिर्वार्घ्यं त्रिर्दत्त्वा मित्रस्य चर्षणीत्याद्यैः पूर्वोक्तसौरीभिरिदंविष्णुस्त्रिर्देवो ब्रह्मजज्ञानमिति चोपस्थाय, सर्वभूतेभ्यो नम इति प्रदक्षिणमावर्तते। ततो नत्वा, आदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयादिति त्रिर्जपेत्। एवं त्रिकालं विष्णुपूजां ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात् ।

फिर स्नान कर और जंघाओंको धोकर, 'ओमिति ब्रह्मोमितीदंसर्वमोमिति ब्रह्म०' इसे जपकर आठ सहस्र गायत्रीका जप करे। अब संन्यासीके धर्मोंका वर्णन करते हैं-प्रातः समय उठकर 'ब्रह्मणस्पते०' इस मन्त्रको जपकर दण्ड आदि और मिट्टीको धरकर, 'मूत्र और पुरीषमें गृहस्थसे चारगुणा शौचकर और आचमन करके, पर्व और द्वादशीको त्यागकर ओंकारसे दन्तधावन करके ओंकार पढ़कर ही मिट्टीसे कटिका बहिर्भाग धोकर जल तर्पण छोडकर फिर जंघाओंको धोकर, वस्त्र आदि ग्रहण करके, मार्जन पर्यन्त कर्मको करके 'केशवाय नमः' इत्यादि नामोंसे तर्पण करके 'ॐभूस्तर्पयामि०' इत्यादि और व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे महर्जनस्तर्पयामि' कहकर तर्पण करे । कोई तो यहां यह लिखते हैं कि 'ॐभूः स्वाहा ' ॐभूः स्वाधा' इस प्रकार स्वाहा व स्वधा शब्दको उच्चारणकर फिर तर्पण करे । फिर आचमन करके अञ्जलिमें ॐकार पढ़कर जल लेकर व्याहृतियोंसे तीन वार छोडकर गायत्रीका जप करे। सूर्योदय होनेपर ॐकार वा व्याहृतियोंसे तीन वार अर्घ लेकर 'मित्रस्यचर्षणी०' इत्यादि पूर्वोक्त सूर्यकी ऋचा 'इदंविष्णुस्त्रिर्देवो० ब्रह्मजज्ञानम्०'इस मन्त्रसे सूर्यकी प्रार्थना करके सब भूतोंको नमस्कार है, यह कहकर प्रदक्षिणा करे, फिर नमस्कार करके "ॐआदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि, तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्" इसको तीन वार जपे, इस प्रकार त्रिकाल विष्णुपूजा और ब्रह्मयज्ञ करे ।

अथ भिक्षानिर्णयः । "विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । कालेऽपराह्णे भूयिष्ठे नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥ " इत्युक्तकाले उद्वयमिति चतसृभिरादित्यमुपस्थाय, तेनैक्यं ध्यात्वा, आकृष्णेनेति प्रदक्षिणं कृत्वा, "ये ते पन्थानः" इति जप्त्वा, "योऽसौ विष्णवाख्यं आदित्ये पुरुषोऽन्तर्हृदि स्थितः । सोऽहं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्य तम् ॥ त्रिदण्डं दक्षिणे त्वङ्गे ततः संधाय बाहुना । पात्रं वामकरे क्षिप्त्वा श्लेषयेद्दक्षिणेन तु ॥" इति बौधायनोक्तदिशा त्रीन्पंच वा सप्त वा गृहान् गत्वा भवत्पूर्वां भिक्षां याचित्वा, पूर्णमसि पूर्णं मे भूया इत्यागत्य शुचिरन्नं प्रोक्ष्य, ॐ भूः स्वधा नमः इत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः सूर्यादिदेवेभ्यो भूतेभ्यश्च भूमौ क्षिप्त्वा भुक्त्वा प्रणवेन षोडशप्राणायामान् कुर्यादिति संक्षेपः । गौतमव्याख्यायां भृगुः-"यतिहस्ते जलं दत्त्वा भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम् । भैक्ष्यं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम् ॥ " अत्र सर्वत्र मूलं माधवापरार्कमदनरत्नस्मृत्यर्थसारादौ ज्ञेयम् । कण्वः-"एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् । वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत् ॥" जाबालश्रुतौ-'शून्यागारे देवगृहतृणकुटीवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाग्निहोत्रगृहनदीपुलिनगिरिकुहरनिर्झरस्थण्डिलेष्वनिकेतनः' इति । मात्स्ये-"अष्टौ मासान्विहारः स्याद्यतीनां संयतात्मनाम् । एकत्र

अब संन्यासीकी भिक्षाको लिखते हैं-जब ग्राममें धूम और मूशलका शब्द न हो और अंगार न हो और सब प्राणी भोजन कर चुके हों उस दुपहरसे पीछेके समयमें संन्यासी भिक्षाके निमित्त नित्य पर्यटन करे। ऐसे समयमें 'उद्वयम्०' इन चार मंत्रोंसे सूर्यकी प्रार्थना करके और सूर्यके संग एकताको ध्यान करके 'आकृष्णेन रजसा०' इस मंत्रसे प्रदक्षिण करके, 'ये ते पंथानः०' इस मन्त्रको पढ़कर 'जो यह विष्णु नामक आदित्य पुरुष अन्तःहृदयमें स्थित है सो नारायणदेव मैं हूँ' इस प्रकार ध्यान और प्रणाम करके फिर त्रिदंड दक्षिण अंगपर भुजासे थामकर पात्रको बांये हाथपर रख दक्षिणहाथसे स्पर्श करे। बौधायनके लिखे उक्त प्रकारसे तीन पांच वा सात घरोंसे भवत्पूर्वक मौन हो भिक्षा माँगकर फिर आकर 'पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः' इस मन्त्रसे भिक्षाको जलसे छिड़ककर 'ॐभूः स्वधा नमः' इत्यादि व्यस्त समस्त व्याहृति पढ़कर सूर्यादिदेवता और भूतोंके निमित्त भूमिम डालकर, भोजन कर प्रणवसे सोलह प्राणायाम करे, यह संक्षेपसे कहा है। गौतमव्याख्यामें भृगुका वचन है कि यदि कोई संन्यासीके हाथमें जल देकर भिक्षा दे और फिर जल दे तो वह भिक्षा पर्वतके तुल्य और वह जल सागरके तुल्य होते हैं । इन सब वचनोंका मूल माधव, अपरार्क, मदनरत्न और स्मृत्यर्थसार आदिमें लिखा है। कण्वने कहा है कि ग्राममें एक रात, नगरमें पांच रात्र, वर्षाऋतुको त्यागकर बसे और वर्षाके चारों महीनोंमें एकत्र ही बसे। जाबालश्रुतिमें लिखा है कि शून्य घर, वा देवमंदिरमें और तृणकी कुटी, वामी, वृक्षमूल, कुलालका घर, शाला, अग्निहोत्रीका घर, नदीका तीर, पर्वतकी गुफा, झरने, स्थंडिल इनमें कहीं भी स्थान न बनावे। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि वशीभूत मनवाले संन्यासियोंको आठ महीनेतक विचरना चाहिये और वर्षाके चार महीनोंमें एकत्र रहना उचित है और अविमुक्तमें जो

चतुरा मासान् वार्षिकान्निवसेन्मुनिः ॥ अविमुक्तप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते ॥" अत्रिः—"भिक्षाटनं जपं स्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम्। कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत् ॥ मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च। दिवास्वापं च यानं च यतीनां पतनानि षट् ॥ आसनं पात्रलोभश्च संचयः शिष्यसंग्रहः। दिवास्वापो वृथाजल्पो यतेर्बन्धकराणि षट् ॥" दक्षः—"नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन। यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च ॥" मदनरत्ने अत्रिः—"पित्रर्थं कल्पितं पूर्वमन्नं देवादिकारणात्। वर्जयेत्तादृशीं भिक्षां परबाधाकरीं तथा ॥" बृहस्पतिः—"न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः। न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत् ॥" एतद्वेदार्थभिन्नपरम्। अत्रिः—"स्नानं सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो बलिस्तुतिः। भिक्षाटनं जपः संध्या त्यागः कर्मफलस्य च ॥" एते यतिधर्मा इत्यर्थः। अन्येऽपि माधवमिताक्षरादौ ज्ञेयाः। यतिधर्मसमुच्चये—"न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते। पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुद्ध्यति साम्बरः ॥" अथ यतिसंस्कारः। ["संन्यसेद्ब्रह्मचर्याद्वा संन्यसेच्च गृहादपि। वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः ॥ आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं च संन्यासमातुराणां विधी-

---

प्रविष्ट है उनका विचरना नहीं है। अत्रिने कहा है कि भिक्षाका अटन, जप, स्नान, ध्यान, शौच तथा देवपूजन इन छः कर्मोंको सर्वथा नृपदंडके समान करे। शय्या शुक्ल वस्त्र, स्त्रीकी कथा, चपलता, दिनमें शयन और मुण्डन इन छः कार्योंको करनेसे संन्यासी पतित होते हैं। आसन, पात्रका लोभ, धनका संचय और शिष्योंका संग्रह, दिनमें शयन, वृथालाप ये छः यतिके बन्धक हैं। दक्षका कथन है कि संन्यासी न पढ़े, न बोले, न कदाचित् सुने। संन्यासियोंके पात्र मिट्टी, बांस, काष्ठ वा तूंबीके होते हैं। मदनरत्नमें अत्रिने कहा है कि जो अन्न पितर और देवताओंके निमित्त बनाया हो उसको और परकी बाधा करनेवाली भिक्षाको संन्यासी त्याग दे। बृहस्पतिने कहा है कि संन्यासी नित्यही तीर्थवासी न हो और न सदा उपवास करे और न बहुत अध्ययनमें तत्पर हो और न शास्त्रके व्याख्यानमें तत्पर हो। यह भी वेदके अर्थको त्यागकर है अर्थात् वेदार्थ कहनेका निषेध नहीं है। अत्रिने कहा है कि स्नान, देवपूजन, ध्यान, प्राणायाम, बलि, स्तुति, भिक्षाटन, जप, संध्या और कर्म फलका त्याग ये संन्यासीके धर्म हैं। और भी धर्म माधव और मिताक्षरा आदिमें जानने योग्य हैं। यदि धर्मसमुच्चयमें लिखा है कि पुत्रआदिके मरण सुननेपर संन्यासी स्नान न करे और पितामाताके मरण सुननेपर तो सचैलस्नान करना चाहिये, तब शुद्ध होता है। अब संन्यासीके संस्कारको लिखते हैं—ब्रह्मचर्यसे वा गृहसे संन्यास ग्रहण करे अथवा विद्वान् वनसे वा आतुर दुःखसे संन्यास ले। आतुरोंके संन्यासमें विधि और

---

१ यद्यपि [ ] एतच्चिह्नान्तर्गतपाठोनोसर्वसम्मतस्तथापि केषुचित्पुस्तकेषु वर्ततेऽतोऽत्र संगृहीतः।

यते॥ उत्पन्ने संकटे घोरे चौरव्याघ्रादिगोचरे। भवभीतस्य संन्यासमंगिरा मनुरब्रवीत् ॥ यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेद्द्विज॥" इति जाबालश्रुतिः।"आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत्॥ संन्यस्तोऽहमिति ब्रूयात्सवनेषु त्रिषु क्रमात्। त्रिवारं च त्रिलोकात्मा शुभाशुभसुधाद्रवे॥ यत्किंचिद्बाधकं कर्म कृतमज्ञानतो मया। प्रमादालस्यदोषाद्यत्तत्तत्त्यक्तवानहम्॥ एवं सन्त्यज्य भूतेभ्यो दद्यादभयदक्षिणाम्। पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्नाहं वाक्कायमानसैः॥करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः संतु निर्भयाः॥ इत्यातुरस्य स्वशक्त्याऽवस्थानुरूपमंगलभूतप्रैषोच्चारणादियथाशास्त्रं मनसा वाचा वा कुर्वतस्तावतैव कृच्छ्रचांद्रायणनांदीश्राद्धनखकृतनादीनि कृत्वा संन्यासपूर्तिरिति प्रतीयते। अङ्गिराः-"षष्टिः कुलान्यतीतानि षष्टीनामधिकानि च। कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत्॥" विष्णुः-"एकरात्रोषितस्यापि यतेर्या गतिरुच्यते। न सा शक्या गृहस्थेन आतुरोऽपि च संन्यसेत्। संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कंठगतैरपि। न तत्क्रतुशतैः पुण्यं प्राप्तुं शक्नोति मानवः॥" मनुः-"यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्। तस्य तेजोमया लोका भवंति ब्रह्मवादिनः॥" अथ श्रौत्यातुरस्य विलंबितस्य 'प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूजयेत्।' इति। अत्र मात्रत्वोपसंभवादंगकलापाव्यापकत्वेनाप्युपपत्तौ कर्तुर्यागत्यागकलापव्यावृत्तस्यैकत्वा

क्रिया नहीं है, आतुरोंका प्रैषमात्र उच्चारणसे ही संन्यास होता है। जब घोर संकट प्राप्त हो, चोर व्याघ्रादिका भय हो तथा संसारसे डरे हुएको मनु और अंगिराने संन्यास कहा है। जो आतुर हो वह मन वा वचनसे संन्यास ले, यह जाबालश्रुतिमें कहा है। आतुरोंको संन्यासमें विधि और क्रिया नहीं है। किन्तु वह प्रैषमात्र उच्चारण कर संन्यास करे। तीनों सवनों क्रमसे मैं संन्यासी हुआ, इस प्रकार कहे। तीन बार त्रिलोकीका आत्मा शुभअशुभ सुधाद्रव जो कुछ बाधक कर्म मैंने अज्ञानसे किया है वा प्रमाद आलस्य दोषसे किया है वह मैंने सब त्याग किया, ऐसा कह सब प्राणियोंको अभय दक्षिणा दे। चरण हाथसे विहार करते मन वाणी कर्मसे प्राणिहिंसा कभी न करूंगा, मुझसे सब निर्भय हों। इस प्रकार आतुरके अपनी शक्तिके अनुसार मंगलरूप प्रैष उच्चारणादि यथाशास्त्र मनवचनसे करते हुए तबतक कृच्छ्रचान्द्रायण नान्दीश्राद्ध नखच्छेदन आदि करके संन्यासकी पूर्ति होती है। अंगिराने कहा है कि साठ कुल पिछले और साठ कुल आगेको वह बुद्धिमान् उद्धार करता है। जो संन्यस्त कहता है। विष्णु कहते हैं कि एकरात रहनेकी भी जो यतिकी गति है वह गृहस्थकी नहीं हो सकती, इससे आतुर होकर भी संन्यास ले। जो कंठगत प्राण होनेपर भी 'संन्यासी हुआ' यह कहता है वह फल मनुष्योंको १०० यज्ञसे भी नहीं मिलता जो उसको प्राप्त होता है। मनु कहते हैं कि जो सब प्राणियोंको अभय देकर घरसे चलता है उस ब्रह्मवादीको तेजोमय लोक प्राप्त होते हैं और श्रौति आतुर विलम्बितका प्रैषमात्र उच्चारण कर संन्यास पूजित होता है। यहां मात्राके उपसंभव होनेसे अंगकलापके अव्यापक होनेसे उपपत्तिमें कर्ताके यागत्याग-

नुपपत्तेः कृच्छ्रनांदीश्राद्धविरजाहोमादिकर्तुमशक्तस्यातुरस्य विद्यमानाग्नेरिष्टदेवतार्थे पूर्णाहुतिं हुत्वा असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति आहवनीये दारुमयाणि पात्राणि प्रज्वाल्य मृन्मयान्यप्सु प्रक्षिप्य समाप्तिं च मरुत इत्युपस्थाय याते अग्ने इत्यनेन हस्तं प्रताप्य आत्मन्यग्निं समारोप्य सर्वप्रायश्चित्तपूर्वकं सप्त पंच केशान् विसृज्य वापयित्वा यथाविधि स्नात्वा आतुरसंन्यासं कुर्यात् । अथातुरसंन्यासविधिः । अपां समीपे गत्वा तिथ्याः स्मरणपूर्वकं स्नानसंध्यावंदनादि कृत्वा देशकालौ संकीर्त्य ममाशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानंदप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये च परमहंससंन्यासं करोमीति संकल्पयेत् । तत्र प्रधानानि । प्रैषोच्चारप्रणवोपदेशमहावाक्यानि । ततः संन्यासोचितं क्षौरं कृत्वा पूर्ववत्सप्तपंच केशान् विसृज्य स्नात्वाचम्य पात्रेण तोयमादाय उपस्पृश्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति । एष वोऽग्ने योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा । इति प्रथमाहुतिः । आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा । इति द्वितीया । ततो हुतशेषं आशुःशिशान इत्यनुवाकेनाभिमंत्र्य पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया त्यक्ता स्वाहेति प्रथमं पिबेत् । ॐ भूर्भुवः स्वरोम् मया संन्यस्तं स्वाहेति द्वितीयां पिबेत् । अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति तृतीयां पिबेत् । ततोऽन्यत्तोयमंजलिपूर्णमादाय प्रागादिदिक्षु प्रत्येकं निनयेत् । ॐ भूःसावित्रीं प्रवेशयामि ॐ भुवःसावित्रीं प्रवेशयामि ॐ स्वःसावित्रीं प्रवेशयामि ॐ भूर्भुवःस्वः सावित्रीं प्रवेशयामि

लापव्यावृत्तकी एकत्वमें अनुपपत्ति होनेसे कृच्छ्र, नान्दीश्राद्ध, विरजाहोम आदि करनेको अशक्य आतुरकी विद्यमान अग्निरूप इष्टदेवताके निमित्त पूर्णाहुति हवन करके 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इससे आहवनीय अग्निमें काष्ठपात्रोंको प्रज्वलित कर मट्टीके पात्रोंको जलमें डालकर समाप्तिं च मरुत. इससे उपस्थान करके 'याते अग्ने' इस मंत्रसे हाथको तपाकर आत्मामें अग्निका आरोपण कर सर्वप्रायश्चित्तपूर्वक सात वा पांच बालोंको विसर्जन कर वपन कराय यथाविधि स्नान कर आतुर संन्यास करे। अब आतुर संन्यासकी विधि लिखते हैं–जलके समीप जाकर तिथि आदि स्मरणपूर्वक स्नान संध्यावंदनादि कर देशकालका संकीर्तन कर 'अपने सम्पूर्ण दोषकी निवृत्ति और परमानंद तथा परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके निमित्त परमहंस संन्यास करता हूं' इस प्रकार संकल्प करे। इसमें प्रधान कहते हैं कि प्रैषका उच्चारण प्रणवका उपदेश और महावाक्य है। फिर संन्यासमें उचित क्षौर करके पूर्ववत् सात पांच बालोंको विसर्जन कर स्नानके उपरान्त आचमन करके पात्रमें जल लेकर स्पर्श कर दक्षिणहाथसे जलमें हवन करे, 'एषवोऽग्ने योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा' यह पहली आहुति है। फिर 'आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा' यह दूसरी आहुति है, फिर हुतशेषको 'आशुः शिशान' इस अनुवाकसे अभिमंत्रित करके 'पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया त्यक्ता स्वाहा' ऐसा कहकर प्रथमका पान करे। 'ॐ भूर्भुवः स्वरोम् मया संन्यस्तं स्वाहा' ऐसा कहकर दूसरी पिये। 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' ऐसा कह तीसरी अंजली पिये। फिर और जलकी पूर्ण अंजली लेकर पूर्वादि दिशामें प्रत्येक डाले। 'ॐ भूः साबित्रीं प्रवेशयामि, ॐ भुवः सावित्रीं

...त सावित्रीप्रवेशं ... अथोर्ध्वबाहुः सूर्याभिमुखो भूत्वा ॐ भूः संन्यस्तं मया ॐ ...ः संन्यस्तं मया ॐस्वः संन्यस्तं मया ॐभूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मयेति प्रैषोच्चारं ...ात्। एवं मंद्...ध्योच्चैस्त्रिरुक्त्वा तूष्णीं शिखां निकृत्य स्नात्वाचम्य यज्ञो-...तमुद्धृत्यांजलिना गृहीत्वा भूः स्वाहेति अप्सु हुत्वा दिगंबरो भूत्वा पुत्रैषणावित्तै-...ालोकैषणातो मुक्तोऽहमिति ब्रूयात्। अत ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत्। मृते च पुरु-...क्तेन विष्णुबुद्ध्याभिषिञ्चीत संस्कारमेव कुर्यात्। एवं विरक्तस्यातुरस्य स्वस्थस्य ...्यासविहितांगेषु यन्मन्त्रानुष्ठाने शक्तिर्यथाविधि तदनुष्ठानपूर्वकं प्रधानं ... ...मात्रं मत्वा संन्यासयुक्तिरिति श्रवणात्। तदुत्तरकालमेव मृतस्योपदेशविकलस्यापि ...नसंस्कारमेव कुर्यात्। जीवतश्चेच्छिखां यज्ञोपवीतं च नित्यक्रियां विधिवद्विसृज्य ...डकाषायवस्त्रादीनि ...य य...नेवानुतिष्ठेत्। सद्गुरुमन्विष्य तदुपदेशं गृहीत्वा स्व...निष्ठो भवेत्। अयं ... विद्व...तः प्रयोक्तव्यःइत्यातुरसंन्यासः॥]स्मृत्यर्थसारे—
"सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य च। न तस्य दहनं कार्यमाशौचं नोदकक्रिया॥" ...—"कुटीचकं तु प्रदहेत्पूरयेत्तु बहूदकम्। हंसो जले तु निक्षेप्यः परहंसं प्रपूरयेत्॥" पालाशमूले नदीतीरेऽन्यत्र वा गन्धपुष्पालंकृतं शवं वाद्यघोषेण नीत्वा

प्रवेशयामि, ॐ स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि, ॐभूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि' इस प्रकार सावित्री प्रवेश करके ऊर्ध्वबाहु सूर्यके सम्मुख होकर कहे कि ॐ भूः संन्यस्तं मया, ॐभुवः संन्यस्तं मया, ॐ ... संन्यस्तं मया, ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया' ऐसा प्रैषका उच्चारण करे। इस प्रकार ... मध्य और ऊंचे स्वरसे तीन बार कहकर मौन हो शिखा छेदन कर स्नानके उपरान्त आचमन करके यज्ञोपवीत उतार अञ्जलीसे लेकर 'भूः स्वाहा' कहकर जलमें आहुति देकर दिगम्बर होके पुत्र, वित्त, लोककी इच्छासे मैं मुक्त हुआ ऐसा कहे। इसके उपरान्त पुत्रके घर न जाय। मरनेपर पुरुष-सूक्तसे विष्णुबुद्धिपूर्वक अभिषेक कर संस्कार करे। इसी प्रकार विरक्त, आतुर और स्वस्थका संन्यासविहित अंगोंमें जिस मन्त्रके अनुष्ठानमें शक्ति हो उसको यथाविधि अनुष्ठानपूर्वक प्रधान प्रैषोच्चारणमात्र मानकर संन्यास युक्ति ऐसा श्रवण होनेसे है. इसके उत्तर कालमें ही उपदेशसे विकलकी मृत्यु हो जाय तो खनन संस्कार ही करे और जीता रहे तो शिखा, यज्ञोपवीत और नित्य क्रियाका विधिपूर्वक विसर्जन करे, अथवा दंड और काषाय वस्त्रोंको लेकर यतिधर्मोंका अनुष्ठान करे। सद्गुरुको खोजकर उनसे उपदेश लेकर स्वधर्मका अनुष्ठान करे, यह अर्थ विद्वानोंका सम्मत प्रयोग करने योग्य है। इत्या-तुरसंन्यासः॥ सब संगोंसे निवृत्त होकर ध्यानयोगमें तत्पर हुए संन्यासीका दाह, अशौच तथा जलदान न करे। कहा भी है कि कुटीचकको दग्ध, बहूद-कको मृत्तिकामें पूर्ण करे और हंसको जलमें विसर्जित करे और परमहंसको भलीभांति मृत्तिकामें पूर्ण करे। ढाककी जडमें नदीके किनारे वा अन्यत्र गंध पुष्पादिसे अलंकृत कर वाद्यशब्दसे मृतकको ले जाकर व्याहृति पढकर दंडमात्र

दण्डमात्रं व्याहृतिभिः खनित् । सप्तव्याहृतिभिस्त्रिः प्रोक्ष्य दर्भानास्तीर्य नवघटे पञ्च रत्नोदकं क्षिप्त्वा नारायणः परं ब्रह्मेत्यभिमन्त्र्य, तेनैव संस्नाप्याष्टाक्षरेण वस्त्रगन्धपुष्पधूपदीपादीन् दत्त्वा, विष्णो हव्यं रक्षस्वेति शवं गर्ते निधाय 'इदं विष्णुः' इति दक्षिणहस्ते दण्डं 'यस्य पारे' इति सव्ये शिक्यं 'येन देवाः पवित्रेण' इति मुखे जलपवित्रं साविन्त्र्योदरे पात्रं 'भूमिः श्वभ्रे' इति गुह्ये कमण्डलुं निधाय 'चित्तिः स्रुक्' इति दशहोत्राभिर्मन्त्रयेदिति विश्वादर्शटीकायां स्मृत्यर्थसारे च । बृहच्छौनकस्तु—"यतिं पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वा वटं ततः । प्रणवेनाष्टवारं तं प्रोक्षयेदथ सर्वतः ॥ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति यजुषा प्रणवेन च । गर्ते प्रेतं विनिक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे ॥ इति मन्त्रेण दंडं तु दद्याद्दक्षिणहस्तके । मूर्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शंखेन भेदयेत् ॥ गर्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत् । शृगालश्वादिरक्षार्थं सम्यग्गर्तं प्रपूरयेत् ॥" इति कुटीचकस्य तु दाहः कार्यः । तत्र सर्वं पूर्ववत् कृत्वाऽग्निं प्रज्वाल्य साग्नेर्दक्षिणकरे उपावरोहेत्यवरोह्य निर्मथ्य वा गर्ते चितिं कृत्वाग्निनाग्निः समिध्यते इत्यग्निं दत्त्वा सावित्र्या प्रणवेन वा दहेत् । ततोऽष्टशतं प्रणवं नारायणः परं ब्रह्मेति जप्त्वा सशिरःप्रणवव्याहृत्या गायत्र्या तदस्यास्थीनि तीर्थे क्षिप्त्वा स्नानाच्छुचिः । नास्यान्यदौर्ध्वदैहिकम् । 'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ।' इति

गर्त खनकर, फिर सात व्याहृतियोंसे तीन बार प्रोक्षण कर, कुशा बिछाय, नये घडेमें पञ्च रत्न और जल रखकर, 'नारायणः परं ब्रह्म' इस प्रकार अभिमंत्रित कर और उसी मन्त्रसे स्नान कराय, वस्त्र, गंध, पुष्प, धूप, दीपादि देकर. 'विष्णो हव्यं रक्षस्व' इस प्रकार कहकर शवको गर्तमें रखकर, इदंविष्णु:०' इस मन्त्रसे दक्षिण हाथमें दंड, 'यज्ञस्य पारे' इससे बायें हाथमें शिक्य और 'येन देवाः पवित्रेण इस मन्त्रसे मुखमें जल पवित्र, सावित्रीसे उदरमें भिक्षापात्र, 'भूमिः श्वभ्र०' इससे गुह्यमें कमण्डलुको रखकर 'चित्तिःस्रुक्' इससे दश होता आदिका आमन्त्रण करे, यह विश्वादर्शटीका और स्मृतिसार ग्रन्थमें कहा है । बृहत्शौनक तो यह कहते हैं कि पुरुषसूक्तसे यतिको स्नान कराय अवट (गढेको)ॐकारसे आठवार सब ओरसे प्रोक्षण करे । 'विष्णो हव्यं रक्षस्व' इस यजुर्वेदके मन्त्र और ॐकारसे गर्तमें प्रेतको रखकर 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मन्त्रसे दक्षिण हाथमें दण्डको दे और 'भूर्भुवः स्वः' ऐसा कहकर शिरको शंखसे भेदन करे । पुरुषसूक्त पढकर गर्तको लवणसे पूर्ण करे और शृगाल, श्वानकी रक्षाके निमित्त गर्तको भली प्रकार (मृत्तिकासे) पूर्ण करे । कुटीचकका तो दाह करना चाहिये और सब कृत्य पूर्वके समान करके अग्निको प्रज्वलित कर साग्निके दक्षिण हाथमें उपावरोह अवरोह क्रमसे अग्निको मथकर गर्त वा चिता निर्माण कर 'अग्निनाग्निः समिध्यते' इस मंत्रसे अग्नि देकर गायत्री वा ॐकारसे दग्ध करे । फिर १०८ वार ॐकार और 'नारायणः परं ब्रह्म' इसको पढकर शिरसहित प्रणवयुक्त व्याहृति और गायत्रीसे उसका भस्म और अस्थि तीर्थमें विसर्जन कर स्नानसे शुद्धि होती है । अग्निमें भस्म करनाही इसका और्ध्वदैहिक है, और क्रिया नहीं; कारण कि उशनाने कहा है कि त्रिदंडके ग्रहणसे ही प्रेतत्व नहीं होता । ग्यारहवें दिन पार्वण

उशनसः स्मृतेः । '... पार्वणं तदपि त्रिदण्डिनः । हंसपरमहंसादीनां पार्वणादि ... म्' इति शूलपाणिः । श्राद्धचिन्तामणौ दत्तात्रेयः—"एकोद्दिष्टं जलं पिण्डम... ...तसत्क्रियाम् । न कुर्याद्वार्षिकादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥' प्रेतक्रियथैकोद्दिष्टनिषेधे सिद्धे पुनस्तद्ग्रहणमाब्दिकपरम् । तेन तत्पार्वणमेवं त्रिदण्डिनां द्वादशे नारायणबलिः । तद्विधिरन्यश्च विशेषः प्रागुक्तः । इत्यलं बहुना ॥ श्लोकाः । एवं निरूपितमिदं गहनं तु धर्मतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् । ...दोषदृष्टिमपहाय, विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोऽस्मि तेषु ॥ १ ॥ मया स... ...दितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं बाध्य...सतुमपि स्वल्पमतिना । तदेवं यत्किंचिद्विदितमिह विख्यातमहिमा प्रतापोऽयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥ यो भाट्टतन्त्रगणनार्णव... शास्त्र... तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता । योऽत्र श्रमः किल कृत... कमलाकरे... ...नास्तु ... कृती बुधरामकृष्णः ॥ ३ ॥ श्रीभट्टरामेश्वरसूरिसूनुश्रीभट्टनारायणसूरिसूनोः । श्रीरामकृष्णस्य सुतः कृतीमं व्यधान्निबंधं कमलाकरोऽयः ॥ ४ ॥ अस्मान्निर्णयवत्त्वान्निर्णयसिन्धुः प्रोच्यतां विबुधाः । निर्णयसरोजवत्त्वान्निर्णयकमलाकरोऽप्यस्तु ॥ ५ ॥ वसुऋतुऋतुभूमिते गतेऽब्दे नरपतिविक्रम-

---

करे, यह भी त्रिदंडीके निमित्त है । हंसपरमहंस आदिका भी पार्वणादिके सिवाय और कुछ कृत्य करना नहीं चाहिये, यह शूलपाणिका कथन है । श्राद्धचिन्तामणिमें दत्तात्रेय कहते हैं कि एकोद्दिष्ट, जल तथा पिंडदान, अशौच, प्रेतका सत्कार (संस्कार) ... न करे किन्तु ब्रह्मरूप संन्यासीके निमित्त केवल वार्षिकश्राद्ध करे और कुछ नहीं । प्रेतक्रियासे ही एकोद्दिष्टका निषेध सिद्ध था, फिर उसका ग्रहण आब्दिकके निमित्त है । इससे त्रिदण्डियोंका पार्वण और बारहवेंमें नारायणबलि जाननी, उसकी विशेष विधि दूसरे स्थानमें ... कह दी है, अब बहुत विस्तारसे विराम करते हैं । इस प्रकार वाक्य और नीतिसे गहन (कठिन) धर्मतत्त्वको भलीभांति विचार कर मैंने यह ग्रंथ निरूपण किया है, दोषदृष्टिको छोड़कर विद्वानोंको यह विचारने योग्य है, इस कारण मेरा उनको वारंवार प्रणाम है ॥१॥ मुझ थोडी बुद्धिवालेने इस ग्रंथमें जो कुछ सत् असत् कहा है स्वल्प बुद्धिवाला पुरुष इसके जाननेमें क्या समर्थ हो सकता है, अर्थात् नहीं हो सकता, और जो कुछ मैंने यह कथन किया है वह विख्यातमहिमा मेरे माता पिताजीके चरणकमलका प्रताप है ॥ २ ॥ जो अगाध सागररूप भट्टोंके रचे तंत्रशास्त्रका कर्णधार (पार ले जानेवाली–नौका) है और जो दूसरे सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मका ज्ञाता है वह पुण्यरूप पण्डित रामकृष्ण इस निर्णयसिन्धुमें मेरे किये हुए परिश्रमसे प्रसन्न हो ॥३॥ श्रीयुत भट्टरामेश्वरकविके पुत्र श्रीनारायणभट्ट उनके पुत्र रामकृष्ण उनके पुण्यशील पुत्र कमलाकरने यह निबन्ध निर्माण किया है ॥४॥ हे पण्डितजनो ! इसमें अनेक प्रकारके निर्णय होनेसे यह निर्णयसिन्धु कहा जाता है और इसमें निर्णयरूपी कमल खिले होनेसे इसे निर्णयकमलाकर भी कहेंगे ॥ ५ ॥ विक्रमादित्य महाराजके १६६८ संख्यक रौद्र नामक संवत्सर, माघ कृष्ण चतुर्दशीको यह ग्रंथ पूर्ण हुआ और इसे रघुना-

तोऽथ याते रौद्रे । तपसि शिवतिथौ समापितोऽयं रघुप ... रोरेऽर्पितश्च ॥६॥
जगति सकलविद्यासिन्धुमुष्टिंधयानां परभणितिपरीक्षा युज्य ... । तदिह
मम निबन्धे दूषणं भूषणं वा यदि भवति विदग्धैस्तद्ध्यवश्यं ... ॥ ७ ॥
इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणश्रीमद्रामेश्वरभट्टसूरिसूनुनारायणभट्टसुतविद्वन्मुकुटहीरांकुरश्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ३ ॥

श्रजीके चरणकमलमें अर्पित किया ॥ ६ ॥ संसारमें सब विद्यारूपी सागरको मुट्ठीमें रखनेवाले ... । दूसरेकी कृतिकी परीक्षामें ... किये जाते हैं, सो इस मेरे निबन्धमें जो दूषण वा भूषण है उसे पण्डितोंको वह अवश्य देखना चाहिये ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणनिखिल...निष्णात श्रीमिश्रशिवदयालसूरिसूनुश्री-सुखानन्दमिश्रसुतपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां निर्णयसिन्धौ तृतीयः परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

इति निर्णयसिन्धोः भाषाटीका समाप्ता ॥

दोहा—शम्भु शिवा गणपति गिरा, विष्णुचरण शिर नाय । भाषा निर्णय सिन्धुकी, बहुविधि लिखी बनाय ॥ १ ॥ वर्णाश्रमके धर्म अरु, सकल प्रबन्ध सहेतु। भाषाटीका कर कह्यो, निर्णयसागरसेतु॥ २॥ जहाँ तहाँ कर टिप्पणी, अरु वेदोक मंत्र । लिखे प्रयोजन देखकर, नानाविधिके तंत्र ॥ ३ ॥ सम्यक् विधि टीका कियो निजमतिके अनुसार । तदपि होय जो भ्रम कहीं, लेहैं चतुर सुधार ॥ ४ ॥ याहिके अनुशीलन किये शंका रहत न कोय । नित्य विचारै नेमसे, पूर्ण विचक्षण होय ॥ ५ ॥ संवत् १९ शर अंक विधु, आश्विनसितशशि ... । पूर्णा तिथि लखि पंचमी, कीन्हों पूर्णविचार ॥ ६ ॥ जगत्विदित महिमा अधिक, सज्जनको सुखदान । वेङ्कटेश यंत्राधिपति, खेमराज गुणवान ॥ ७ ॥ तिन्हें समर्पित यह कियो, भाषायुत शुभ ग्रंथ । पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, लहहिं सनातनपंथ ॥ ८ ॥ नारायण गोविन्द श्री, कृष्णचन्द्र सुखधाम । महावीरयुत रामको, लक्ष्मणसहित प्रणाम ॥९॥ सरित रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद । तहाँ बसत हरिजपनिरत, द्विज ज्वालापरसाद ॥१०॥ रामराम जपिये सदा, अथवा राधेश्याम । अथवा शिवशंकर जपो सिद्ध होहिं सब काम ॥ ११ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" प्रेस,
कल्याण-बम्बई.